

BIBLIOTHECA INDICA;

A

COLLECTION OF ORIENTAL WORKS

PUBLISHED UNDER THE SUPERINTENDENCE OF

THE ASIATIC SOCIETY OF BENGAL.

NEW SERIES.

Nos. 56, 67 AND 70.



THE

NYA-YA DARS'ANA,

WITH

THE COMMENTARY OF VATSYAYANA.

EDITED BY

PANDITA JAYANARAYANA TARKAPANCHANANA.



CALCUTTA:

996

PRINTED AT THE BAPTIST MISSION PRESS.

. 1865.

16099

PREFACE.



The Series of ancient Nyáya works is as follows :—

I. The original *Sútras* ascribed to the Rishi Gotama.

II. The *Nyáya-bhášhya*,—a commentary on No. I. by Pakshila Swámin or Vátsyáyana.

III. The *Nyáya-vártika*,—a commentary on No. II. by Uddyotakara A'chárya.

IV. The *Nyáya-vártika-tátparya-tíká*,—a commentary on No. III. by Váchaspati Mis'ra.

V. The *Nyáya-vártika-tátparya-paris'uddhi*,—a commentary on No. IV. by Udayana Achárya.

Of these, the second is the work now published in the Bibliotheca Indica. Colebrooke mentions* that the *Bhášhya* "is repeatedly cited by modern commentators as well as by writers of separate treatises," but he had never met with a copy of the work ; and in fact, although it is, after the *Sútras*, the most ancient authority for the Naiyáyika system, few pandits know more of it than the name.

It has been edited from three MSS.

I. A very correct MS. belonging to the Benares College library.

II. A fair MS. in the Bengali character, belonging to a pandit of Nuddea.

III. An imperfect MS. belonging to the editor, Pandita Jayanáráyana Tarkapanchánana.

* Essays, Vol. I. p. 262.



गोतम-मुनि-प्रणीतम् ।

न्यायदर्शनम् ।



वात्स्यायनमुनिप्रणीतभाष्यसहितम् ।

श्रीयुक्त-जयनारायण-तर्कपञ्चाननेन

परिशोधितम् ।



कलिकातानगरे

वात्सिल्य-मिश्र-यन्त्रे यथोऽयं मुद्राङ्कितोऽभूत् ।

शकाब्दाः १७८६ । इ० १८६५ ।

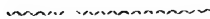
न्यायवात्स्यायनभाष्यमुद्रणाविवरणपत्रम् ।



भागैश्चतुर्भिर्भक्ताभूरियमिंलण्डपण्डितैः ।
यद्भागे भारतं वर्षमाश्रित्या सोऽभिधीयते ॥ १ ॥
तत्र यावन्ति वस्त्रानि तिष्ठन्ति स्थितवन्ति च ।
अत्यन्तस्नान्तहारीणि तत्प्रकाशनतत्परा ॥ २ ॥
कल्पाताख्येऽत्र नगरे विख्याता याश्रित्यासभा ।
विद्योतमाना विद्वद्भिर्नानाविद्याविशारदैः ॥ ३ ॥
कीर्त्तिः प्राक्तनमान्यानामायुःशेषमुपेयुषी ।
चिरायुषी पुनः सैव यत्प्रभावाद्भवेदिह ॥ ४ ॥
ये ग्रन्था सुप्तपदवीपान्यास्ते यत्प्रयत्नतः ।
विद्यन्ते मुद्रिताः सन्तः कायव्यूहं वहन्ति च ॥ ५ ॥
न्यायभाष्यमिदं पूर्वं विरलं सुप्तवत् स्थितं ।
मुद्रणाशोधनेऽख्येयं सा सभा मां न्ययोजयत् ॥ ६ ॥
नप्ताहं रामचन्द्रस्य तर्कालङ्कारसंज्ञिनः ।
न्यायादिनानाविद्यासु विख्यातस्य महात्मनः ॥ ७ ॥
पुत्रस्तथा हरिसुन्दरविद्यासागरधीमतः ।
सूतौ व्युत्पत्तिमात्रस्य पुराणादौ च तत्त्वतः ॥ ८ ॥
अवाच्यां नगरादस्माद्भूम्यः प्रहरमात्रतः ।
वङ्खाख्यः प्रथितः ग्रामस्तत्र वासः पुरा मम ॥ ९ ॥

न्यायवात्स्यायनभाष्यमुद्रणाविवरणपत्रम् ।

बाल्ये व्याकरणादीनि धर्मशास्त्राणि कानिचित् ।
पितुः सकाशात् प्राप्तोऽहमन्नवस्त्रादिवत् पुरा ॥ १० ॥
रामतोषणसंज्ञस्य विद्यालङ्कारधीमतः ।
कात्रोऽहं सुप्रसिद्धस्यालङ्कारग्रन्थपाठने ॥ ११ ॥
वेदान्तादीनि शास्त्राणि नाथूरामस्य शास्त्रिणः ।
सकाशादाप्तवानस्मि पुरा गुर्जरवासिनः ॥ १२ ॥
तर्कसिद्धान्तसंज्ञस्य जगन्मोहनशर्मणः ।
शुश्रूषयाप्तवानस्मि न्यायविद्यां महामतेः ॥ १३ ॥
अद्यापि शालिकायामे मज्ज्येष्ठो मधुसूदनः ।
तर्कवागीशसंज्ञोऽस्य कात्रोऽध्यापयति ध्रुवं ॥ १४ ॥
अहन्तु नगरप्राच्यां पल्ल्यां लोहाध्वसन्निधौ ।
नारिकेलस्यलाख्यायां पाठयामि मठेऽधुना ॥ १५ ॥
तथा मठे राजकीये नगरेऽस्मिन् नियोजितः ।
दर्शनाध्यापने राज्ञा पञ्चविंशतिवत्सरान् ॥ १६ ॥
रसाष्टाचलभ्रूमाने शाकाब्दे सौरचैत्रिके ।
मुद्रामेतस्य भाष्यस्य सम्पन्नां कृतवानहम् ॥ १७ ॥



न्यायदर्शनवात्स्यायनभाष्यस्य निर्घण्टपत्रम् ।

| | प्रश्नाङ्कः । | पङ्क्ताङ्कः |
|--|---------------|-------------|
| मोक्षरूपशस्त्रप्रयोजनकथनम् } पदार्थानामुद्देशश्च, | २ | १० |
| तत्त्वज्ञानाधीनकाममुक्तिस्त्वत्रम्, .. | ६ | २१ |
| प्रमाणलक्षणं तद्विभागश्च, .. | ८ | ८ |
| प्रत्यक्षलक्षणम्, | १० | १६ |
| अनुमानस्य लक्षणम् विभागश्च, .. | १७ | ४ |
| उपमानलक्षणम्, | १७ | १५ |
| शब्दलक्षणम्, | १५ | ६ |
| शब्दस्य विभागः, | १५ | १२ |
| प्रमेयस्य लक्षणम् विभागश्च, .. | १६ | १ |
| आत्मनिरूपणम्, | १७ | १ |
| शरीरनिरूपणम्, | १८ | ४ |
| इन्द्रियविभागः, | १८ | १३ |
| भूतविभागः, | १८ | ४ |
| अर्थस्य विभागः, | १८ | ८ |
| बुद्धिलक्षणम्, | १८ | १४ |
| मनोनिरूपणम्, | २० | १ |
| प्रवृत्तिलक्षणं तद्विभागश्च, | २० | ८ |
| दोषलक्षणम्, | २० | १३ |
| प्रेत्यभावलक्षणम्, | २१ | ३ |
| फललक्षणम्, | २१ | १२ |
| दुःखलक्षणम्, | २२ | १ |

| | प्रश्नाङ्कः । | पङ्क्ताङ्कः |
|----------------------------------|---------------|-------------|
| अपवर्गलक्षणम्, | २१ | ७ |
| संशयस्य लक्षणं विभागश्च, .. | २५ | ११ |
| प्रयोजनलक्षणम्, | २७ | ३ |
| दृष्टान्तलक्षणम्, | २७ | ८ |
| सिद्धान्तलक्षणम्, | २७ | १६ |
| सिद्धान्तविभागः, | २८ | ५ |
| सर्व्वतन्त्रसिद्धान्तलक्षणम्, .. | २८ | ८ |
| प्रतितन्त्रसिद्धान्तलक्षणम्, .. | २८ | १२ |
| अधिकरणसिद्धान्तलक्षणम्, .. | २९ | १ |
| अभ्युपगमसिद्धान्तलक्षणम्, .. | २९ | ११ |
| अवयवविभागः, | २९ | १८ |
| प्रतिज्ञालक्षणम्, | ३० | १८ |
| हेतुलक्षणम्, | ३० | २१ |
| व्यतिरेकिहेतुलक्षणम्, | ३१ | ६ |
| उदाहरणलक्षणम्, | ३१ | १० |
| व्यतिरेक्युदाहरणलक्षणम्, .. | ३२ | ५ |
| उपनयलक्षणम्, | ३३ | १ |
| निगमनलक्षणम्, | ३३ | १३ |
| तर्कनिरूपणम्, | ३५ | १५ |
| निरर्थयनिरूपणम्, | ३७ | ६ |
| वादलक्षणम्, | ३९ | २ |
| अल्पलक्षणम्, | ४० | ७ |
| वितण्डालक्षणम्, | ४१ | १० |
| हेत्वाभासविभागः, | ४१ | १६ |
| सत्यभिचारलक्षणम्, | ४२ | १ |
| विरुद्धलक्षणम्, | ४२ | १४ |

| | प्रमाणः । | पङ्क्त्यङ्कः । |
|------------------------------------|------------|----------------|
| प्रकरणसमलक्षणम्, | ४३ | ७ |
| साध्यसमलक्षणम्, | ४४ | १ |
| अतीतकाललक्षणम्, | ४४ | ४ |
| कललक्षणम्, | ४५ | ८ |
| कलविभागः, | ४५ | १२ |
| वाक्यकललक्षणम्, | ४५ | १५ |
| सामान्यकलनिरूपणम्, | ४७ | ३ |
| उपचारकललक्षणम्, | ४८ | ४ |
| कलपूर्वपक्षः, | ४९ | १ |
| तत्समाधानम्, | ४९ | ५ |
| जातिलक्षणम्, | ४९ | १६ |
| निरग्रहस्थानलक्षणम्, | ५० | ४ |
| प्रथमाध्यायसमाप्तिः, | ५० | २० |
| संशयपूर्वपक्षः, | ५१ | ३ |
| संशयसिद्धान्तः, | ५२ | १६ |
| प्रमाणपूर्वपक्षः, | ५५ | १७ |
| तत्समाधानम्, | ५८ | ३ |
| समाधानान्तरम्, | ५९ | ७ |
| पूर्वपक्षान्तरम्, | ६१ | २१ |
| तत्समाधानम्, | ६२ | ११ |
| प्रत्यक्षलक्षणाक्षेपः, | ६५ | ५ |
| तत्समाधानम्, | ६५ | १२ |
| आक्षेपान्तरम्, | ६५ | १६ |
| समाधानान्तरम्, | ६६ | ५ |
| मनःसिद्धौ युक्तिः, | ६६ | ८ |
| प्रत्यक्षसिद्धान्तसूत्रम्, | ६७ | १० |

| | पृष्ठाङ्कः । | पङ्क्ताङ्कः |
|------------------------------------|--------------|-------------|
| सन्निकर्षाहेतुत्वशङ्का, | ६७ | १६ |
| तत्समाधानम्, | ६८ | ६ |
| प्रत्यक्षस्यानुमितित्वशङ्का, | ६९ | ३ |
| तत्समाधानम्,.. .. | ६९ | १६ |
| अवयविपूर्वपक्षसूत्रम्, | ७१ | १७ |
| तत्समाधानम्,.. .. | ७२ | १ |
| अवयविसिद्धान्तसूत्रम्, | ७३ | १ |
| अनुमानपूर्वपक्षसूत्रम्, | ७७ | १ |
| तत्समाधानम्,.. .. | ७७ | ८ |
| वर्त्तमानाक्षेपः,.. .. | ७८ | १ |
| तत्समाधानम्,.. .. | ७९ | १३ |
| उपमानपूर्वपक्षसूत्रम्, | ८१ | १ |
| तत्समाधानम्, | ८१ | ६ |
| उपमानस्यानुमानान्तर्भावमतम्,.. | ८१ | १३ |
| तत्खण्डनम्, | ८२ | ८ |
| शब्दपूर्वपक्षसूत्रम्, | ८२ | ११ |
| तत्समाधानम्,.. .. | ८३ | ८ |
| वेदप्रामाण्याक्षेपः, | ८५ | २० |
| तत्सिद्धान्तः, | ८६ | १५ |
| वेदवाक्यविभागः, | ८८ | ८ |
| विधिलक्ष्यम्, | ८८ | ११ |
| अर्थवादविभागः, | ८८ | १४ |
| अनुवादलक्ष्यम्, | ८९ | १३ |
| वेदप्रामाण्ये युक्तिः, | ९१ | १ |
| प्रमाणषट्पक्षाक्षेपः, | ९३ | २ |
| तत्समाधानम्,.. .. | ९३ | १७ |

न्यायदर्शनवाक्यायनभाष्यस्य निर्घण्टपत्रम् ।

| | प्रष्टाङ्कः । | पङ्कगङ्कः । |
|--------------------------------------|---------------|-------------|
| शब्दानित्यत्वसाधनम्, | ६७ | १७ |
| शब्दपरिणामसंशयः, | १११ | ८ |
| शब्दविकारनिराकरणम्, | ११२ | १ |
| शब्दविकारव्यवहारः, | ११३ | १७ |
| पदनिरूपणम्, | ११६ | १३ |
| पदार्थसंशयः, | १२० | ७ |
| केवलव्यक्तिशक्तिखण्डनम्, | १२१ | ५ |
| केवलाकृतिशक्तिमतखण्डनम्, | १२२ | ११ |
| केवलजातिशक्तिखण्डनम्, | १२३ | ८ |
| पदार्थनिरूपणम्, | १२३ | १३ |
| व्यक्तिनक्षणम्, | १२३ | १ |
| आकृतिलक्षणम्, | १२४ | ६ |
| जातिलक्षणम्, | १२४ | १४ |
| द्वितीयाध्यायसमाप्तिः, | १२४ | १६ |
| प्रमेयपरीक्षारम्भः, | १२५ | १ |
| तत्रापि इन्द्रियचैतन्यवाददूषणम्, १२५ | | १२ |
| शरीरात्मवाददूषणम्, | १२७ | २० |
| आक्षेपान्तरम्, | १२८ | १३ |
| तत्समाधानम्, | १२८ | १६ |
| चक्षुरद्वैतप्रकरणम्, | १३० | ५ |
| तत्खण्डनम्, | १३० | १० |
| मनस आत्मत्वशङ्का, | १३४ | १ |
| तत्खण्डनम्, | १३४ | ७ |
| आत्मनित्यत्वप्रतिपादनम्, | १३५ | ११ |
| शरीरस्यैकभौतिकत्वकथनम्, | १४० | १६ |
| पार्थिवत्वे युक्त्यन्तरकथनम्, | १४१ | १७ |

| | शृङ्गाः । | पङ्क्त्यङ्काः । |
|---|------------|-----------------|
| इन्द्रियभौतिकत्वपरीक्षणम्, .. | १४२ | ७ |
| इन्द्रियनानात्वपरीक्षणम्, .. | १५१ | ११ |
| अर्थपरीक्षणम्, .. , .. | १५७ | १६ |
| बुद्ध्यनित्यतासंशयः, .. | १६१ | १७ |
| बुद्धिनित्यतावादिसाङ्ख्यमतम्, .. | १६४ | ११ |
| तत्खण्डनम्, | १६४ | २० |
| साङ्ख्यमतान्तरदूषणम्, .. | १६६ | २० |
| अयुगपद्व्यवहृत्युत्पादनादि, .. | १६६ | १७ |
| क्षणिकवादिसौगतशङ्काकथनम्, .. | १६६ | ३ |
| सौगतशङ्कासमाधानम्, .. | १६६ | १६ |
| सौगतमते साङ्ख्यदूषणम्, .. | १७१ | ७ |
| तन्निराकरणादि, | १७१ | १४ |
| बुद्धेरात्मगुणत्वप्रकरणम्, .. | १७३ | १२ |
| बुद्धेरत्यन्नापवर्गित्वकथनम्, .. | १८६ | ११ |
| बुद्धौ शरीरगुणत्वाभावस्य विशिष्य- कथनम्, .. | १८३ | १२ |
| मनःपरीक्षाप्रकरणम्, | १८६ | ८ |
| शरीरस्य तत्तत्पुरुषादृष्टनिष्पाद्यता- प्रकरणम्, .. | १८८ | १६ |
| तृतीयाध्यायसमाप्तिः, | २०८ | ७ |
| प्रवृत्तिपरीक्षा, | २०८ | ११ |
| दोषपरीक्षणम्, | २०६ | १ |
| दोषाणां पक्षत्रयकथनम्, | २०६ | १० |
| प्रेत्यभावसिद्धान्तः, | २१२ | ५ |
| उत्पत्तिप्रकारप्रदर्शनम्, | २१२ | १४ |
| शून्यतोपादानप्रकरणम्, | २१३ | १७ |

न्यायदर्शनवात्स्यायनभाष्यस्य निर्घण्टपत्रम् ।

| | प्रश्नाङ्कः । | पङ्क्ताङ्कः । |
|-------------------------------------|---------------|---------------|
| ब्रह्मपरिणामवादः, | २१५ | १३ |
| आकस्मिकत्वनिराकरणप्रकरणम्, | २१७ | १ |
| सर्वानित्यत्वनिराकरणप्रकरणम्, | २१८ | १ |
| सर्वनित्यत्वनिराकरणप्रकरणम्,... | २१९ | ७ |
| सर्वप्रथकत्वनिराकरणप्रकरणम्, | २२१ | १४ |
| सर्वशून्यतानिराकरणप्रकरणम्, | २२३ | ३ |
| सङ्ख्यैकान्तवादनिराकरणप्रकरणम्, | २२६ | ८ |
| फलपरीक्षाप्रकरणम्, | २२७ | ११ |
| दुःखपरीक्षा, | २२९ | ९ |
| अपवर्गपरीक्षाप्रकरणम्, | २३४ | ४ |
| तत्त्वज्ञानोत्पत्तिप्रकरणम्, | २४३ | १९ |
| अवयवविप्रकरणम्, | २४५ | ११ |
| निरवयवप्रकरणम्, | २५० | १३ |
| वाङ्मार्थभङ्गनिराकरणप्रकरणम्, | २५४ | ११ |
| तत्त्वज्ञानविद्वद्भिप्रकरणम्, .. | २६० | ११ |
| चतुर्थीध्यायसमाप्तिः, | २६५ | ३ |
| जातिविभागसूत्रम्, | २६५ | १६ |
| साधर्म्यवैधर्म्यसमलक्षणम्, ... | २६५ | ५६ |
| साधर्म्यसमादेरसदुत्तरत्वे बीजम्, | २६७ | ४ |
| जातिघट्कनिरूपणम्, | २६७ | ११ |
| जातिघट्कासदुत्तरत्वबीजम्, ... | २६८ | १६ |
| प्राप्त्यप्राप्तिसमनिरूपणम्, | २६९ | ७ |
| तथोरसदुत्तरत्वे बीजम्, | २६९ | १६ |
| प्रसङ्गप्रतिदृष्टान्तसमनिरूपणम्,... | २७० | ३ |
| प्रसङ्गसमोत्तरकथनम्, | २७० | १४ |
| प्रतिदृष्टान्तसमोत्तरकथनम्, ... | २७१ | १० |

| | श्रुताङ्कः । | पङ्क्त्याङ्कः । |
|---------------------------------|--------------|-----------------|
| अनुत्पत्तिसमलक्षणम्, | २७१ | १५ |
| तस्योत्तरम्, | २७२ | ५ |
| संशयसमनिरूपणम्, | २७२ | १२ |
| तस्योत्तरम्, | २७३ | ४ |
| प्रकरणसमनिरूपणम्, | २७३ | १५ |
| प्रकरणसमोत्तरम्, | २७३ | ५ |
| अहेतुसमप्रकरणम् - | २७४ | १४ |
| अर्थोपत्तिसमप्रकरणम्, | २७५ | १२ |
| अविशेषसमप्रकरणम्, | २७६ | १३ |
| उपपत्तिसमप्रकरणम्, | २७७ | १८ |
| उपलब्धिसमप्रकरणम्, | २७८ | १६ |
| अनुपलब्धिसमप्रकरणम्, | २७९ | ११ |
| अनित्यसमप्रकरणम्, | २८१ | ८ |
| नित्यसमप्रकरणम्, | २८२ | ११ |
| कार्यसमप्रकरणम्, | २८७ | १३ |
| कथाभासप्रकरणम्, | २८३ | १२ |
| निरग्रहस्थानविभागः, | २८४ | १७ |
| प्रतिज्ञाहानिलक्षणम्, | २८८ | ६ |
| प्रतिज्ञान्तरलक्षणम्, | २८८ | १७ |
| प्रतिज्ञाविरोधलक्षणम्, | २८९ | १४ |
| प्रतिज्ञासन्न्यासलक्षणम्, | २९० | १ |
| हेत्वन्तरलक्षणम्, | २९० | ८ |
| अर्थान्तरलक्षणम्, | २९१ | ८ |
| निरर्थकलक्षणम्, | २९१ | १८ |
| अविज्ञातार्थलक्षणम्, | २९२ | ४ |
| अपार्थक्यलक्षणम् | २९२ | १० |

| | पृष्ठाङ्कः । | पङ्क्ताङ्कः । |
|-------------------------------------|--------------|---------------|
| अप्राप्तकाललक्षणम्, | २६२ | १६ |
| न्यूनलक्षणम्, | २६३ | १३ |
| अधिकलक्षणम्, | २६३ | ६ |
| पुनरुक्तलक्षणम्, | २६३ | ८ |
| अननुभाषणलक्षणम्, | २६४ | ७ |
| अज्ञानलक्षणम्, | २६४ | १२ |
| अप्रतिभालक्षणम्, | २६४ | १६ |
| विक्षेपलक्षणम्, | २६५ | ३ |
| मतानुज्ञालक्षणम्, | २६५ | ८ |
| पर्यानुयोज्यापेक्षालक्षणम्, | २६५ | १४ |
| निरनुयोज्यानुयोगलक्षणम्, | २६६ | ३ |
| अपसिद्धान्तलक्षणम्, | २६६ | ८ |
| हेत्वाभाससूत्रम्, | २६७ | ११ |
| पञ्चमाध्यायसमाप्तिः, | २६७ | १७ |

इति न्यायदर्शनवात्स्यायनभाष्यस्य निर्घण्टपत्रं समाप्तम् ।

न्यायदर्शनवात्स्यायनभाष्यस्य शुद्धिपत्रम् ।

| प्रश्नाङ्कः । | पङ्क्ताङ्कः । | अशुद्धम् । | शुद्धम् । |
|---------------|----------------------|---------------------|-----------|
| ४ १ | लाकिक | लौकिक | |
| ६ १० | एथगुदेश | एथगुपदेश | |
| १४ १६ | प्रतिपत्तिरूपमा | प्रतिपत्तिरूपमा | |
| १६ १३ | बुद्धिरूपलब्धि | बुद्धिरूपलब्धि | |
| २१ १६ | फलमुपात्तं | फलमुपात्तमुपात्तं | |
| २१ १७ | त्यक्तात्यक्तां | त्यक्तां त्यक्तां | |
| २२ ५ | निर्व्विघ्नो | निर्व्विघ्नो | |
| २३ ७ | नित्यानतरं | निमित्तानतरं | |
| २६ ४ | गन्धवत्त्वात् | गन्धवत्त्वात् | |
| ४४ १२ | प्रागूर्द्ध्वं | प्रागूर्द्ध्वं | |
| ७१ ३ | अङ्गन्तु भवान् एष्टो | अङ्ग तु भवान् एष्टो | |
| ७४ १६ | समानाधिकरण्यात् | समानाधिकरण्यात् | |
| ७६ २० | स्यार्थान्तरस्य | स्यार्थान्तरस्य | |
| ७८ ३ | यदूर्ध्वं | यदूर्ध्वं | |
| ८६ ५ | धारयन्ति | धारयन्ति | |
| ९० १८ | निषण्ण | निषण्ण | |
| १०३ ३ | ऊर्ध्वं | ऊर्ध्वं | |
| १२७ ४ | ख्येयं | ख्येयं | |
| १३३ ३ | कर्तृकाणि | कर्तृकाणि | |
| १३३ ८ | कर्तृकः | कर्तृकः | |
| १३८ ५ | लोष्टादयः | लोष्टादयः | |
| १३८ १२ | वाधते | बाधते | |

न्यायदर्शनवाक्यायनभाष्यस्य शुद्धिपत्रम्।

| पाठः। | पङ्क्त्यङ्कः। | अशुद्धम्। | शुद्धम्। |
|-----------|---------------|-------------------|-------------------|
| १३८ | १४ | लोख | लोख |
| १५४ | ६ | मिन्द्रियाणां | मिन्द्रियाणां |
| १५६ | १२ | पञ्चेन्द्रियाणाम् | पञ्चेन्द्रियाणाम् |
| १६० | १२ | पार्थिवप्ययोः | पार्थिवाप्ययोः |
| १७६ | १७ | सयोग | संयोग |
| १८३ | ६ | एवात्यन्तो | एवात्यन्तो |
| १८३ | १६ | परमोत्यन्त | परमोऽत्यन्त |
| १८३ | २० | प्रतिषेधः | प्रतिषेधः |
| २०७ | १६ | भतितथं | भवितथं |
| २१० | ७ | तत्त्वज्ञानं | तत्त्वज्ञानं |
| २४१ | ३ | अय | अय |
| २४४ | १६ | वयवव्यभिमानः | वयव्यभिमानः |
| २५३ | १ | पत्तस्व | पत्तस्व |
| २५६ | ४ | विपर्यय | विपर्यये |
| २५६ | १७ | बुद्धेर्द्विविधो | बुद्धेर्द्विविधो |
| २७७ | ११ | दुहाहरणं | दुदाहरणं |
| २८१ | ३ | हेतो | हेतो |

समाप्तम् शुद्धिपत्रम्।

न्यायदर्शनवात्स्यायनभाष्यं ।



ॐ नमः प्रमाणाय ।

प्रमाणतोऽर्थप्रतिपत्तौ * प्रवृत्तिसामर्थ्यादर्थवत् प्रमाणम् ।
प्रमाणमन्तरेण नार्थप्रतिपत्तिः । नार्थप्रतिपत्तिमन्तरेण प्रवृ-
त्तिसामर्थ्यम् । प्रमाणेन खल्वयं ज्ञाताऽर्थमुपलभ्य तमर्थमभी-
प्सति जिहासति वा । तस्येष्टाजिहासा प्रयुक्तस्य समीक्षा प्रवृ-
त्तिरित्युच्यते सामर्थ्यं पुनरस्याः फलेनाभिसम्बन्धः । समीक्ष-
मानस्तमर्थमभीप्सन् जिहासन् वा तमर्थमाप्नोति जिहासति वा ।
अर्थस्तु सुखं सुखहेतुः दुःखं दुःखहेतुश्च, सोऽयं प्रमाणार्था-
ऽपरिसङ्ख्येयः प्राणभृद्भेदस्यापरिसङ्ख्येयत्वात् । अर्थवति च प्र-
माणे प्रमाता प्रमेयं प्रमितिरित्यर्थवन्ति भवन्ति, कस्मात्
अन्यतमापायेऽर्थस्यानुपपत्तेः । तत्र यस्तेष्टाजिहासाप्रयुक्तस्य
प्रवृत्तिः स प्रमाता । स येनार्थं प्रमिणोति तत् प्रमाणम् ।
योऽर्थः † प्रतीयते तत् प्रमेयम् । यदर्थविज्ञानं सा प्रमितिः ।
चतसृषु चैवंविधास्वर्यतत्त्वं परिसमाप्यते । किं पुनस्तत्त्वं ।
सतश्च सङ्गावोऽसतश्चासङ्गावः । सत्सदिति गृह्यमाणं यथा-
भूतमविपरीतं तत्त्वम् भवति, असच्चासदिति गृह्यमाणं

* 'समर्थं प्रवृत्तिजनकत्वात्' । † प्रतीयते २ ।

भा० यथाभूतमविपरीतं तत्त्वम् भवति । कथमुत्तरस्य प्रमाणे-
 नोपलब्धिरिति सत्यप्युपलभ्यमाने तदनुपलब्धेः प्रदीपवत्
 यथा दर्शकेन दीपेन दृश्ये गृह्यमाणे तदिव यन्न गृह्यते
 तन्नास्ति यद्यभविष्यदिदमिव व्यज्ञास्यत विज्ञानाभावा-
 न्नास्तीति । एवं प्रमाणेन सति गृह्यमाणे तदिव यन्न
 गृह्यते तन्नास्ति यद्यभविष्यत् इदमिव व्यज्ञास्यत विज्ञा-
 नाभावान्नास्तीति तदेवं सतः प्रकाशकं प्रमाणमसदपि
 प्रकाशयतीति । सच्च खलु षोडशधाव्यूढमुपदेक्ष्यते तासां
 खंत्वासां सद्भिधानाम् ॥

सू० प्रमाणप्रमेयसंशयप्रयोजनदृष्टान्तसिद्धान्तावयव-
 तर्कनिर्णयवादजल्पवितण्डाहेत्वाभासच्छलजाति-
 निग्रहस्थानानां तत्त्वज्ञानान्निःश्रेयसाधिगमः ॥ १ ॥

भा० निर्द्देशे यथावचनं विग्रहः । चार्थे द्वन्द्वः समासः ।
 प्रमाणादीनान्तत्त्वमिति श्रौषिकी षष्ठी, तत्त्वस्य ज्ञानम् निः-
 श्रेयसस्याधिगम इति कर्माणिषष्ठ्यौ, एतावन्तो विद्यमा-
 नार्थाः । एषामविपरीतज्ञानार्थमिहोपदेशः, सोऽयमन-
 वयवेन* तन्त्रार्थ उद्दिष्टो वेदितव्यः, आत्मादेः खलु प्रमेयस्य
 तत्त्वज्ञानान्निःश्रेयसाधिगमः । तच्चैतदुत्तरसूत्रेणानूद्यत इति ।
 हेयं तस्य निर्वर्तकं ज्ञानमात्यन्तिकं तस्योपायोधिगन्तव्य
 इत्येतानि चत्वार्यर्थपदानि सम्यग्बुद्ध्या निःश्रेयसमधि-

भा० गच्छति । तत्र संशयादीनां पृथग्वचनमनर्थकम् संश-
यादयो यथासम्भवं प्रमाणेषु प्रमेयेषु चान्तर्भवन्तो न
व्यतिरिच्यन्त इति, सत्यमेतत् इमास्तु चतस्रोविद्याः पृथक्-
प्रस्थानाः प्राणभूतामनुग्रहायोपदिश्यन्ते यामां चतुर्थी-
यमान्विचिकी न्यायविद्या । तस्याः पृथक्प्रस्थानाः संश-
यादयः पदार्थाः । तेषां पृथग्वचनमन्तरेणाध्यात्मविद्या-
मात्रमियं स्यात् यथोपनिषदः । तस्मात् संशयादिभिः
पदार्थैः पृथक् प्रस्थाप्यते । तत्र नानुपलब्धे न निर्णयिते
न्यायः प्रवर्तते किन्तुर्हि संशयिते, यथोक्तं “विमृश्यपक्ष-
प्रतिपक्षाभ्यामर्थावधारणं निर्णय इति,” विमर्शः संशयः ।
पक्षप्रतिपक्षौ न्यायप्रवृत्तिः । अर्थावधारणं निर्णयस्तत्त्व-
ज्ञानमिति । स चायं किंस्त्रिदितिवस्तुविमर्शमात्रमनव-
धारणं ज्ञानं संशयः प्रमेयेन्तर्भवन्नेवमर्थमपृथगुच्यते । अथ
प्रयोजनम् । येन प्रयुक्तः प्रवर्तते तत् प्रयोजनम् । यम-
र्थमभीप्सन् जिहासन् वा कर्मारभते तेनानेन सर्वे प्रा-
णिनः सर्वाणि कर्माणि सर्वास्तु विद्या व्याप्ताः, तदाश्रयस्तु
न्यायः प्रवर्तते, कः पुनरयं न्यायः । प्रमाणैरर्थपरीक्षणं
न्यायः प्रत्यक्षागमाश्रितमनुमानं सान्वीक्षा प्रत्यक्षागमाभ्या-
मीक्षितस्यान्वीक्षणमन्वीक्षा तथा प्रवर्तते इत्यान्वीक्षिकी
न्यायविद्या न्यायशास्त्रम् । यत्पुनरनुमानं प्रत्यक्षागमविरुद्धं
न्यायाभासः स इति तत्र वादजल्पौ सप्रयोजनौ, वितण्डा तु
परीक्ष्यते वितण्डया प्रवर्तमानो वैतण्डिकः । सप्रयोजन-

भा० यथाभूतमविपरीतं तत्त्वम् भवति । कथमुत्तरस्य प्रमाणे-
 नोपलब्धिरिति सत्यप्युपलभ्यमाने तदनुपलब्धेः प्रदीपवत्,
 यथा दर्शकेन दीपेन दृश्ये गृह्यमाणे तदिव यन्न गृह्यते
 तन्नास्ति यद्यभविष्यदिदमिव व्यज्ञास्यत विज्ञानाभावा-
 न्नास्तीति । एवं प्रमाणेन सति गृह्यमाणे तदिव यन्न
 गृह्यते तन्नास्ति यद्यभविष्यत् इदमिव व्यज्ञास्यत विज्ञा-
 नाभावान्नास्तीति तदेवं सतः प्रकाशकं प्रमाणमसदपि
 प्रकाशयतीति । सच्च खलु षोडशधाव्यूढमुपदेक्ष्यते तासां
 खंत्वासां सद्धिधानाम् ॥

सू० प्रमाणप्रमेयसंशयप्रयोजनदृष्टान्तसिद्धान्तावयव-
 तर्कनिर्णयवादजल्पवितण्डाहेत्वाभासच्छलजाति-
 निग्रहस्थानानां तत्त्वज्ञानान्निःश्रेयसाधिगमः ॥ १ ॥

भा० निर्द्देशे यथावचनं विग्रहः । चार्थे द्वन्द्वः समासः ।
 प्रमाणादीनान्तत्त्वमिति श्रौषिकी षष्ठी, तत्त्वस्य ज्ञानम् निः-
 श्रेयसस्याधिगम इति कर्माणिषष्ठ्यौ, एतावन्तो विद्यमा-
 नार्थाः । एषामविपरीतज्ञानार्थमिच्छापदेशः, सोऽयमन-
 वयवेन* तन्त्रार्थ उद्दिष्टो वेदितव्यः, आत्मादेः खलु प्रमेयस्य
 तत्त्वज्ञानान्निःश्रेयसाधिगमः । तच्चैतदुत्तरसूत्रेणानूद्यत इति ।
 हेद्यं तस्य निर्वर्तकं हानमात्यन्तिकं तस्योपायोधिगन्तव्य
 इत्येतानि चत्वार्यर्थपदानि सम्यग्बुद्ध्वा निःश्रेयसमधि-

भा० गच्छति । तत्र संशयादीनां पृथग्वचनमनर्थकम् संश-
 यादयो यथासम्भवं प्रमाणेषु प्रमेयेषु चान्तर्भवन्तो न
 व्यतिरिच्यन्त इति, सत्यमेतत् इमास्तु चतस्रोविद्याः पृथक्-
 प्रस्थानाः प्राणभृतामनुग्रहायोपदिश्यन्ते यासां चतुर्थी-
 यमान्विचिकी न्यायविद्या । तस्याः पृथक्प्रस्थानाः संश-
 यादयः पदार्थाः । तेषां पृथग्वचनमन्तरेणाध्यात्मविद्या-
 मात्रमियं स्यात् यथोपनिषदः । तस्मात् संशयादिभिः
 पदार्थैः पृथक् प्रस्थाप्यते । तत्र नानुपलब्धे न निर्णीतेर्थे
 न्यायः प्रवर्तते किन्तुर्हि संशयितेर्थे, यथोक्तं “विमृश्यपक्ष-
 प्रतिपक्षाभ्यामर्थावधारणं निर्णय इति,” विमर्शः संशयः ।
 पक्षप्रतिपक्षौ न्यायप्रवृत्तिः । अर्थावधारणं निर्णयस्तत्त्व-
 ज्ञानमिति । स चायं किंस्विदितिवस्तुविमर्शमात्रमनव-
 धारणं ज्ञानं संशयः प्रमेयेन्तर्भवन्नेवमर्थमृथगुच्यते । अथ
 प्रयोजनम् । येन प्रयुक्तः प्रवर्तते तत् प्रयोजनम् । यम-
 र्थमभीष्टान् जिहासन् वा कर्मारभते तेनानेन सर्वे प्रा-
 णिनः सर्वाणि कर्माणि सर्वास्तु विद्या व्याप्ताः, तदाश्रयस्तु
 न्यायः प्रवर्तते, कः पुनरयं न्यायः । प्रमाणैरर्थपरोक्षणं
 न्यायः प्रत्यक्षागमाश्रितमनुमानं सान्वीक्षा प्रत्यक्षागमाभ्या-
 मीक्षितस्यान्वीक्षणमन्वीक्षा तथा प्रवर्तत इत्यान्वीक्षिकी
 न्यायविद्या न्यायशास्त्रम् । यत्पुनरनुमानं प्रत्यक्षागमविरुद्धं
 न्यायाभासः स इति तत्र वादजल्पौ सप्रयोजनौ, वितण्डा तु
 परीक्ष्यते वितण्डया प्रवर्तमानो वैतण्डिकः । सप्रयोजन-

भा० मनुचुक्तो यदि प्रतिपद्यते सोऽस्य पक्षः सोऽस्य सिद्धान्त इति वैतण्डिकत्वं जहाति । अथ न प्रतिपद्यते नायं लौकिको न परीक्षक इत्यापद्यते । अथापि परपक्षप्रतिषेधज्ञापनं प्रयोजनं ब्रवीति, एतदपि तादृगेव । योज्ञापयति योजानाति यच्च ज्ञायते एतच्च प्रतिपद्यते यदि, तदा वैतण्डिकत्वं जहाति । अथ न प्रतिपद्यते, परपक्षप्रतिषेधज्ञापनं प्रयोजनमित्येतदस्य वाक्यमनर्थकं भवति । वाक्यसमूहस्य स्थापनाहीनो वितण्डा, तस्य यद्यभिधेयं प्रतिपद्यते सोऽस्य पक्षः स्थापनीयो भवति । अथ न प्रतिपद्यते प्रस्तापमात्रमनर्थकं भवति वितण्डात्वं निवर्त्तत इति । अथ दृष्टान्तः । प्रत्यक्षविषयोऽर्थः । यत्र लौकिकपरीक्षकाणां दर्शनं न व्याह्रियते स च प्रमेयं तस्य पृथग्वचनञ्च तदाश्रयावनुमानागमौ । तस्मिन् सति स्यातामनुमानागमावसति च न स्याताम् । तदाश्रया च न्यायप्रवृत्तिः । दृष्टान्तविरोधेन च परपक्षप्रतिषेधो वचनीयो भवति दृष्टान्तसमाधिना च स्वपक्षः साधनीयो भवति, नास्तिकस्य दृष्टान्तमभ्युपगच्छन्नास्तिकत्वं जहाति अनभ्युपगच्छन् किंसाधनः परमुपालभेतेति निरुक्तेन दृष्टान्तेन शक्यमभिधातुम् “साध्यसाधर्म्यात् तद्वर्णभावी दृष्टान्त उदाहरणं तद्विपरीता*द्विपरीतमिति” अस्ययमित्यनुज्ञायमानोऽर्थः सिद्धान्तः, स च प्रमेयं, तस्य पृथग्वचनम्,

* तद्विपर्यया इदमपि पाठान्तरं ।

भा० सिद्धान्तभेदेषु वादजन्यवितण्डाः प्रवर्त्तन्ते नातोऽन्यथेति
 साधनीयार्थस्य यावति शब्दसमूहे सिद्धिः परिसमाप्यते तस्य
 पञ्चावयवाः प्रतिज्ञादयः समूहमपेक्ष्यावयवा उच्यन्ते ।
 तेषु प्रमाणसमवायश्रागमः प्रतिज्ञा, हेतुरनुमानम्, उदा-
 हरणं प्रत्यक्षं, उपनयनमुपमानम्, सर्वेषामेकार्थसमवाये
 सामर्थ्यप्रदर्शनं निगमनमिति सोऽयं परमोन्याय इति
 एतेन वादजन्यवितण्डाः प्रवर्त्तन्ते नातोऽन्यथेति तदा-
 श्रया च तत्त्वव्यवस्था । ते चैतेऽवयवाः शब्दविशेषाः सन्तः
 प्रमेयेन्तर्भूता एवमर्थम् पृथगुच्यन्त इति । तर्को न प्रमाण-
 सङ्गृहीतो न प्रमाणान्तरम् प्रमाणानामनुयाहकस्तत्त्व-
 ज्ञानाय कल्प्यते, तस्योदाहरणं किमिदं जन्म कृतकेन हेतु-
 ना निवर्त्यते आहोस्त्रिदकृतकेन अथाकस्मिकमिति एवमवि-
 ज्ञातेर्ये कारणोपपत्त्या ऊहः प्रवर्त्तते यदि कृतकेन हेतुना
 निवर्त्यते हेतुच्छेदादुपपत्त्येयं जन्मोच्छेदः । अथाकृतकेन
 हेतुना ततो हेतुच्छेदस्याशक्यत्वादनूपपत्त्येयं जन्मोच्छेदः ।
 अथाकस्मिकमतोऽकस्मान्निवर्त्यमानं न पुनर्निर्वर्त्यतीति
 निवृत्तिकारणं नोपपद्यते तेन जन्मानुच्छेद इति । एतस्मिं-
 स्तर्कविषये कस्मिन्निमित्तं जन्मेति प्रमाणानि वर्त्तमानानि
 तर्केणानुगृह्यन्ते तत्त्वज्ञानविषयस्य विभागात्तत्त्वज्ञानाय क-
 ल्प्यते तर्क इति । सोऽयमित्थम् भूतस्तर्कः प्रमाणसहितो वादे
 साधनायोपा*लभाय वाऽयस्य भवतीत्येवमर्थमपृथगुच्यते

भा० प्रमेयान्तर्भूतोपीति, निर्णयस्तत्त्वज्ञानम् प्रमाणानां फलम्, तदवसानोवादः, तस्य पालनार्थं जल्पवितण्डे, तावेतौ तर्क-निर्णयो लोकयात्रां वहत इति सोऽयं निर्णयः प्रमेयान्तर्भूत-एवमर्थम् पृथगुद्दिष्ट इति । वादः खलु नानाप्रवक्तृकः प्रत्यधिकरणसाधनोऽन्यतराधिकरणनिर्णयावसानोवाक्यसमूहः पृथगुद्दिष्ट-उपलक्षणार्थम्, उपलक्षितेन व्यवहारस्तत्त्वज्ञानाय भवतीति तद्विशेषौ जल्पवितण्डे तत्त्वाध्यवसायसंरक्षणार्थमित्युक्तम् । नियहस्थानेभ्यः पृथगुद्दिष्टा हेत्वाभासा-वादे चोदनीया-भविष्यन्तीति, जल्पवितण्डे-योस्तु नियहस्थानानीति क्लृप्तातिनियहस्थानानाम् पृथगुद्देश-उपलक्षणार्थ इति । उपलक्षितानां स्ववाक्ये परिवर्जनम् । क्लृप्तातिनियहस्थानानाम् परवाक्ये पर्यनुयोगः । जातेषु परेण प्रयुज्यमानायाः सुलभः समाधिः स्वयञ्च सुकरः प्रयोग इति । सेयमान्वीक्षिकी प्रमाणादिभिः पदार्थैर्विभज्यमाना “प्रदीपः सर्वविद्यानामुपायः सर्वकर्षणम् । आश्रयः सर्वधर्माणां विद्योद्देशे प्रकीर्तिता” तदिदं तत्त्वज्ञानं निःश्रेयसाधिगमार्थं यथाविद्यं वेदितव्यम् । इहलब्धात्मविद्यायामात्मादितत्त्वज्ञानम्, निःश्रेयसाधिगमोऽपवर्गप्राप्तिः । तत् खलु निःश्रेयसं किन्तत्त्वज्ञानानन्तरमेव भवति नेत्युच्यते किन्तर्हि तत्त्वज्ञानात् ॥ १ ॥

सू० दुःखजन्मप्रवृत्तिदोषमिथ्याज्ञानानामुत्तरोत्तरापाये तदनन्तरापायादपवर्गः ॥ २ ॥

भा० तत्रात्माद्यपवर्गपर्यन्तप्रमेये मिथ्याज्ञानमनेकप्रकारकं
वर्तते आत्मनि तावन्नास्तीति अनात्मन्यात्मेति दुःखे सुख-
मिति अनित्ये नित्यमिति अत्राणे चाणमिति सभये निर्भ-
यमिति जुगुप्सितेऽभिमतमिति हातव्येऽप्रतिहातव्यमिति
प्रवृत्तौ नास्ति कर्म, नास्ति कर्म-फलमिति दोषेषु नायं
दोषनिमित्तः संसार इति प्रेत्यभावे नास्ति जन्तुर्जीवो वा
सन्न आत्मावा यः प्रेयात् प्रेत्यच भवेदिति । अनिमित्तं
जन्म । अनिमित्तो जन्मोपरम इत्यादिमान् प्रेत्यभावोऽन-
न्तश्चेति नैमित्तिकः सन्न कर्मनिमित्तः प्रेत्यभाव इति ।
देहेन्द्रियबुद्धिवेदनासन्तानोच्छेदप्रतिसन्धानाभ्यां निरा-
त्म्यं प्रेत्यभाव इति । अपवर्गो भोगः । स खल्वयं सर्व-
कार्योपरमः सर्वविप्रयोगेऽपवर्गे बद्ध च भद्रकं लुप्यत इति
कथं बुद्धिमान् सर्वसुखोच्छेदमचैतन्यममुपवर्गं रोचये-
दिति । एतस्मान्मिथ्याज्ञानादनुकूलेषु रागः प्रतिकूलेषु
द्वेषः रागद्वेषाधिकाराच्चासुर्येर्ष्यामायालोभादयो दोषा
भवन्ति । दोषैः प्रयुक्तः शरीरेण प्रवर्तमानो हिंसास्तेयप्र-
तिषिद्धमैथुनान्याचरति वाचाऽनृतपरुषसूचनासम्बद्धानि
मनसा परद्रोहं परद्रव्याभोगानास्तिक्यञ्चेति सेयं पापा-
त्मिका प्रवृत्तिरधर्माय । अथ शुभा शरीरेण दानं परि-
चाणं परिचरणञ्च । वाचा सत्यं हितं प्रियं स्वाध्यायञ्चेति ।
मनसा दयामसृहां श्रद्धाञ्चेति सेयं धर्माय । अत्र प्रवृत्ति-
साधनौ धर्माधर्मौ प्रवृत्तिशब्देनोक्तौ । यथाऽन्नसाधना

भा० प्राणाः । “अन्नं वै प्राणिनः प्राणा इति” । सेयं कुत्सित-
 स्थाभिपूजितस्य च जन्मनः कारणम्, जन्म पुनः शरीरे-
 न्द्रिय-बुद्धीनां निकायविशिष्टः प्रादुर्भावः । तस्मिन् सति
 दुःखम्, तत्पुनः प्रतिकूलवेदनोद्यम् बाधना पीडा ताप
 इति । इमे मिथ्याज्ञानादयोदुःखान्ता-धर्मा-अविच्छेदे-
 नैव प्रवर्तमानाः संसार इति । यदा तु तत्त्वज्ञानान्निध्या-
 ज्ञानमपैति तदा मिथ्याज्ञानापाये दोषा-अपचन्ति दो-
 षापाये प्रवृत्तिरपैति प्रवृत्त्यपाये जन्मापैति जन्मापाये
 दुःखमपैति दुःखापाये चात्मनिकोऽपवर्गोऽन्यसमिति ।
 तत्त्वज्ञानन्तु खलुमिथ्याज्ञानविपर्ययेण व्याख्यातम्, आत्मनि
 तावदस्तीति अनात्मन्यनात्मेति एवं दुःखेऽनित्येऽनाणे स-
 भये जुगुप्सिते हातये च यथा-विषयं वेदितव्यम्, प्रवृत्तौ
 अस्ति कर्म अस्ति कर्मफलमिति दोषेषु दोषनिमित्तोऽयं
 संसार इति । प्रेत्यभावे खल्वस्ति जन्तुर्जीवः सत्त्वात्मा-
 वा यः प्रेत्य भवेदिति । निमित्तवज्जन्म निमित्तवान् जन्मो-
 परम-इत्यनादिः प्रेत्यभावोऽपवर्गान्त-इति नैमित्तिकः
 सन् प्रेत्यभावः प्रवृत्तिनिमित्त इति सात्मकः सन् देहेन्द्रिय-
 बुद्धिवेदनासन्तानोच्छेदप्रतिसन्धानाभ्यां प्रवर्तत इति । अप-
 वर्गः शान्तः खल्वयं सर्वविप्रयोगः सर्वोपरमोऽवर्गः । बल-
 च लक्ष्मं घोरं पापकं लुप्यत इति कथं बुद्धिमान् सर्व-
 दुःखोच्छेदं सर्वदुःखसंविदपवर्गं न रोचयेदिति । तद्यथा
 मधुविषसंपृक्तान्नमनादेयमिति एवं सुखं दुःखानुषक्तमना-

भा० देयमिति । त्रिविधाचास्य शास्त्रस्य प्रवृत्तिः । उद्देशो लक्षणं परीक्षा चेति, तत्र नामधेयेन पदार्थमात्रस्याभिधानमुद्देशः, तत्रोद्दिष्टस्याऽतत्त्ववच्छेदको धर्मो लक्षणम् लक्षितस्य यथालक्षणमुपपद्यते न वेति प्रमाणैरवधारणं परीक्षा, तत्रोद्दिष्टस्य प्रविभक्तस्य लक्षणमुच्यते यथा प्रमाणानां प्रमेयस्य च, उद्दिष्टस्य लक्षितस्य च विभागवचनं यथा कलस्य वचनविघातोऽर्थविकल्पोपपत्त्या कलम् तत् त्रिविधमिति । अथोद्दिष्टस्य विभागवचनम् ॥

सू० प्रत्यक्षानुमानोपमानशब्दाः प्रमाणानि ॥ ३ ॥

भा० अत्रस्यास्य प्रतिविषयं वृत्तिः प्रत्यक्षम् । वृत्तिस्तु सन्निकर्षो ज्ञानं वा यदा सन्निकर्षस्तदा ज्ञानं प्रमितिः यदा ज्ञानं तदा हानोपादानोपेक्षाबुद्ध्यः फलम् । अनुमानम् । मितेन लिङ्गेनार्थस्य पञ्चान्मानमनुमानम् । उपमानं सारूप्यज्ञानम् यथा गौरेवं गवय इति, सारूप्यन्तु सामान्ययोगः । शब्दः शब्दतेऽनेनार्थ इत्यभिधीयते ज्ञायते उपलब्धिसाधनानि प्रमाणानीति समाख्याननिर्वचनसामर्थ्याद्बोद्धव्यम्, प्रमीयतेऽनेनेति करणार्थाभिधानो हि प्रमाणशब्दस्य विशेषसमाख्या*या अपि तथैव व्याख्यानम् । किं पुनः प्रमाणानि प्रमेयमभिसंभवन्ते अथ प्रमेयं व्यव-

* खपि इत्यपि कश्चित् पाठः ।

भा० तिष्ठन्त इत्युभयथा दर्शनम् । अख्यात्मेत्याप्तोपदेशात् प्र-
तीयते तत्रानुमानमिच्छादेषप्रयत्नसुखदुःखज्ञानान्यात्मनो
लिङ्गमिति । प्रत्यक्षं युञ्जानस्य योगसमाधिजमात्ममनसोः
संयोगविशेषादात्मा प्रत्यक्ष इति, अग्निराप्तोपदेशात् प्रती-
यते अत्राग्निरिति, प्रत्यासीदता धूमदर्शनेनानुमीयते ।
प्रत्यासन्नेन च प्रत्यक्षत उपलभ्यते, व्यवस्था पुनरग्नौ चोत्रं
जुहुयात् स्वर्गकाम इति । लौकिकस्य स्वर्गे न लिङ्गदर्शनं
न प्रत्यक्षम् । स्तनयितुशब्दे श्रूयमाणे शब्दहेतोरनुमानम्
तत्र न प्रत्यक्षं नागमः, पाणौ प्रत्यक्षत उपलभ्यमाने नानु-
मानं नागम इति । साचेयं प्रमितिः प्रत्यक्षपरा, जिज्ञा-
सितमर्थमाप्तोपदेशात् प्रतिपद्यमानो लिङ्गदर्शनेनापि बु-
भुत्सते । लिङ्गदर्शनानुमितञ्च प्रत्यक्षतो दिदृक्षते, प्रत्यक्षत
उपलब्धेऽर्थे जिज्ञासा निवर्तते । पूर्वोक्तमुदाहरणम् अग्नि-
रिति प्रमातुः प्रमातव्येऽर्थे प्रमाणानां सङ्करोऽभि संभवः ।
असङ्करो व्यवस्थेति । *अथ विभक्तानां लक्षणवचनमिति ॥

सू० इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नं ज्ञानमव्यपदेश्यमव्य-
भिचारि व्यवसायात्मकम् प्रत्यक्षम् ॥ ४ ॥

भा० इन्द्रियस्यार्थेन सन्निकर्षादुत्पद्यते यत् ज्ञानं तत् प्रत्य-
क्षम् । न तर्हीदानीमिदं भवति आत्मा मनसा संयुज्यते
मन इन्द्रियेण इन्द्रियमर्थेनेति, नेदं कारणावधारणमेता-

भा० वत् प्रत्यक्षे कारणमिति किन्तु विशिष्टकारणवचनमिति
 यत्प्रत्यक्षज्ञानस्य विशिष्टकारणं तदुच्यते, यत्तु समानमनु-
 मानादिज्ञानस्य न तन्निवर्त्तत इति । मनसस्तर्हीन्द्रियेण
 संयोगो वक्तव्यः । भिद्यमानस्य प्रत्यक्षज्ञानस्य नायं भि-
 द्यत इति समानत्वान्नोक्त इति यावदर्थं वै नामधेयशब्दा-
 स्तैरर्थसंप्रत्ययः अर्थसम्प्रत्ययाश्च व्यवहारः । तच्चेदमि-
 न्द्रियार्थसन्निकर्षादुत्पन्नमर्थज्ञानं रूपमिति वा रस-
 इत्येवं वा भवति, रूपरसशब्दाश्च विषयनामधेयम् । तेन
 व्यपदिश्यते ज्ञानं रूपमिति जानीते रस इति जानीते नाम-
 धेयशब्देन व्यपदिश्यमानं सत् शब्दम् प्रसज्यते अत-
 आहाव्यपदेशमिति । यदिदमनुपयुक्ते शब्दार्थसम्बन्धेऽर्थ-
 ज्ञानं तन्नामधेयशब्देन व्यपदिश्यते, गृहीतेपि च शब्दा-
 र्थसम्बन्धेऽस्वार्थस्याऽयं शब्दो नामधेयमिति, यदातु मोर्था
 गृह्यते तदा तत् पूर्वस्मादर्थज्ञानाच्च विशिष्यते तदर्थ-
 विज्ञानं तादृगेव भवति तस्य त्वर्थज्ञानस्यान्यः समा-
 ख्याशब्दो नास्ति येन प्रतीयमानो व्यवहाराय कथ्येत
 न चाप्रतीयमानेन व्यवहारः । *तस्माज्ज्ञेयस्यार्थस्य संज्ञा-
 शब्देनेतिकरणयुक्तेन निर्दिश्यते रूपमिति ज्ञानं रस इति
 ज्ञानमिति तदेवमर्थज्ञानकाले स न समाख्याशब्दो व्या-
 प्रियते व्यवहारकाले तु व्याप्रियते, तस्मादशब्दमर्थज्ञा-
 नमिन्द्रियार्थसन्निकर्षादुत्पन्नमिति । योश्च मरीचयो भौमे-

* तस्माज्ज्ञेयस्येति क्वचित् पाठः ।

भा० नोपपत्त्या संसृष्टाः स्यन्दमाना दूरस्थस्य चक्षुषा सन्निकृष्यन्ते
 तत्रेन्द्रियार्थसन्निकर्षादुदकमितिज्ञानमुत्पद्यते तच्च प्रत्यक्षम्
 प्रसज्यतइत्यत आह अव्यभिचारोति यदतस्मिंस्तदिति तद्व्य-
 भिचारि, यत्तु तस्मिंस्तदिति तदव्यभिचारि प्रत्यक्षमिति ।
 दूराच्चक्षुषा ह्ययमर्थं पश्यन्नावधारयति धूम इति वा, रेणु-
 रिति वा वदेत् तदिन्द्रियार्थसन्निकर्षात्पन्नमनवधारण-
 ज्ञानम् प्रत्यक्षम् प्रसज्यतइत्यत आह व्यवसायात्मकमिति,
 *तच्चैतन्नान्यथम् आत्ममनःसन्निकर्षजमेवानवधारणज्ञान-
 मिति । चक्षुषा ह्ययमर्थं पश्यन्नावधारयति †तथाचेन्द्रि-
 येणोपलब्धमर्थं मनसोपलभते एवमिन्द्रियेणानवधारयन्
 मनसा नावधारयति यच्चैतदिन्द्रियानवधारणपूर्वकं
 मनसाऽनवधारणं तद्विशेषापेक्षं विमर्शमात्रं संशयो-
 पूर्वमिति सर्वत्र प्रत्यक्षविषये ज्ञातुरिन्द्रियेण व्यवसायः
 पश्चात् मनसाऽनुव्यवसायः उपपद्यतेन्द्रियाणामनुव्यवसायाऽ
 भावादिति । आत्मादिषु सुखादिषु च प्रत्यक्षलक्षणं वक्त-
 व्यम् अनिन्द्रियार्थसन्निकर्षजं हि तदिति, इन्द्रियस्य वै सतो
 मनस इन्द्रियेभ्यः पृथगुपदेशो धर्मभेदात् । भौतिकानी-
 न्द्रियाणि नियतविषयाणि । सगुणानाञ्चैवामिन्द्रियभाव
 इति । मनस्त्वभौतिकं सर्वविषयश्च नास्य सगुणस्येन्द्रिय-
 भाव इति सति चेन्द्रियार्थसन्निकर्षे सन्निधिमसन्निधि-
 चास्य युगपज्ज्ञानानुत्पत्तिकारणं वक्ष्याम इति । मनस-

* न चैतदिति क्वचित्पाठः । † यथाचेति क्वचित्पाठः ।

भा० स्रेन्द्रियभावान्न वाच्यं लक्षणान्तरमिति । तन्त्रान्तरसमा-
चाराच्चैतत् *प्रत्येतव्यमिति परमतमप्रतिषिद्धमनुमतमिति
हि तन्त्रयुक्तिः ॥ व्याख्यातम् प्रत्यक्षम् ॥

सू० अथ तत्पूर्वकं चिविधमनुमानम् पूर्ववच्छे-
षवत् सामान्यतोदृष्टञ्च ॥ ५ ॥

भा० तत्पूर्वकमित्यनेन लिङ्गलिङ्गिनोः सम्बन्धदर्शनम् लि-
ङ्गदर्शनस्याभिसम्बध्यते लिङ्गलिङ्गिनोः सम्बद्धयोर्दर्शनेन
लिङ्गस्यतिरभिसम्बध्यते स्यत्या लिङ्गदर्शनेन चाप्रत्यक्षोऽ-
र्थोऽनुमीयते । पूर्ववदिति यत्र कारणेन कार्यमनुमीयते ।
यथा मेघोन्नत्या भविष्यति वृष्टिरिति । शेषवत्तत् यत्र
कार्येण कारणमनुमीयते पूर्वोदकविपरीतमुदकं नद्याः
पूर्णत्वं शीघ्रत्वञ्च दृष्ट्वा स्रोतसोऽनुमीयते भूता
रिति, सामान्यतोदृष्टं ब्रज्यापूर्वकमन्यत्रदृष्टस्यान्यत्र दर्श-
नमिति तथाचादित्यस्य तस्मादस्यप्रत्यक्षाप्यादित्यस्य ब्र-
ज्येति । अथ वा पूर्ववदिति यत्र यथा पूर्वम्प्रत्यक्षभू-
तयोरन्यतरदर्शनेनान्यतरस्याप्रत्यक्षस्यानुमानम् । यथा
धूमेनाग्निरिति । शेषवच्चाम परिशेषः स च प्रसक्तप्रतिषे-
धेऽन्यत्राप्रसङ्गाच्छिष्यमाणे सम्प्रत्ययः यथा सदनित्यमि-
त्येवमादिना द्रव्यगुणकर्मणामविशेषेण सामान्यविशेषसम-
वायेभ्यो निर्भक्तस्य शब्दस्य तस्मिन् द्रव्यकर्मगुणसंशये न

भा० द्रव्यमेकद्रव्यत्वात् न कर्म शब्दान्तरहेतुत्वात् यस्तु शिष्यते
 सोयमिति शब्दस्य गुणत्वप्रतिपत्तिः । सामान्यतोदृष्टं नाम
 यथाप्रत्यक्षे लिङ्गलिङ्गिनोः सम्बन्धे केनचिदर्धेन लिङ्गस्य
 सामान्यादप्रत्यक्षो लिङ्गी गम्यते यथेच्छादिभिरात्मा
 इच्छादयो गुणाः गुणाश्च द्रव्यसंस्थानाः तद्यदेषां स्थानं स
 आत्मेति विभागवचनादेतन्निविधमिति सिद्धे त्रिविधवचनम्
 महतोमहाविषयस्य न्यायस्य लघोयसा सूत्रेणोपदेशात् परं
 वाक्यलाघवं मन्यमानस्यान्यस्मिन् वाक्यलाघवेऽनादरः
 तथाचायमित्यभूतेन वाक्यविकल्पेन प्रवृत्तः सिद्धान्ते
 क्लृप्ते शब्दादिषु च वज्रसं समाचारः शास्त्रे इति सद्दि-
 षयश्च प्रत्यक्षं सदसद्विषयश्चानुमानम्, कस्मात् त्रैकाल्य-
 ग्रहणात् त्रिकालयुक्ता अर्था अनुमानेन गृह्यन्ते भविष्य-
 तीत्यनुमीयते भवतीति चाभूदिति च असच्च खल्वती-
 तमनागतञ्चेति । अथोपमानम् ॥

सू० प्रसिद्धसाधर्म्यात् साध्यसाधनमुपमानम् ॥, ई ॥

भा० प्रज्ञातेन सामान्यात् प्रज्ञापनीयस्य प्रज्ञापनमुपमान-
 मिति । यथा गौरेवं गवय इति, किं पुनरुपमानेन
 क्रियते यदा खल्वयं गवासमानधर्मं प्रतिपद्यते तदा प्रत्य-
 क्षतत्त्वमर्थं प्रतिपद्यत इति समाख्यासम्बन्धप्रतिपत्तिरूप-
 मानार्थ इत्याह । यथा गौरेवं गवय इत्युपमाने प्रयुक्ते गवा
 समानधर्ममर्थसिद्धिर्थासन्निकर्षादुपलभमानोऽस्य गवय-

भा० शब्दः संज्ञेति संज्ञासंज्ञिसम्बन्धं प्रतिपद्यत इति । यथा मुद्रस्तथा मुद्रपर्णी यथामाषस्तथा माषपर्णीत्युपमाने प्रयुक्ते उपमानात् संज्ञासंज्ञिसम्बन्धमप्रतिपद्यमानस्तामोषर्णी भैषज्यायाहरति एवमन्योऽप्युपमानस्य लोके विषयो बुभुक्षितव्य इति । अथ शब्दः ॥

सू० आप्तोपदेशः शब्दः ॥ ७ ॥

भा० आप्तः खलु साक्षात् कृतधर्मा यथादृष्टस्वार्थस्य चि-
त्स्वापचिषया प्रयुक्त उपदेष्टा साक्षात्करणमर्थस्याप्तिस्तथा
प्रवर्तत इत्याप्तः स्वव्यर्थस्वेच्छानां समानं लक्षणम् । तथा
च सर्वेषां व्यवहाराः प्रवर्तन्त इति । एवमेभिः प्रमाणै-
र्देवमनुष्यतिरश्चां व्यवहाराः प्रकल्प्यन्ते नातोऽन्येति ॥

सू० सद्विविधो दृष्टाऽदृष्टार्थत्वात् ॥ ८ ॥

भा० यस्येह दृश्यतेऽर्थः स दृष्टार्थः यस्यामुत्र प्रतीयते सो-
ऽदृष्टार्थः एवम*पि लौकिकवाक्यानां विभाग इति । कि-
मर्थं पुनरिदमुच्यते स न मन्येत दृष्टार्थेऽप्युपदेशः प्रमा-
णम् अर्थस्यावधारणादिति । अदृष्टार्थोऽपि प्रमाणमर्थस्या-
नुमानादिति । † किं पुनरनेन प्रमाणेनार्थजातं प्रमातव्य-
मिति तदुच्यते ॥

सू० आत्मशरीरेन्द्रियार्थबुद्धिमनःप्रवृत्तिदोषप्रे-
त्यभावफलदुःखापवर्गस्तु प्रमेयम् ॥ ६ ॥

मा० तत्रात्मा सर्वस्य द्रष्टा, सर्वस्य भोक्ता, सर्वज्ञः, स-
र्वानुभावो, तस्य भोगायतनं शरीरम्। भोगसाधनानी-
न्द्रियाणि भोक्तव्या इन्द्रियार्थाः भोगो बुद्धिः। सर्वार्थोप-
लब्धौ नेन्द्रियाणि प्रभवन्तीति सर्वविषयमन्तःकरणं मनः-
शरीरेन्द्रियार्थबुद्धिसुखवेदनानां निवृत्तिकारणम्, प्रवृ-
त्तिदोषाश्च नास्य, इदं शरीरमपूर्वमनुत्तरञ्च, पूर्वं शरी-
राणामादिर्नास्ति उत्तरेषामपवर्गोऽन्त इति प्रेत्यभावः।
ससाधनसुखदुःखापभोगः फलम्। दुःखमिति नेदमनु-
कूलवेदनीयस्य सुखस्य प्रतीतेः प्रत्याख्यानम्, किन्तर्हि
जन्मनएवेदम्, ससुखसाधनस्य दुःखानुषङ्गाद्दुःखेनावि-
प्रयोगादिविधसाधनायोगाद्दुःखमितिसमाधिभावनमुपदि-
श्यते, समाहितो भावयति, भावयन्नविच्यते, निर्विण्णस्य
वैराग्यम्, विरक्तस्यापवर्ग इति जन्ममरणप्रवन्धोच्छेदः सर्व
दुःखप्रक्षान्तमपवर्ग इति। अस्त्यन्यदपि द्रव्यगुणकर्मसा-
मान्यविशेषसमवायाः प्रमेयम् तद्भेदेन चाऽपरिसङ्ख्येयम्।
अस्य तु तत्त्वज्ञानादपवर्गः मिथ्याज्ञानात् संसार इत्यत-
एतदुपदिष्टं विशेषेणेति। तत्रात्मा तावत् प्रत्यक्षतो न गृ-
ह्यते स किमाप्तोपदेशमात्रादेव प्रतिपद्यत इति नेत्युच्यते
अनुमानाच्च प्रतिपत्तव्य इति कथम् ॥

सू० इच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदुःखज्ञानान्यात्मनो लिङ्ग-
मिति ॥ १० ॥

भा० यज्जातीयस्यार्थस्य सन्निकर्षात् सुखमात्मोपलब्धवान्
तज्जातीयमेवार्थं पश्यन्नुपादातुमिच्छति सेयमादातुमिच्छा
एकस्थानेकार्थदर्शिना दर्शनप्रतिसन्धानाद्भवति लिङ्गमा-
त्मनः, नियतविषये हि बुद्धिभेदमात्रे न सम्भवति दे-
हान्तरवदिति । एवमेकस्थानेकार्थदर्शिना दर्शनप्रतिसन्धा-
नाद्दुःखहेतौ द्वेषः, यज्जातीयो यस्यार्थः सुखहेतुः प्रसि-
द्धस्तज्जातीयमर्थमप्यश्नान्नादातुम् प्रयतते सोऽयम् प्रयत्न
एकमनेकार्थदर्शिनं दर्शनप्रतिसन्धातारमन्तरेण न स्यात्
नियतविषये बुद्धिभेदमात्रे न सम्भवति देहान्तरवदिति
एतेन दुःखहेतौ प्रयत्नो व्याख्यातः । सुखदुःखसमूह्या चायं
तत्साधनमाददानः सुखमुपलभते दुःखमुपलभते सुख-
दुःखे वेदयते पूर्वोक्तएव हेतुः, बुभुक्षमानः खल्वयं वि-
मृशति किंस्त्रिदिति विमृशन् जानीते इदमिति तदिदं
ज्ञानं बुभुक्ष्याविमर्शाभ्यामभिन्नकर्तृकं गृह्यमाणमात्म-
लिङ्गम् पूर्वोक्तएव हेतुरिति । तत्र देहान्तरवदिति वि-
भज्यते । यथाऽनात्मवादिना देहान्तरेषु नियतविषया-
बुद्धिभेदा न प्रतिसन्धीयन्ते तथैकदेहविषया अपि न
प्रतिसन्धीयेरन् अविशेषात्, सोऽयमेकसत्वस्य समाचारः
स्वयं दृष्टस्य स्मरणं नान्यदृष्टस्येति एवं खलु नानासत्वानां

समाचारोऽन्यदुष्टमन्ये न स्मरन्तीति । तदेतदुभयमशक्य-
मनात्मवादिना व्यवस्थापयितुमिति । एवमुपपन्नमस्त्वा-
त्मेति । तस्य भोगाधिष्ठानम् ॥

सू० चेष्टेन्द्रियार्थाश्रयः शरीरम् ॥ ११ ॥

भा० कथं चेष्टाश्रयः । ईप्सितं जिहासितं वाऽर्थमधिकृत्येष्टा-
जिहासाप्रयुक्तस्य तदुपायानुष्ठानलक्षणा समोहा चेष्टा सा
यत्र वर्तते तच्छरीरम् । कथमिन्द्रियाश्रयः । यस्यानुग्रहेणा-
नुगृहीतानि उपघाते चोपहतानि स्वविषयेषु साध्वसाधुषु
वर्तन्ते स एषामाश्रयस्तच्छरीरम्, कथमर्थाश्रयः यस्मिन्ना-
यतने इन्द्रियार्थसन्निकर्षादुत्पन्नयोः सुखदुःखयोः प्रतिसं-
वेदनं प्रवर्तते स एषामाश्रयस्तच्छरीरमिति । भोगसाध-
नानि पुनः ॥

सू० घ्राणरसनचक्षुस्त्वक्श्रोत्राणीन्द्रियाणि भूतेभ्यः
॥ १२ ॥

भा० जिघ्रत्यनेनेति घ्राणं गन्धं गृह्णातीति, रसयत्यनेनेति
रसनं रसं गृह्णातीति । चष्टेऽनेनेति चक्षुः रूपं पश्यतीति,
स्पृशत्यनेनेति स्पर्शनम् त्वक्स्थानमिन्द्रियं त्वक् तदुप-
चारः स्नानादिति । शृणोत्यनेनेति श्रोत्रं शब्दं गृह्णा-
तीति । एवं समाख्यानिर्वचनसामर्थ्याद्बोध्यम्* स्वविषय-
ग्रहणलक्षणानीन्द्रियाणीति । भूतेभ्य इति नानाप्रकृतोना-

भा० मेषां सतां विषयनियमो नैकप्रकृतीनां सति च विषय
नियमे स्वविषयग्रहणलक्षणत्वं भवतीति । कानि पुनरि-
न्द्रियकारणानि ॥

सू० पृथिव्यापस्तेजो वायुराकाशमिति भूतानि ॥
॥ १३ ॥

भा० संज्ञाशब्दैः पृथगुपदेशो भूतानां विभक्तानां सुवचं*
कार्यमविष्यतीति । इमे तु खलु ॥

सू० गन्धरसरूपस्पर्शशब्दाः पृथिव्यादिगुणास्तद-
र्थाः ॥ १४ ॥

भा० पृथिव्यादीनां यथाविनियोगं गुणा इन्द्रियाणां यथा-
क्रममर्था विषया इति । अचेतनस्य करणस्य बुद्धेर्ज्ञानं
वृत्तिः चेतनस्याकर्तृरूपलब्धिरिति युक्तिविरुद्धमर्थं प्रत्या-
चक्षाणक इवेदमाह ॥

सू० बुद्धिरूपलब्धिर्ज्ञानमित्यनर्थान्तरम् ॥ १५ ॥

भा० नाचेतनस्य करणस्य बुद्धेर्ज्ञानं भवितुमर्हति तद्वि चेतनं
स्यात् एकस्यायं चेतनो देहेन्द्रियसङ्घातव्यतिरिक्त इति प्रमे-
यलक्षणार्थस्याऽपि वाक्यस्यान्यार्थप्रकाशनमुपपत्तिसामर्थ्या-
दिति । स्वत्यनुमानागमसंशयप्रतिभास्वप्नज्ञानोहाः सुखा-
दिप्रत्यक्षमिहादयश्च मनसो लिङ्गानि तेषु सत्स्वियमपि ॥

* वचनमिति कचित् पाठः ।

सू० युगपज्ज्ञानानुत्पत्तिर्मनसो लिङ्गम् ॥ १६ ॥

भा० अनिन्द्रियनिमित्ताः स्मृत्यादयः करणान्तरनिमित्ता भवितुमर्हन्तीति युगपच्च खलु घ्राणादीनां गन्धादीनाञ्च सन्निकर्षेषु सत्सु युगपद्भानानि* नेत्यद्यन्ते तेनानुमीयते अस्ति तत्तदिन्द्रियसंयोगि सहकारिनिमित्तान्तरमव्यापि यस्यासन्निधेर्नेत्यद्यते ज्ञानं सन्निधेस्तेत्यद्यत इति मनः-संयोगानपेक्षस्य चोन्द्रियार्थसन्निकर्षस्य ज्ञानहेतुत्वे युग-पदुत्पद्येरन् ज्ञानानीति । क्रमप्राप्ता तु ॥

सू० प्रवृत्तिर्वाग्बुद्धिशरीरारम्भ इति ॥ १७ ॥

भा० मनोऽत्र बुद्धिरित्यभिप्रेतम्, बुद्ध्यतेऽनेनेति बुद्धिः, सोय-मारम्भः शरीरेण वाचा मनसा च पुण्यः पापश्च दशविधः, तदेतत् कृतभाष्यं द्वितीयसूत्र इति ॥

सू० प्रवर्त्तनालक्षणा दोषाः ॥ १८ ॥

भा० प्रवर्त्तना प्रवृत्तिहेतुत्वम् ज्ञातारं हि रागादयः प्रवर्त्तयन्ति पुण्ये पापे वा । यत्र मिथ्याज्ञानं तत्र रागद्वेषाविति प्रत्यात्मवेदनोया होमे दोषाः कस्मात् लक्षणतो निर्दिश्यन्त इति । कर्मलक्षणाः खलु रक्तद्विष्टमूढाः रक्तो हि तत्कर्म कुरुते येन कर्मणा सुखं दुःखं वा भजते, तथा द्विष्टस्तथा

* युगपज्ज्ञानानीति क्वचित् पाठः ।

भा० मूढ इति दोषा रागदेषमोहा इत्युच्यमाने *बहुनोक्तं
भवतीति ॥

सू० पुनरुत्पत्तिः प्रेत्यभावः ॥ १९ ॥

भा० उत्पन्नस्य क्वचित् सत्त्विकाये मृत्वा या पुनरुत्पत्तिः
स† प्रेत्यभावः । उत्पन्नस्य सम्बद्धस्य सम्बन्धस्तु देहेन्द्रि-
यमनोबुद्धिवेदनाभिः, पुनरुत्पत्तिः पुनर्देहादिभिः स-
म्बन्धः पुनरित्यभ्यासाभिधानम् । यत्र क्वचित् प्राणभृन्नि-
काये वर्त्तमानः पूर्वोपात्तान् देहादीन् जहाति तत् प्रैति
यत् तत्रान्यत्र वा देहादीनन्यानुपादत्ते तद्भवति प्रेत्यभा-
वो मृत्वा पुनर्जन्म सोऽयं जन्ममरणप्रबन्धाभ्यासोऽनादिर-
पवर्गान्तः प्रेत्यभावो वेदितव्य इति ॥

सू० प्रवृत्तिदोषजनितोऽर्थः फलम् ॥ २० ॥

भा० सुखदुःखसंवेदनं फलम् सुखावेपाकं कर्म्म दुःखवि-
पाकञ्च तत्पुनर्देहेन्द्रियविषयबुद्धिषु सतीषु भवतीति सह
देहादिभिः फलमभिप्रेतम् तथा हि प्रवृत्तिदोषजनि-
तोऽर्थः फलमेतत् सर्व्वभवति तदेतत् फलमुपात्तं हेयं
त्यक्त्यक्तमुपादेयमिति नास्य हानोपादानयोर्निष्ठा पर्य्य-
वसानं वाऽस्ति न खल्वयं फलस्य हानोपादानस्रोतसोऽह्यते
लोक इति । अथैतदेव ॥

* बहुलोक्तमिति क्वचित् पाठः । † सा इति क्वचित् पाठः ।

सू० बाधनालक्षणं दुःखमिति ॥ २१ ॥

भा० बाधना पीडा ताप इति । तयानुविद्धमनुष्यमवि-
निर्भागेन वर्त्तमानं दुःखयोगाद्दुःखमिति सोऽयं सर्व्वं
दुःखेनानुविद्धं दृष्टन्तमिति पश्यन् दुःखं जिह्वासुर्जन्मनि
दुःखदर्शी निर्विद्यते निर्विन्मो विरज्यते विरक्तो विमुच्यते
यत्र तु निष्ठा सोऽयं यत्र तु पर्य्यवसानं ॥

सू० तदत्यन्तविमोक्षोऽपवर्गः ॥ २२ ॥

भा० तेन दुःखेन जन्मनात्यन्तं विमुक्तिरपवर्गः कथमुपात्तस्य
जन्मनो हानमन्यस्य चानुपादानम् एतामवस्थामपर्य्यन्ताम-
पवर्गं वेदयन्तेऽपवर्गविदः तदभयमजरममृत्युपदं ब्रह्मचे-
मप्राप्तिरिति । नित्यं सुखमात्मनो महत्ववन्मोक्षे व्यज्यते
तेनाभिव्यक्तेनात्यन्तं विमुक्तः सुखी भवतीति केचिन्नन्यन्ते
तेषां प्रमाणाभावादनुपपत्तिः, न प्रत्यक्षं नानुमानं नाग-
मो वा विद्यते नित्यं सुखमात्मनो महत्ववन्मोक्षेऽभिव्यज्यत
इति नित्यस्याभिव्यक्तिः संवेदनं ज्ञानमिति तस्य हेतुर्वाच्यो
यतस्तदुपपद्यत इति, सुखवन्नित्यमिति चेत् संसारस्यस्य
मुक्तेनाऽविशेषः यथा मुक्तः सुखेन तत्संवेदनेन च सन्नि-
त्येनोपपन्नस्तथा संसारस्योऽपि प्रसज्यत इति । उभयस्य
नित्यत्वात् अभ्यनुज्ञाने च धर्माधर्मफलान् सादृश्यं
योगपदं गृह्येत यदिदमुत्पत्तिस्थानेषु धर्माधर्मफलं सुखं
दुःखं वा संवेद्यते पर्यायेण तस्य च *नित्यं स्वसंवेदनस्य च

* नित्यसुखसंवेदनस्येति क्वचित् पाठः ।

भा० सह भावो यौगपद्यं गृह्येत न सुखाभावो नाऽनभिव्यक्ति-
रस्ति उभयस्य नित्यत्वात् अनित्यत्वे हेतुवचनम् । अथ
मोक्षे नित्यस्य सुखस्य संवेदनमनित्यं यत उत्पद्यते स
हेतुर्वाच्यः आत्ममनःसंयोगस्य निमित्तान्तरसहितस्य हेतु-
त्वम् । आत्ममनःसंयोगो हेतुरिति चेत् एवमपि तस्य सह-
कारिनिमित्तान्तरं वचनोपमिति धर्मस्य कारणवचनम्
यदि धर्मो नित्तान्तरं तस्य हेतुर्वाच्यो यत उत्पद्यत इति
योगसमाधिजस्य कार्यावसायविरोधात् प्रक्षये* संवेदना-
निवृत्तिः, यदि योगसमाधिजो धर्मो हेतुस्तस्य कार्यावसा-
यविरोधात् प्रक्षये संवेदनमत्यन्तं निवर्त्तयति असंवेदने
चाविद्यमानाविशेषः यदि धर्मक्षयात् संवेदनोपरमो नित्यं
सुखं न संवेद्यत इति किं विद्यमानं न संवेद्यते अथावि-
द्यमानमिति नानुमानं विशिष्टेऽस्तीति अप्रक्षयस्य धर्मस्य
निरनुमानमुत्पत्तिधर्मकत्वात् योगसमाधिजो धर्मो न क्षी-
यते इति नास्त्यनुमानमुत्पत्तिधर्मकमनित्यमिति विपर्य-
यस्य त्वनुमानम् यस्य तु संवेदनापरमो नास्ति तेन संवे-
दनेन हेतुर्नित्य इत्यनुमेयम् । नित्ये च मुक्तसंसारस्य-
योरविशेषइत्युक्तम् यथा मुक्तस्य नित्यं सुखं तत्संवेद-
नहेतुस्य संवेदनस्य त्वपरमो नास्ति कारणस्य नित्य-
त्वात् तथा संसारस्य स्थापीति एवञ्च सति धर्माधर्म-
फलेन सुखदुःखसंवेदनेन साहचर्यं गृह्येतेति । शरी-

भा० रादिसम्बन्धः प्रतिबन्धहेतुरिति चेत् न शरीरादीना-
 मुपभोगार्थत्वात् विपर्ययस्य चाननुमानात्। स्यान्मतं सं-
 सारावस्थशरीरादिसम्बन्धो नित्यसुखसंवेदनहेतोः प्रतिब-
 न्धकस्तेनाविशेषो नास्तीति, एतच्चायुक्तम् शरीरादय उप-
 भोगार्थास्ते भोगप्रतिबन्धं करिष्यन्तीत्यनुपपन्नम् न चा-
 स्थानुमानमशरीरस्यान्मनोभोगः कश्चिदस्तीति, दृष्टाधिग-
 मार्था प्रवृत्तिरिति चेत् न अनिष्टोपरमार्थत्वात् दृष्टाधि-
 गमार्था मोक्षोपदेशः प्रवृत्तिश्च मुमुक्षूणामिति नेष्टमनि-
 ष्ठेनाननुविद्धं सम्भवतीति दृष्टमप्यनिष्टं सम्पद्यते अनिष्ट-
 हानाय घटमान इष्टमपि जहाति विवेकहानस्याशक्य-
 त्वादिति दृष्टातिक्रमश्च देहादिषु तुल्यः यथा दृष्टमनित्यं
 सुखं परित्यज्य नित्यं सुखं कामयते एवं देहेन्द्रियबुद्धि-
 रनित्या दृष्टा अतिक्रम्य मुक्तस्य नित्या देहेन्द्रियबुद्ध्यः क-
 ल्पयितव्याः, साधोयस्यैवं मुक्तस्य *कैकात्म्यं कल्पितम्भवतीति,
 उपपत्तिविरुद्धमिति चेत् समानम्। देहादीनां नित्यत्वं
 प्रमाणविरुद्धं कल्पयितुमशक्यमिति समानं सुखस्यापि
 नित्यत्वं प्रमाणविरुद्धं कल्पयितुमशक्यमिति, आत्यन्तिके
 च संसारदुःखाभावे सुखवचनादागमेपि सत्यविरोधः
 यद्यपि कश्चिदागमः स्यान्मुक्तस्यात्यन्तिकं सुखमिति सुख-
 शब्द आत्यन्तिके दुःखाभावे प्रयुक्त इत्येवमुपपद्यते। दृष्टो
 हि दुःखाभावे सुखशब्दप्रयोगो बहूलं लोक इति, नित्य-

* कैवल्यमिति क्वचित् पाठः।

भा० सुखरागस्याप्रहाणे मोक्षाधिगमाभावो रागस्य बन्धनस-
माज्ञानात् यद्ययं मोक्षे नित्यं सुखमभिव्यज्यत इति नित्य-
सुखरागेण मोक्षाय घटमानो न मोक्षमधिगच्छेन्नाधि-
गन्तुमर्हतीति बन्धनसमाज्ञातो* हि रागः न च बन्धने
सत्यपि कश्चिन्मुक्त इत्युपपद्यत इति प्रहीणनित्यसुखराग-
स्याप्रतिकूलत्वम् अथास्य नित्यसुखरागः प्रहीयते तस्मिन्
प्रहीणे नास्य नित्यसुखरागः प्रतिकूलो भवति यद्येवं मु-
क्तस्य नित्यं सुखं भवति अथापि न भवति नास्योभयोः
पक्षयोर्भोक्षाधिगमो विकल्प्यत इति । स्थानवत एव
तर्हि संशयस्य लक्षणं वाच्यमिति तदुच्यते ॥

सू० समानानेकधर्मापपत्ते विप्रतिपत्तेरुपलब्ध्यनुप-
लब्धव्यवस्थातश्च विशेषापेक्षो विमर्शः संशयः ॥
॥ २३ ॥

भा० समानधर्मापपत्ते विशेषापेक्षो विमर्शः संशय इति
स्थानुपुरुषयोः समानं धर्मामारोहपरिणाक्षौ पश्यन् पूर्व-
दृष्टञ्च तयोर्विशेषं बुभुक्षमानः किंस्त्रिदित्यन्यतरन्ना-
वधारयति तदनवधारणं ज्ञानं संशयः समानमनयो
धर्मापलभे विशेषमन्यतरस्य नोपलभदित्येषा बुद्धिर-
पेक्षा संशयस्य प्रवर्तिका †वर्तते, तेन विशेषापेक्षो विमर्शः

भा० संशयः । अनेकधर्मीपपत्तेरिति समानजातीयमसमानजा-
 तीयज्ञानेकम् तस्यानेकस्य धर्मीपपत्ते विंशेषस्योभयथा
 दृष्टत्वात् समानजातीयेभ्योऽसमानजातीयेभ्यश्चार्था विशि-
 ख्यन्ते । गन्धवत्त्वात् पृथिवी अवादिभ्यो विशिख्यते गुणकर्म-
 भ्यश्च, अस्ति च शब्दे विभागजत्वं विशेषः, तस्मिन् द्रव्यं गुणः
 कर्म वेति सन्देहः विशेषस्योभयथा दृष्टत्वात् किं द्रव्यस्य
 सतो गुणकर्मभ्यो विशेष आहोस्त्रिगुणस्य सत इति अथ
 कर्मणः सत इति विशेषापेक्षा अन्यतमस्य व्यवस्थापकं धर्म-
 न्नोपलभे इति बुद्धिरिति । विप्रतिपत्तेरिति व्याहतमे-
 कार्थदर्शनं विप्रतिपत्तिः । व्याघातो विरोधोऽमहभाव इति
 अस्यात्मेत्येकं दर्शनम् नास्यात्मेत्यपरम्, न च सद्भावासद्भावौ
 सहैकच सम्भवतः, न चान्यतरमाधको हेतुरपलभ्यते तत्र
 तत्त्वानवधारणं संशय इति । उपलब्ध्यवस्थातः खल्वपि
 सच्चोदकमुपलभ्यते तडागादिषु मरीचिषु* वाऽविद्यमानमु-
 दकमिति ततः क्वचिदुपलभ्यमाने तत्त्वव्यवस्थापकस्य प्रमाण-
 स्थानुपलब्धेः किं सदुपलभ्यते अथासदिति संशयो भवति ।
 अनुपलब्ध्यवस्थातः सच्च नोपलभ्यते मूलकीलकोदकादि,
 असच्चानुत्पन्नं निवृद्धं वा, ततः क्वचिदनुपलभ्यमाने संशयः
 किं सन्नोपलभ्यते उतासदिति संशयो भवति विशेषापेक्षा
 पूर्ववत्, पूर्व्यः समानोऽनेकस्य धर्मी ज्ञेयस्यः, उपलब्ध्यनुप-
 लब्धौ पुनर्ज्ञादस्ये, एतावता विशेषेण पुनर्वचनम्, समानध-

* मरीचिषु चापि इति क्वचित् पाठः । + पूर्व्यमिति क्वचित् पाठः ।

भाधिगमात् समानधर्मोपपत्तेर्विशेषस्त्यपेक्षो विमर्श इति,
स्थानवतां खल्वणवचनमिति समानम् ॥

सू० यमर्थमधिकृत्य प्रवर्त्तते तत् प्रयोजनम् ॥ २४ ॥

भा० यमर्थमाप्तव्यं हातव्यं वाऽध्यवसाय तदाप्तिदानोपाय-
मनुतिष्ठति प्रयोजनन्तर्देदितव्यम्, प्रवृत्तिहेतुत्वादिममर्थ-
मास्यामि हास्यामि वेति व्यवसायोऽर्थस्याधिकारः, एवं
व्यवसीयमानोऽर्थोऽधिक्रियत इति ॥

सू० लौकिकपरीक्षकाणां यस्मिन्नर्थे बुद्धिसाम्यं स
दृष्टान्तः ॥ २५ ॥

भा० लोकसाम्यमनतीता लौकिका नैसर्गिकं वैनयिकं बु-
द्धतिश्रयमप्राप्तास्तद्विपरीताः परीक्षकास्तर्केण प्रमाणैरर्थं
परीक्षितुमर्हन्तीति, यथा यमर्थं लौकिका बुध्यन्ते तथा
परीक्षका अपि सोऽर्थो दृष्टान्तः । दृष्टान्तविरोधेन हि प्रति-
पक्षाः प्रतिषेद्धव्या भवन्तीति । दृष्टान्तसमाधिना च ख-
पक्षाः स्थापनीया भवन्तीति । अवयवेषु चोदाहरणाय
कल्पत इति । अथ सिद्धान्तः । इदमित्यभूतश्चेत्यभ्यनु-
ज्ञायमानमर्थजातं सिद्धं सिद्धस्य संस्थितिः सिद्धान्तः ।
संस्थितिरित्यन्नावव्यवस्था, धर्मनियमः । स खल्वर्थः ॥

सू० तन्त्राधिकरणाभ्युपगमसंस्थितिः सिद्धान्तः ॥ २६ ॥

भा० तन्त्रार्थसंस्थितिसूत्रसंस्थितिः । तन्त्रमितरेतराभि-

भा० सम्यङ्कार्यसमूहस्योपदेशः शास्त्रम्। अधिकरणानुषक्तार्था-
संस्थितिरधिकरणसंस्थितिः। अभ्युपगमसंस्थितिरनवधा-
रितार्थपरिग्रहः, तद्विशेषपरीक्षणायाभ्युपगमसिद्धान्तः।
तन्त्रभेदान्तु खलु स चतुर्विधः ॥

सू० सर्वतन्त्रप्रतितन्त्राधिकरणाभ्युपगमसंस्थित्यर्था-
न्तरभावात् ॥ २७ ॥

भा० तत्रैताद्वयतन्त्रः संस्थितयोऽर्थान्तरभूताः, तासां ॥

सू० सर्वतन्त्राविरुद्धस्तन्त्रेऽधिकृतोऽर्थः सर्वतन्त्रसि-
द्धान्तः ॥ २८ ॥

भा० यथा घ्राणादीनीन्द्रियाणि गन्धादय इन्द्रियार्थाः
पृथिव्यादीनि भूतानि प्रमाणैरर्थस्य ग्रहणमिति ॥

सू० समानतन्त्रसिद्धः परतन्त्रासिद्धः प्रतितन्त्रसि-
द्धान्तः ॥ २९ ॥

भा० यथा नासत आत्मलाभः न सत आत्मज्ञानं निरति-
शयाचेतनाः देहेन्द्रियमनःसु विषयेषु तत्तत्कारणेषु च
विशेष इति सांख्यानम्, पुरुषकर्मानिमित्तो भूतसर्गः, कर्म-
चेतवो देवाः प्रवृत्तिश्च, स्वगुणविशिष्टाचेतनाः, असदुत्प-
द्यन्ते, उत्पन्नं निवृध्यते इति योगानाम् ॥

सू० यत्सिद्धावन्यप्रकरणसिद्धिः सोऽधिकरणसि-
द्धान्तः ॥ ३० ॥

भा० यस्यार्थस्य सिद्धावन्येऽर्था अनुषज्यन्ते न तैर्विना सोऽर्थः
सिद्ध्यति तेऽर्था यदधिष्ठानाः सोऽधिकरणसिद्धान्तः यथा
देहेन्द्रियव्यतिरिक्तो ज्ञाता, दर्शनस्यर्शनाभ्यामेकार्थग्रहणा-
दिति । अत्रानुषङ्गिणोऽर्था इन्द्रियनानात्वं नियतविष-
याणीन्द्रियाणि स्वविषयग्रहणलिङ्गानि ज्ञातुज्ञानसाध-
नानि गन्धादिगुणव्यतिरिक्तं द्रव्यं गुणाधिकरणं नियत-
विषयास्येतना इति पूर्वार्थसिद्धावेतेऽर्थाः सिद्ध्यन्ति न तै-
र्विना सोऽर्थः सम्भवतीति ॥

सू० अपरीक्षिताभ्युपगमात् तद्विशेषपरीक्षणमभ्युप-
गमसिद्धान्तः ॥ ३१ ॥

भा० यत्र किञ्चिदर्थजातमभ्युपगम्यते अस्तु द्रव्यं शब्दः, स तु
नित्योऽथाऽनित्य इति द्रव्यस्य सतो नित्यताऽनित्यता वा
तद्विशेषः परीक्ष्यते सोऽभ्युपगमसिद्धान्तः स्वबुद्ध्यतिशयचि-
ह्वापचिषया परबुद्ध्यवज्ञानाच्च प्रवर्तत इति । अथा-
वयवाः ॥

सू० प्रतिज्ञाहेतूदाहरणोपनयनिगमनान्यवयवाः ॥
॥ ३२ ॥

भा० दशावयवानेके नैयायिका वाक्ये सञ्चक्षते । जिज्ञासा
 संशयः शक्यप्राप्तिः प्रयोजनं संशयव्युदास इति, ते कस्मा-
 च्छाद्यन्त इति तत्राप्रतीयमानेऽर्थे प्रत्ययार्थस्य प्रवर्त्तिका
 जिज्ञासा अप्रतीयमानमर्थं कस्माज्जिज्ञासते तं तत्त्वतो
 ज्ञातं हास्यामि वोपादास्ये वा उपेक्षित्ये वेति तावता हानो-
 पादानोपेक्षाबुद्ध्यस्तत्त्वज्ञानस्यार्थस्तदर्थमयं जिज्ञासते सा
 खल्वियमसाधनमर्थस्येति, जिज्ञासाधिष्ठानं संशयस्य व्याहत-
 धर्मोपसङ्घातात् तत्त्वज्ञाने प्रत्यासन्नः व्याहतयोर्हि धर्मयो-
 रन्यतरत्तत्त्वं भवितुमर्हतीति स पृथगुपदिष्टोऽप्यसाधनमर्थः
 स्येति, प्रमातुः प्रमाणानि प्रमेयाधिगमार्थानि सा शक्य-
 प्राप्तिर्न साधकस्य वाक्यस्य भागेन युज्यते प्रतिज्ञादिवदिति
 प्रयोजनं तत्त्वावधारणमर्थसाधकस्य वाक्यस्य फलं नैकदेश
 इति, संशयव्युदासः प्रतिपक्षोपवर्णनम् तत्प्रतिषेधेन तत्त्व-
 ज्ञानाभ्यनुज्ञानार्थं न त्वयं साधकवाक्यैकदेश इति प्रकरणे
 तु जिज्ञासादयः समर्थाः अवधारणीयार्थोपकारा अर्थ-
 साधकभावात्तु प्रतिज्ञादयः साधकवाक्यस्य भागः एक-
 देशा अवयवा इति । तेषां तु यथाविभक्तानाम् ॥

सू० साध्यनिर्देशः प्रतिज्ञा ॥ ३३ ॥

भा० प्रज्ञापनीयेन धर्मेण धर्मिणो विशिष्टस्य परिग्रहवचनम्
 प्रतिज्ञा साध्यनिर्देशः अनित्यः शब्द इति ॥

सू० उदाहरणसाधर्म्यात् साध्यसाधनं हेतुः ॥ ३४ ॥

भा० उदाहरणेन सामान्यात् साध्यस्य धर्मस्य साधनं प्रज्ञापनम् हेतुः साध्ये प्रतिसम्भाय धर्ममुदाहरणे च प्रतिसम्भाय तस्य साधनतावचनं हेतुः उत्पत्तिधर्मकत्वादिति उत्पत्तिधर्मकमनित्यं दृष्टमिति । किमेतावद्धेतुलक्षणमिति नेत्युच्यते किन्तु ॥

सू० तथा वैधर्म्यात् ॥ ३५ ॥

भा० उदाहरणवैधर्म्याच्च साध्यसाधनं हेतुः कथम् अनित्यः शब्द उत्पत्तिधर्मकत्वात् अनुत्पत्तिधर्मकं नित्यं यथात्मादिद्रव्यमिति ॥

सू० साध्यसाधर्म्यात् तद्धर्मभावी दृष्टान्त उदाहरणम् ॥ ३६ ॥

भा० साध्येन साधर्म्यं समानधर्मता साध्यसाधर्म्यात् कारणात् तद्धर्मभावी दृष्टान्त इति तस्य धर्मस्तद्धर्मः तस्य साध्यस्य साध्यञ्च द्विविधम् धर्मविशिष्टो वा धर्मः शब्दस्थानित्यत्वम् । धर्मविशिष्टो वा धर्मी अनित्यः शब्द इति, दहोत्तरन्तद्गहणेन गृह्यत इति कस्मात् पृथग्धर्मवचनात् । तस्य धर्मस्तद्धर्मस्तस्य भावस्तद्धर्मभावः स यस्मिन् दृष्टान्ते वर्तते स दृष्टान्तः साध्यसाधर्म्यात् तद्धर्मभावी भवति स चोदाहरणमिष्यते तत्र यदुत्पद्यते तदुत्पत्तिधर्मकम् तच्च भूत्वा न भवति आत्मानं जहाति निरुध्यत इत्यनित्यम् । एवमुत्पत्तिधर्मकत्वं साधनमनित्यत्वं साध्यं सोऽय-

भा० मेकस्मिन् द्योर्धर्मयोः साध्यसाधनभावः साधर्म्याद्भवस्थित
उपलभ्यते तं दृष्टान्ते उपलभमानः शब्देऽप्यनुमिनोति
शब्देऽप्युत्पत्तिधर्मकत्वादित्यः स्थास्यादिवदित्युदाहर्यते
तेन धर्मयोः साध्यसाधनभाव इत्युदाहरणम् ॥

सू० तद्विपर्ययाद्वा विपरीतम् ॥ ३७ ॥

भा० दृष्टान्त उदाहरणमिति प्रकृतं साध्यवैधर्म्यात् तद्व-
र्त्मभावी दृष्टान्त उदाहरणमिति अनित्यःशब्द उत्पत्ति-
धर्मकत्वात् अनुत्पत्तिधर्मकं नित्यमात्मादि सोऽयमात्मादि
दृष्टान्तः साध्यवैधर्म्यादन्यत्पत्तिधर्मकत्वादतद्वर्त्मभावी यो-
ऽसौ साध्यस्य धर्मोऽनित्यत्वं स तस्मिन् भवतीति । अत्रा-
त्मादौ दृष्टान्ते उत्पत्तिधर्मकत्वस्याभावादनित्यत्वं न भव-
तीति उपलभमानः शब्दे विपर्ययमनुमिनोति उत्पत्ति-
धर्मकत्वस्य भावादनित्यः शब्द इति साधर्म्याक्तस्य हेतोः
साध्यसाधर्म्यात् तद्वर्त्मभावी दृष्टान्त उदाहरणम् वैध-
र्म्याक्तस्य हेतोः साध्यवैधर्म्यादतद्वर्त्मभावी दृष्टान्त उदाह-
रणम् पूर्वस्मिन् दृष्टान्ते यौ तौ धर्मौ साध्यसाधनभूतौ
पश्यति साध्येऽपि तयोः साध्यसाधनभावमनुमिनोति उत्त-
रस्मिन् दृष्टान्ते ययो धर्मयोरेकस्याभावादितरस्याभावं
पश्यति तयोरेकस्याभावादितरस्याभावं साध्ये अनुमिनो-
तीति, तदेतद्वेत्वाभासेषु न सम्भवतीत्यहेतवो हेत्वाभासाः
तदिदं हेतुदाहरणयोः सामर्थ्यम्परमसूक्ष्मं दुःखबोधं प-
ण्डितैरुपवेदनीयमिति ॥

सू० उदाहरणापेक्षस्तथेत्युपसंहारो न तथेति वा
साध्यस्योपनयः ॥ ३८ ॥

भा० उदाहरणापेक्ष उदाहरणतन्त्रः उदाहरणवशः, वशः
सामर्थ्यम्, साध्यसाधर्म्ययुक्ते उदाहरणे स्थाव्यादिद्रव्यमु-
त्पत्तिधर्मकमनित्यं दृष्टम् तथा शब्द उत्पत्तिधर्मक इति
साध्यस्य शब्दस्योत्पत्तिधर्मकत्वमुपसंह्रियते, साध्यवैधर्म्ययुक्ते
पुनरुदाहरणे आत्मादिद्रव्यमनुत्पत्तिधर्मकं नित्यं दृष्टं
न च तथा शब्द इति अनुत्पत्तिधर्मकत्वस्योपसंहारप्रति-
षेधेनोत्पत्तिधर्मकत्वमुपसंह्रियते तदिदमुपसंहारद्वैतमुदा-
हरणद्वैताद्भवति उपसंह्रियतेऽनेनेति चोपसंहारो वेदि-
तस्य इति । द्विविधस्य पुनर्हेतोर्द्विविधस्य चोदाहरणस्यो-
पसंहारद्वैते च समानम् ॥

सू० हेत्वपदेशात् प्रतिज्ञायाः पुनर्वचनं निगमनम्
॥ ३९ ॥

भा० साधर्म्योक्ते वैधर्म्योक्ते वा यथोदाहरणमुपसंह्रियते
तस्मादुत्पत्तिधर्मकत्वादनित्यः शब्द इति निगमनम्, निग-
म्यन्तेऽनेनेति प्रतिज्ञाहेतुदाहरणोपनया एकचेति निग-
मनम् निगम्यन्ते समर्थ्यन्ते सम्बध्यन्ते, तत्र साधर्म्योक्ते
तावद्धेतौ वाक्यमनित्यः शब्द इति प्रतिज्ञा, उत्पत्तिध-
र्मकत्वादिति हेतुः । उत्पत्तिधर्मकं स्थाव्यादिद्रव्यमनि-

भा० त्वमित्युदाहरणम्, तथाचोत्पत्तिधर्मकः शब्द इत्युपनयः, तस्मादुत्पत्तिधर्मकत्वादित्यः शब्द इति निगमनम्, वैधर्म्योक्तेऽपि अनित्यः शब्द, उत्पत्तिधर्मकत्वात्, अनुत्पत्तिधर्मकमात्मादिद्रव्यं नित्यं दृष्टम्, न च तथाऽनुत्पत्तिधर्मकः शब्दः, तस्मादुत्पत्तिधर्मकत्वादित्यः शब्द इति, अवयवसमुदाये च वाक्ये सम्भूय इतरेतराभिसम्बन्धात् प्रमाणान्यर्थं साधयन्तीति, सम्भवस्तावच्छब्दविषया प्रतिज्ञा आप्तोपदेशस्य प्रत्यक्षानुमानाभ्यां प्रतिसम्बन्धादनृषेस्व स्वातन्त्र्यानुपपत्तेः अनुमाने हेतुः उदाहरणे संदृश्यप्रतिपत्तेः, तत्रोदाहरणं भाष्ये व्याख्यातम् प्रत्यक्षविषयमुदाहरणम् दृष्टेनादृष्टसिद्धेः । उपमानमुपनयः तथेत्युपसंहारात् न च तथेत्युपमानधर्मप्रतिषेधे विपरीतधर्मोपसंहारसिद्धेः, सर्वेषामेकार्थप्रतिपत्तौ सामर्थ्यप्रदर्शनं निगमनमिति । इतरेतराभिसम्बन्धोऽप्यसत्यां प्रतिज्ञायामनाश्रया हेत्वादयो न प्रवर्त्तेरन्, असति हेतौ कस्य साधनभावः प्रदर्श्यते उदाहरणे साध्ये च कस्योपसंहारः स्यात् कस्य चापदेशात् प्रतिज्ञायाः पुनर्वचनं निगमनस्यादिति, असत्युदाहरणे केन साधर्म्यं वैधर्म्यं वा साध्यसाधनमुपादीयेत कस्य वा साधर्म्यवशादुपसंहारः प्रवर्त्तत, उपनयनञ्चान्तरेण साध्येऽनुपसंहृतः साधको धर्मो नार्थं साधयेत्, निगमनाभावे *वानभिव्यक्तसम्बन्धानां प्रति-

भा० ज्ञादीनामेकार्थेन प्रवर्त्तनं तथेति प्रतिपादनं कस्येति ।

अथावयवार्थः साध्यस्य धर्मस्य धर्मिणा *सम्बन्धोपादानं प्रतिज्ञार्थः । उदाहरणेन समानस्य विपरीतस्य वा धर्मस्य साधकंभाववचनं हेतुर्थः, धर्मयोः साध्यसाधनभावप्रदर्शनमेकत्रोदाहरणार्थः । साधनभूतस्य धर्मस्य साध्येन धर्मिण सामानाधिकरण्योपपादनमुपनयार्थः । उदाहरणस्थयोर्धर्मयोः साध्यसाधनभावोपपत्तौ साध्ये विपरीतप्रसङ्गप्रतिषेधार्थं निगमनम् । न चैतस्यां हेतुदाहरणपरिशुद्धौ सत्यां साधर्म्यवैधर्म्याभ्यां प्रत्यवस्थानस्य विकल्पाज्जातिनियद्वस्थानवद्भवं प्रक्रमते, अव्यवस्थाय खलु साध्यसाधनभावमुदाहरणे जातिवादी प्रत्यवतिष्ठते व्यवस्थिते तु खलु धर्मयोः साध्यसाधनभावे दृष्टान्तस्थे गृह्यमाणे साधनभूतस्य धर्मस्य हेतुत्वेनोपमानं न साधर्म्यमात्रस्य न वैधर्म्यमात्रस्य वेति । अत ऊर्ध्वं तर्को लक्षणीय इति अयेदमुच्यते ॥

सू० अविज्ञाततत्त्वेऽर्थे कारणोपपत्तितत्त्वज्ञानार्थमूहस्तर्कः ॥ ४० ॥

भा० अविज्ञायमानतत्त्वेऽर्थे जिज्ञासा तावज्जायते जानीये-ममर्थमिति, अथ जिज्ञासितस्य वस्तुनो व्याहृतौ धर्मो विभागेन विभृशति किंस्त्रिदित्यमाहोस्त्रिन्नेत्यमिति विभृशमानयोर्धर्मयोरेकं कारणोपपत्त्याऽनुजानाति सम्भव-

* सम्बन्धोपपादनमिति कश्चित् पाठः ।

भा० त्यस्मिन् कारणं प्रमाणं हेतुरिति, कारणोपपत्त्या स्या-
 देवमेतच्चेतरदिति तत्र निदर्शनम् योऽयं ज्ञाता ज्ञातव्य-
 मर्थं जानीते तच्च* भो जानीयेति जिज्ञासा, स कि-
 मुत्पत्तिधर्मकोऽनुत्पत्तिधर्मक इति विमर्शः, विमृश्यमानेऽ-
 विज्ञाततत्त्वेऽर्थे यस्य धर्मस्याभ्यनुज्ञाकारणमुपपद्यते तम-
 नुजानाति, यद्ययमनुत्पत्तिधर्मकस्ततः स्वकृतस्य कर्मणः
 फलमनुभवति ज्ञाता, दुःखजन्मप्रवृत्तिदोषमिथ्याज्ञाना-
 नामुत्तरमुत्तरं पूर्वस्य पूर्वस्य कारणमुत्तरोत्तरापाये
 तदनन्तराभावादपवर्ग इति स्यातां संसारापवर्गो, उत्पत्ति-
 धर्मके ज्ञातरि पुनर्न स्याताम्, उत्पन्नः खलु ज्ञाता देहे-
 न्द्रियबुद्धिवेदनाभिः सम्बध्यत इति नास्येदं स्वकृतस्य कर्मणः
 फलमुत्पन्नश्च भूत्वा न भवतीति तस्याविद्यमानस्य निरुद्धस्य
 वा स्वकृतकर्मणः फलोपभोगो नास्ति, तदेवमेकस्थानेक-
 शरीरयोगः शरीरादिवियोगश्चात्यन्तं न स्यादिति । यत्र
 कारणमनुपपद्यमानं पश्यति तच्चानुजानाति, सोऽयमेवंलक्षण
 ऊहस्तर्क इत्युच्यते । कथं पुनरयं तत्त्वज्ञानार्थो न तत्त्वज्ञा-
 नमेवेति अनवधारणात् अनुजानात्ययमेकतरं धर्मं कार-
 णोपपत्त्या न त्ववधारयति न व्यवस्यति न निश्चिनोति एवमे-
 वेदमिति । कथं तत्त्वज्ञानार्थ इति, तत्त्वज्ञानविषयाभ्यनुज्ञा-
 † लक्षणानुगृहोद्भावितात् प्रसन्नादनन्तरप्रमाणसामर्थ्यात्

* तं तत्त्वतो इति क्वचित् पाठः ।

† लक्षणादुद्घोद्भावितादिति क्वचित् पाठः ।

भा० तत्त्वज्ञानमुत्पद्यत इत्येव तत्त्वज्ञानार्थ इति । सोऽयं तर्कः
प्रमाणानि प्रतिसन्दधानः प्रमाणाभ्यनुज्ञानात् प्रमाण-
सहितो वादे उपदिष्ट इत्यविज्ञाततत्त्वमनुजानातीति यथा
सोऽर्थो भवति तस्य यथाभावस्तत्त्वमविपर्ययो चाथात-
थ्यम् । एतस्मिंश्च तर्कविषये ॥

सू० विमृश्य पक्षप्रतिपक्षाभ्यामर्थावधारणं निर्णयः
॥ ४१ ॥

भा० स्थापना साधनं, प्रतिषेध उपालम्भः, तौ साधनोपालम्भौ
पक्षप्रतिपक्षाभ्यामर्थावधारणं प्रवर्त्तमानौ पक्षप्रति-
पक्षावित्युच्येते, तयोरन्यतरस्य निवृत्तिरेकतरस्यावस्थानम्
अवश्यम्भावि, यस्यावस्थानं तस्यावधारणं निर्णयः । नेदं पक्ष-
प्रतिपक्षाभ्यामर्थावधारणं सम्भवतीति एको हि प्रतिज्ञात-
मर्थं हेतुतः स्थापयति प्रतिषिद्धं चोद्धरतीति द्वितीयस्य
द्वितीयेन स्थापनाहेतुः प्रतिषिध्यते तस्यैव प्रतिषेधहेतुश्चो-
द्ध्रियते स निवर्त्तते तस्य निवृत्तौ योऽवतिष्ठते तेनार्थाव-
धारणं निर्णय इति उभाभ्यामेवार्थावधारणमित्याह, कया
युक्त्वा एकस्य सम्भवो द्वितीयस्यासम्भवः तावेतौ सम्भ-
वासम्भवौ विमर्शं सह निवर्त्तयतः, उभयसम्भवे उभयास-
म्भवे त्वनिवृत्तौ विमर्श इति । विमृश्येति विमर्शं कृत्वा, सोऽयं
विमर्शः पक्षप्रतिपक्षाभावद्योत्यं न्यायं प्रवर्त्तयतीत्युपादी-

भा० यत् इति, एतच्च विरुद्धयोरेकधर्मिस्थयोर्बोद्धव्यम्, यत्र तु धर्मिसामान्यगतौ विरुद्धौ धर्मौ हेतुतः सम्भवतः, तत्र समुच्चयः हेतुतोऽर्थस्य तत्त्वाभावोपपत्तेः, यथा क्रियावद्द्रव्यमिति लक्षणवचने यस्य द्रव्यस्य क्रियायोगो हेतुतः सम्भवति तत् क्रियावत् यस्य न संभवति तदक्रियमिति, एकधर्मिस्थयोश्च विरुद्धयोरयुगपद्भाविनोः कालविकल्पः यथा तदेव द्रव्यं क्रियायुक्तं क्रियावत् अनुत्पन्नोपरतक्रियं पुनरक्रियमिति । न चायं निर्णये नियमो विमृश्यैव पक्षप्रतिपक्षाभ्यामर्थावधारणं निर्णय इति किन्त्विन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नप्रत्यक्षेऽर्थावधारणं निर्णय इति परीक्षाविषये तु विमृश्य पक्षप्रतिपक्षाभ्यामर्थावधारणं निर्णयः शास्त्रे वादे च विमर्शवर्जम् ॥

इति वात्स्यायनीये न्यायभाष्ये प्रथमाऽध्यायस्य प्रथम-
मान्निकम् ॥ * ॥

भा० तिस्रः कथा भवन्ति वादो जल्पो वितण्डा चेति तासां ॥

सू० प्रमाणतर्कसाधनोपालम्भः सिद्धान्ताविरुद्धः प-
ञ्चावयवोपपन्नः पक्षप्रतिपक्षपरिग्रहो वादः ॥

॥ ४२ ॥

भा० एकाधिकरणस्यै विरुद्धौ धर्मौ पक्षप्रतिपक्षौ प्रत्य-
नीकभावादस्यात्मा नास्यात्मेति, नानाधिकरणौ विरुद्धौ
न पक्षप्रतिपक्षौ यथा नित्य आत्मा अनित्या बुद्धिरिति,
परिग्रहोऽभ्युपगमव्यवस्था, सोऽयं पक्षप्रतिपक्षपरिग्रहो वादः
तस्य विशेषणं प्रमाणतर्कसाधनोपालम्भः प्रमाणैस्तर्केण
च साधनमुपालम्भस्यास्मिन् कियत इति, साधनं स्थापना,
उपालम्भः प्रतिषेधः, तौ साधनोपालम्भौ उभयोरपि पक्ष-
योर्यतिषक्तावनुवद्धौ च यावदेको निवृत्त एकतरो व्य-
वस्थित इति निवृत्तस्योपालम्भो व्यवस्थितस्य साधनमिति
जल्पे निग्रहस्थानविनियोगत्वादेतत्प्रतिषेधः, प्रतिषेधे कस्य-
चिदभ्यनुज्ञानार्थं सिद्धान्ताविरुद्ध इति वचनम्, सिद्धान्तम-
भ्युपेत्य तद्विरोधी विरुद्ध इति हेत्वाभासस्य निग्रहस्थानस्या-
भ्यनुज्ञावादे पञ्चावयवोपपन्न इति, हीनमन्यतमेनाप्यवयवेन
न्यूनम् हेतुदाहरणाधिकमधिकमिति चैतयोरभ्यनुज्ञा-
नार्थमिति अवयवेषु प्रमाणतर्कान्तर्भावे पृथक् प्रमाणतर्क-
ग्रहणं साधनोपालम्भव्यतिषङ्गज्ञापनार्थम् । अन्ययोभावपि
पक्षौ स्थापनाहेतुना प्रवृत्तौ वाद इति स्यात् । अन्तरेणा-

भा० यवयवसम्बन्धम् प्रमाणान्यथं साधयन्तीति दृष्टम् तेनापि कल्पेन साधनोपालम्भो वादे भवत इति ज्ञापयति । कल-जातिनिग्रहस्थानसाधनोपालम्भो जल्प इतिवचनादिनि-ग्रहो जल्प इति माविज्ञायि । कलजातिनिग्रहस्थानसाध-नोपालम्भ एव जल्पः प्रमाणतर्कसाधनोपालम्भो वाद एवे-ति माविज्ञायीत्येवमर्थं पृथक् प्रमाणतर्कग्रहणमिति ॥

सू० यथोक्तोपपन्नश्चलजातिनिग्रहस्थानसाधनोपा-लम्भो जल्पः ॥ ४३ ॥

भा० यथोक्तोपपन्न इति प्रमाणतर्कसाधनोपालम्भः सि-द्धान्ताविरुद्धः पञ्चावयवोपपन्नः पक्षप्रतिपक्षपरिग्रहः । कलजातिनिग्रहस्थानसाधनोपालम्भ इति । कलजाति-निग्रहस्थानैः साधनमुपालम्भश्चास्मिन् क्रियत इति । एवं विशेषणो जल्पः न खलु वै कलजातिनिग्रहस्थानैः साधनं कस्यचिदर्थस्य सम्भवति प्रतिषेधार्थं चैषां सामान्यलक्षणे च श्रूयते वचनविघातो ऽर्थविकल्पोपपत्त्या कलमिति साधर्म्यवैधर्म्याभ्यां प्रत्यवस्थानं जातिः । विप्रतिपत्तिर-प्रतिपत्तिश्च निग्रहस्थानमिति । विशेषलक्षणेऽपि यथा-स्त्वमिति न चैतद्विजानीयात् प्रतिषेधार्थतथैवार्थं सा-धयन्तीति । कलजातिनिग्रहस्थानोपालम्भ इत्येवमप्युच्य-माने विज्ञायत एतदिति । प्रमाणैः साधनोपालम्भयो-श्चलजातीनामङ्गभावा रक्षणार्थत्वात् न तु स्वतन्त्राणां

भा० साधनभावः । यत् तत्प्रमाणैरर्थस्य साधनं तत्र क्लृप्ताति-
 निग्रहस्थानानामङ्गभावो रक्षणार्थत्वात्, तानि हि प्रयुज्य-
 मानानि परपक्षविघातेन स्वपक्षं रक्षयन्ति । तथा चे-
 क्तम् । “तत्त्वाध्यवसायसंरक्षणार्थं जल्पवितण्डे बीजप्ररोह-
 रक्षणार्थं कण्टकशाखावरणवदिति” । यश्चासौ प्रमाणैः प्र-
 तिपक्षस्योपालम्भस्तस्य चैतानि प्रयुज्यमानानि प्रतिषेध-
 विघातात्महकारोणि भवन्ति तदेवमङ्गीभूतानां क्लृप्ता-
 दीनामुपादानम् जल्पे न स्वतन्त्राणां साधनभावः । उपा-
 लम्भे तु स्वातन्त्र्यमप्यस्तीति ॥

सू० स प्रतिपक्षस्थापनाहीनो वितण्डा ॥ ४४ ॥

भा० स जल्पो वितण्डा भवति, किं विशेषणः प्रतिपक्षस्था-
 पनया हीनः, यौ तौ समानाधिकरणौ विरुद्धौ धर्मौ
 पक्षप्रतिपक्षावित्युक्तौ तयोरैकतरं वैतण्डिको न स्थापयतीति
 परपक्षप्रतिषेधेनैव प्रवर्तत इति । अस्तु तर्हि स प्रतिपक्ष-
 हीनो वितण्डा यद्वै खलु तत्परप्रतिषेधलक्षणं वाक्यं स
 वैतण्डिकस्य पक्षः न तस्यै साध्यं कश्चिदर्थं प्रतिज्ञाय स्था-
 पयतीति तस्माद्यथान्याममेवास्त्विति हेतुलक्षणाभावादहे-
 तवो हेतुसामान्याद्धेतुवदाभासमानाः त इमे ॥

सू० सव्यभिचारविरुद्धप्रकरणसमसाध्यसमातीत-
 काला हेत्वाभासाः ॥ ४५ ॥

भा० तेषाम् ॥

सू० अनैकान्तिकः सव्यभिचारः ॥ ४६ ॥

भा० व्यभिचार एकत्राव्यवस्था सह व्यभिचारेण वर्तत इति सव्यभिचारः, निदर्शनम् नित्यःशब्दोऽस्यर्शत्वात् स्पर्शवान् कुम्भोऽनित्यो दृष्टो न च तथा स्पर्शवान् शब्दस्तस्मादस्पर्शत्वान्नित्यःशब्द इति, दृष्टान्ते स्पर्शवत्त्वमनित्यत्वं च धर्मा न साध्यसाधनभूतौ दृश्येते स्पर्शवांश्चाणुर्नित्यस्येति । आत्मादौ च दृष्टान्ते उदाहरणसाधर्म्यात् साध्यसाधनं हेतुरिति । अस्यर्शत्वादितिहेतुर्नित्यत्वं व्यभिचरति अस्यर्शा बुद्धिरनित्या चेति, एवं द्विविधेऽपि दृष्टान्ते व्यभिचारात् साध्यसाधनभावो नास्तीति लक्षणाभावादहेतुरिति । नित्यत्वमप्येकोऽन्तः । अनित्यत्वमप्येकोऽन्तः, एकस्मिन्नन्ते *विद्यत इति ऐकान्तिकः । विपर्ययादनैकान्तिकः उभयान्तव्यापकत्वादिति ॥

सू० सिद्धान्तमभ्युपेत्य तद्विरोधी विरुद्धः ॥ ४७ ॥

भा० तं विरुणद्धीति तद्विरोधी अभ्युपेतं सिद्धान्तं व्याहन्तीति यथा सोऽयं विकारो व्यक्तेरपैति नित्यत्वप्रतिषेधादपेतोऽप्यस्ति विनाशप्रतिषेधात् न नित्यो विकार उपपद्यते इत्येवं हेतुर्व्यक्तेरपेतोऽपि विकारोऽस्तीत्यनेन स्वसिद्धान्तेन विरुध्यते । कथम् व्यक्तिरात्मलाभः अपायः प्रच्युतिः यद्यात्मलाभात् प्रच्युतो विकारोऽस्ति नित्यत्वप्रतिषेधो नोपपद्यते

भा० यद्वाक्तेरपेतस्यापि विकारस्यास्तित्वं तत् खलु नित्यत्वमिति ।
नित्यत्वप्रतिषेधो नाम विकारस्यात्मलाभात्प्रच्युतेरुपपत्तिः ।
यदात्मलाभात्प्रच्यवते तदनित्यं दृष्टं यदस्ति न तदात्मला-
भात् 'प्रच्यवते । अस्तित्वं चात्मलाभात् प्रच्युतिरिति
विरुद्धावेतौ न सह सम्भवत इति सोऽयं हेतुर्यत्सिद्धान्त-
माश्रित्य प्रवर्त्तते तमेव व्याहन्तीति ॥

सू० यस्मात्प्रकरणचिन्ता स निर्णयार्थमपदिष्टः प्र-
करणसमः ॥ ४८ ॥

भा० विमर्शाधिष्ठानौ पक्षप्रतिपक्षावनवधितौ प्रकरणम्, तस्य
चिन्ता विमर्शात्प्रभृति प्राङ्निर्णयाद्यत् समीक्षणं सा जि-
ज्ञासा यत्कृता स निर्णयार्थं प्रयुक्त उभयपक्षस्याभ्यात् प्रक-
रणमनतिवर्त्तमानः प्रकरणसमो निर्णयाय न प्रकल्पते
प्रज्ञापनं तु अनित्यः शब्दो नित्यधर्मानुपलब्धेरित्यनुप-
लभ्यमाननित्यधर्मकमनित्यं दृष्टं स्यात्त्यादि, यत्र समानो
धर्मः संशयकारणं हेतुत्वेनोपादीयते स संशयसमः सव्य-
भिचार एव । या तु विमर्शस्य विशेषापेक्षिता उभयपक्षवि-
शेषानुपलब्धिश्च सा प्रकरणं प्रवर्त्तयति, कथम् । विपर्यये हि
प्रकरणनिवृत्तेः यदि नित्यधर्मः शब्दे गृह्यते न स्यात्प्रकरणम्
यदि वा अनित्यधर्मो गृह्येत एवमपि निवर्त्तत प्रकरणम्
सोऽयं हेतुरुभौ पक्षौ प्रवर्त्तयन्नन्यतरस्य निर्णयाय न प्र-
कल्पते ॥

सू० साध्याविशिष्टः साध्यत्वात् साध्यसमः ॥ ४६ ॥

भा० द्रव्यं क्वायेति साध्यम्, गतिमत्वादिति हेतुः साध्येना-
विशिष्टः साधनीयत्वात्साध्यसमः, अयमप्यसिद्धत्वात् साध्य-
वत्प्रज्ञापयितव्यः, साध्यं तावदेतत् किं पुरुषवच्छायापि
गच्छति आहोस्त्रिदावरकद्रव्ये संसर्पति आवरणसन्ताना-
दसन्निधिसन्तानोऽयं तेजसो गृह्यत इति सर्पता खलु द्रव्येण
*ज्ञानाद्योयस्तेजोभाग आब्रियते तस्य तस्यासन्निधिरेवाव-
च्छिन्नो गृह्यत इति । आवरणन्तु प्राप्तिप्रतिषेधः ॥

सू० कालात्ययापदिष्टः कालातीतः ॥ ५० ॥

भा० कालात्ययेन युक्तो यस्यार्थस्यैकदेशोऽपदिश्यमानस्य स
कालात्ययापदिष्टः कालातीत इत्युच्यते । निदर्शनम् ।
नित्यःशब्दः संयोगव्यङ्ग्यत्वात् रूपवत् प्रागूर्द्ध्वं व्यक्तेरवस्थितं
रूपं प्रदीपघटसंयोगेन व्यज्यते तथा च शब्दोऽप्यवस्थितो
भेरीदण्डसंयोगेन व्यज्यते दारुपरशुसंयोगेन वा तस्मात्
संयोगव्यङ्ग्यत्वान्नित्यःशब्द इत्ययमहेतुः कालात्ययापदे-
शात् व्यञ्जकस्य संयोगस्य कालं न व्यङ्ग्यस्य रूपस्य व्यक्तिर-
त्येति सति प्रदीपघटसंयोगे रूपस्य ग्रहणं भवति न निवृत्ते
संयोगे रूपं गृह्यते, निवृत्ते दारुपरशुसंयोगे दूरस्थेन शब्दः
श्रूयते । विभागकाले सेयं शब्दव्यक्तिः संयोगकालमत्येतीति
न संयोगनिर्मिता भवति । कस्मात्कारणाभावाद्धि का-

* ज्ञानादिति पाठः क्वचिन्नास्ति । † निमित्ता इति क्वचित् पाठः ।

भा० र्याभाव इति । एवमुदाहरणसाधर्म्यस्याभावादसाधनमयं हेतुर्हेत्वाभास इति । अवयवविपर्ययासवचनं न सूत्रार्थः, कस्मात् “यस्य येनार्थसम्बन्धो दूरस्थस्यापि तस्य सः । अर्थतो ह्यसमर्थानामानन्तर्यमकारणम्” इत्येतद्वचनाद्विपर्ययासेनोक्तो हेतुर्द्विदाहरणसाधर्म्यात्तथा वैधर्म्यात्साधनं हेतुलक्षणं न जहाति । अजहद्वहेतुलक्षणं न हेत्वाभासो भवतीति अवयवविपर्ययासवचनमप्राप्तकालमिति नियहस्यानमुक्तं तदेवेदं पुनरुच्यत इति अतस्तन्न सूत्रार्थः । अथ क्लमम् ॥

सू० वचनविधातोऽर्थविकल्पोपपत्त्या क्लमम् ॥ ५१ ॥

भा० न सामान्यलक्षणे क्लमं शक्यमुदाहर्तुम् विभागे त्वदाहरणानि । विभागश्च ॥

सू० तत् त्रिविधं वाक्छलं सामान्यच्छलमुपचारच्छलञ्चेति ॥ ५२ ॥

भा० तेषाम् ॥

सू० अविशेषाभिहितेऽर्थे वक्तुरभिप्रायादर्थान्तरकल्पना वाक्छलम् ॥ ५३ ॥

भा० नवकम्बलोऽयं माणवक इति प्रयोगः । अत्र नवः कम्बलोऽस्येति वक्तुरभिप्रायः । विग्रहे तु विशेषो न समासे, तच्चायं क्लवादी वक्तुरभिप्रायादविवक्षितमन्यमर्थं नव कम्ब-

भा० छा अस्मेति तावदभिहितं भवतेति कल्पयति कल्पयित्वा
 चासम्भवेन प्रतिषेधति एकोऽस्य कम्बलः कुतो नव कम्बला
 इति। तदिदं सामान्यशब्दे वाचि क्लृप्तं वाक्कलमिति। अस्य
 प्रत्यवस्थानम् सामान्यशब्दस्थानेकार्थत्वेऽन्यतराभिधानक-
 ल्पनायां विशेषवचनम्। नवकम्बल इत्यनेकार्थस्याभिधानं
 नवः कम्बलोऽस्य नव कम्बला अस्मेति। एतस्मिन् प्रयुक्ते येयं
 कल्पना नव कम्बला अस्मेत्येतद्भवताभिहितं तच्च न सम्भव-
 तीति। एतस्यामन्यतराभिधानकल्पनायां विशेषो वक्तव्यः।
 *यस्मादिशेषोऽर्थविशेषेषु विज्ञायते। अयमर्थोऽनेनाभि-
 हित इति, स च विशेषो नास्ति तस्मान्निश्चयाभियोगमात्र-
 मेतदिति। प्रसिद्धस्य लोके शब्दार्थसम्बन्धोऽभिधानाभिधेय-
 नियमनियोगः। अस्याभिधानस्यायमर्थोऽभिधेय इति स-
 मानः सामान्यशब्दस्य विशेषो विशिष्टशब्दस्य प्रयुक्तपूर्वाश्वमे
 शब्दा अर्थे प्रयुज्यन्ते नाप्रयुक्तपूर्वाः, प्रयोगश्चार्थसम्प्रत्ययार्थः,
 अर्थप्रत्ययाच्च व्यवहार इति। तत्रैवमर्थगत्यर्थं शब्दप्रयोगे
 सामर्थ्यात्सामान्यशब्दस्य प्रयोगनियमः। अजां ग्रामं नय
 सर्पिराहर ब्राह्मणं भोजयेति सामान्यशब्दाः सन्तोऽर्थावय-
 वेषु प्रयुज्यन्ते सामर्थ्याद्यत्रार्थक्रियादेशना सम्भवति तत्र प्रव-
 र्तन्ते नार्थसामान्ये क्रियादेशनाऽसम्भवात्। एवमयं सा-
 मान्यशब्दो नवकम्बल इति योऽर्थः सम्भवति नवः कम्बलो-
 ऽस्मेति तत्र प्रवर्तते यस्तु न सम्भवति नव कम्बला अस्मेति

भा० तत्र न प्रवर्तते सोऽयमनुपपद्यमानार्थकल्पनया परवाक्यो-
पासन्नस्येन कल्प्यत इति ॥

सू० सम्भवतोऽर्थस्यातिसामान्ययोगादसम्भूतार्थक-
ल्पना सामान्यच्छलम् ॥ ५४ ॥

भा० अहो खल्वसौ ब्राह्मणो विद्याचरणसम्पन्न इत्युक्ते कश्चि-
दाह सम्भवति हि ब्राह्मणे विद्याचरणसम्पत् इत्यस्य वचनस्य
विघातोऽर्थविकल्पोपपत्त्याऽसम्भूतार्थकल्पनया क्रियते यदि
ब्राह्मणे विद्याचरणसम्पत् सम्भवति त्रात्येऽपि सम्भवेत्, त्रा-
त्योऽपि ब्राह्मणः सोऽयस्तु विद्याचरणसम्पन्न इति । यद्विव-
क्षितमर्थमाप्नोति चात्येति च तदतिसामान्यम् । यथा ब्रा-
ह्मणत्वं विद्याचरणसम्पदं कचिदाप्नोति कचिदत्येति सा-
मान्यनिमित्तं क्लृप्तं सामान्यच्छलमिति । अस्य च प्रत्यवस्था-
नमविवक्षितहेतुकस्य विषयानुवादः, प्रशंसार्थत्वात् वाक्यस्य,
तदत्रासम्भूतार्थकल्पनानुपपत्तिः । यथा सम्भवन्त्यस्मिन्
क्षेत्रे शालय इति । अनिराकृतमविवक्षितञ्च बीजजन्म,
प्रवृत्तिविषयस्तु क्षेत्रं प्रशस्यते सोऽयं क्षेत्रानुवादो नास्मिन्
शालयो *विधीयन्त इति । बीजात्तु शालिनिवृत्तिः सती
न विवक्षिता एवं सम्भवति ब्राह्मणे विद्याचरणसम्पदिति
सम्पद्विषयो ब्राह्मणत्वं न सम्पद्धेतुः । न चात्र हेतुर्विव-
क्षितः । विषयानुवादस्त्वयं प्रशंसार्थत्वादाक्यस्य सति ज्ञा-

भा० क्लृण्वते सम्पद्धेतुः समर्थ इति विषयश्च प्रशंसता वाक्येन
यथा हेतुतः फलनिर्वृत्तिर्न प्रत्याख्यायते तदेवं सति वचन-
विधातोऽसम्भूतार्थकल्पनया नोपपद्यत इति ॥

सू० धर्मविकल्पनिर्देशे ऽर्थसद्भावप्रतिषेध उपचार-
कलम् ॥ ५५ ॥

भा० अभिधानस्य धर्मो यथार्थप्रयोगः । धर्मविकल्पोऽन्यत्र-
दृष्टस्यान्यत्रप्रयोगः । तस्य निर्देशे धर्मविकल्पनिर्देशे । यथा
मञ्चाः क्रोशन्तीति अर्थसद्भावेन प्रतिषेधः मञ्चस्याः पुरुषाः
क्रोशन्ति न तु मञ्चाः क्रोशन्ति, का पुनरत्रार्थविकल्पोपप-
त्तिः अन्यथाप्रयुक्तस्यान्यथार्थकल्पनम् भक्त्वा प्रयोगे प्राधान्ये-
न कल्पनम्, उपचारविषयं कलमुपचारकलमुपचारो नो-
तार्थः सहचरणादिनिमित्तेनातद्भावे तद्वदभिधानमुपचार
इति । अत्र समाधिः *प्रसिद्धाप्रसिद्धे प्रयोगे वक्तुर्यथाभि-
प्रायं शब्दार्थयोरनुज्ञा प्रतिषेधो वा न कन्दतः प्रधानभूतस्य
शब्दस्य भाक्तस्य च गुणभूतस्य प्रयोग उभयोर्लोकप्रसिद्धः
प्रसिद्धे प्रयोगे यथा वक्तुरभिप्रायस्तथा शब्दार्थावनुज्ञेयौ
प्रतिषेधौ वा न कन्दतः । यदि वक्ता प्रधानशब्दं प्रयुङ्क्ते
यथा भूतस्याभ्यनुज्ञा प्रतिषेधो वा न कन्दतः । अथ गुणभूतं
तदा गुणभूतस्य, यत्र तु वक्ता गुणभूतं शब्दं प्रयुङ्क्ते प्रधान-
भूतमभिप्रेत्य परः प्रतिषेधति स्वमनीषया प्रतिषेधोऽसौ
भवति न परोपालम्भ इति ॥

* सिद्ध इति क्वचित् पाठः ।

सू० वाक्छलमेवोपचारच्छलं तदविशेषात् ॥ ५६ ॥

भा० न वाक्छलादुपचारच्छलं भिद्यते तस्याप्यर्थान्तरकल्प-
नाया अविशेषात्, इहापि स्थान्यर्थो गुणशब्दः, प्रधानशब्दः
स्थानार्थ इति कल्पयित्वा प्रतिषिध्यत इति ॥*

सू० न तदर्थान्तरभावात् ॥ ५७ ॥

भा० न वाक्छलमेवोपचारच्छलं तस्यार्थसङ्गावप्रतिषेध-
स्थार्थान्तरभावात् । कुतः अर्थान्तरकल्पनातोऽन्यार्थान्तर-
सङ्गावकल्पना अन्यार्थसङ्गावप्रतिषेध इति ॥

सू० अविशेषे वा किञ्चित्साधर्म्यादेकच्छलप्रसङ्गः ॥
॥ ५८ ॥

भा० छलस्य द्विलमभ्यनुज्ञाय त्रिलं प्रतिषिध्यते किञ्चि-
त्साधर्म्यात् यथा चायं हेतुस्त्रिलं प्रतिषेधति तथा द्विल-
मभ्यनुज्ञातं प्रतिषेधति, विद्यते हि किञ्चित्साधर्म्यं दयो-
रपीति, अथ द्विलं किञ्चित्साधर्म्यान् निवर्त्तते त्रिलमपि
न निवर्त्त्यतीति । अत ऊर्द्धम् ॥

सू० साधर्म्यवैधर्म्याभ्यां प्रत्यवस्थानं जातिः ॥ ५९ ॥

भा० प्रयुक्ते हि हेतौ यः प्रसङ्गो जायते सा जातिः स च प्र-
सङ्गः साधर्म्यवैधर्म्याभ्यां प्रत्यवस्थानमुपालम्भः प्रतिषेध इति
उदाहरणसाधर्म्यात् साध्यसाधनं हेतुरित्यसोदाहरण-

* प्रतिषिध्यत इति प्रतिसन्धीयत इति कचिदधिकः पाठः ।

भा० साधर्म्येण प्रत्यवस्थानम् । उदाहरणवैधर्म्यात् साध्यसाधनं
हेतुरित्यस्योदाहरणवैधर्म्येण प्रत्यवस्थानम् । प्रत्यनीकभा-
वाज्जायमानोऽर्थो जातिरिति ॥

सू० विप्रतिपत्तिरप्रतिपत्तिश्च निग्रहस्थानम् ॥ ६० ॥

भा० विपरीता वा कुत्सिता वा प्रतिपत्तिर्विप्रतिपत्तिः ।
विप्रतिपद्यमानः पराजयं प्राप्नोति, निग्रहस्थानं खलु
पराजयप्राप्तिः । अप्रतिपत्तिस्त्वारम्भविषये न प्रारम्भः ।
परेण स्थापितं वा न प्रतिषेधति प्रतिषेधं वा नोद्धरति,
असमासाच्च नैत एव निग्रहस्थाने इति । किं पुनर्दृष्टान्तव-
ज्जातिनिग्रहस्थानयोरभेदोऽथ सिद्धान्तवद्भेद इत्यत आह ॥

सू० तद्विकल्पाज्जातिनिग्रहस्थानबहुत्वम् ॥ ६१ ॥

भा० तस्य साधर्म्यवैधर्म्याभ्याम् प्रत्यवस्थानस्य विकल्पाज्जाति-
बहुत्वम् तयोश्च विप्रतिपत्त्यप्रतिपत्त्येर्विकल्पास्त्रिग्रहस्थान-
बहुत्वम्, नाना कल्पो विकल्पः, विविधो वा कल्पो विकल्पः ।
तत्राननुभाषणमज्ञानमप्रतिभा विज्ञेयोमतानुज्ञा पर्यनुयो-
ज्योपेक्षणमित्यप्रतिपत्तिर्निग्रहस्थानम् शेषस्तु विप्रतिप-
त्तिरिति । इमे प्रमाणादयः पदार्था उद्दिष्टा यथोद्देशं
लक्षिता यथालक्षणं परीक्षित्यन्त इति त्रिविधस्य शास्त्रस्य
प्रवृत्तिर्वेदितव्येति ॥०॥

इति वाक्यायनीये न्यायभाष्ये प्रथमाध्यायस्य द्वितीयमाह्निकम् ।

समाप्तञ्चायं प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

भा० अत ऊर्ध्वं प्रमाणादिपरीक्षा सा च विमृश्य पक्षप्रति-
पक्षाभ्यामर्थ्यावधारणं निर्णय इत्यग्रे विमर्श एव परीक्ष्यते ॥

सू० समानानेकधर्माध्यवसायादन्यतरधर्माध्यव-
सायाद्वा न संशयः ॥ १ ॥

भा० समानस्य धर्मस्याध्यवसायात् संशयो न धर्ममात्रात् ।
अथवा समानमनयोर्यद्वर्त्ममुपलभत इति धर्मधर्मिग्रहणे
संशयाभाव इति । अथवा समानधर्माध्यवसायादर्थान्त-
रभूते धर्मिणि संशयोऽनुपपन्न इति न जातु रूपस्या-
र्थान्तरभूतस्याध्यवसायादर्थान्तरभूते स्पर्शे संशय इति ।
अथवा नाध्यवसायादर्थ्यावधारणादनवधारणज्ञानं संशय
उपपद्यते कार्यकारणयोः सारूप्याभावादिति । एतेना-
नेकधर्माध्यवसायादिति व्याख्यातम् । अन्यतरधर्माध्यवसा-
याच्च संशयो न भवति । ततो ह्यन्यतरावधारणमेवेति ॥

सू० विप्रतिपत्त्यव्यवस्थाध्यवसायाच्च ॥ २ ॥

भा० न विप्रतिपत्तिमात्रादव्यवस्थामात्राद्वा संशयः । किं
तर्हि विप्रतिपत्तिमुपलभमानस्य संशयः । एवमव्यवस्था-
यामपीति । अथवास्यात्मेत्येके नास्यात्मेत्यपरे मन्यन्त
इत्युपलब्धेः कथं संशयः स्यादिति । अथोपलब्धिरव्यवस्थिता
अनुपलब्धिश्चाव्यवस्थितेति विभागो नाध्यवस्थिते संशयो
नोपपद्यत इति ॥

सू० विप्रतिपत्तौ च सम्प्रतिपत्तेः ॥ ३ ॥

भा० याच्च विप्रतिपत्तिं भवान् संशयहेतुं मन्यते सा सम्प्र-
तिपत्तिः । सा हि द्वयोः प्रत्यनीकधर्माविषया तत्र यदि
विप्रतिपत्तेः संशयः सम्प्रतिपत्तेरेव संशय इति ॥

सू० अव्यवस्थात्मनि व्यवस्थितत्वाच्चाव्यवस्थायाः ॥४॥

भा० न संशयः । यदि तावदियमव्यवस्था आत्मन्येव व्यव-
स्थिता व्यवस्थानादव्यवस्था न भवतीत्यनुपपन्नः संशयः,
अथाव्यवस्थात्मनि न व्यवस्थिता एवमतादात्म्यादव्यवस्था
न भवतीति संशयाभाव इति ॥

सू० तथाऽत्यन्तसंशयस्तद्धर्मेसातत्यापपत्तः ॥ ५ ॥

भा० येन कल्पेन भवान् समानधर्मापपत्तेः संशय इति
मन्यते तेन खल्वत्यन्तसंशयः प्रसज्यते समानधर्मापपत्ते-
रनुच्छेदात् संशयानुच्छेदः नायमतद्धर्मा धर्मा विमृश्य-
माणे गृह्यते सततन्तु तद्धर्मा भवतीति । अस्य प्रतिषेध-
प्रपञ्चस्य संक्षेपेणोद्धारः ॥

सू० यथोक्ताध्यवसायादेव तद्विशेषापेक्षात् संशये
नासंशयो नात्यन्तसंशयो वा ॥ ६ ॥

भा० संशयानुपपत्तिः संशयानुच्छेदश्च न प्रसज्यते, कथम्,
यत्तावत्समानधर्माध्यवसायः संशयहेतुर्न समानधर्मात्र-

भा० मिति । एवमेतत्, कस्मादेवं नोच्यत इति विशेषापेक्ष इति वचनात् सिद्धेः । विशेषस्यापेक्षाकाङ्क्षा, सा चानुपलभ्यमाने विशेषे समर्था न चेत्तं समानधर्मापेक्ष इति समाने च धर्मो कथमाकाङ्क्षा न भवेत् यद्ययं प्रत्यक्षः स्यात् । एतेन सामर्थ्येन विज्ञायते समानधर्माध्यवसायादिति उपपत्तिवचनाद्वा समानधर्मोपपत्तेरित्युच्यते न चान्यासङ्गावसंवेदनादृते समानधर्मोपपत्तिरस्ति । अनुपलभ्यमानसङ्गावो हि समानो धर्मो विद्यमानवद्भवतीति । विषयशब्देन वा विषयिणः प्रत्ययस्याभिधानम् । यथा लोके धूमेनाग्निरनुमीयते इत्युक्ते धूमदर्शनेनाग्निरनुमीयत इति ज्ञायते कथं दृष्ट्वा हि धूममग्निमनुमिनेति नादृष्ट्वा, न च वाक्ये दर्शनशब्दः श्रूयते अनुजानाति च वाक्यस्यार्थप्रत्यायकत्वम्, तेन मन्यामहे विषयशब्देन विषयिणः प्रत्ययस्याभिधानम् बोद्ध्वाऽनुजानाति एवमिहापि समानधर्मशब्देन समानधर्माध्यवसायमाहेति । यथोहित्वा समानमनयोर्धर्ममुपलभत इति । धर्मधर्मिग्रहणे संशयाभाव इति । पूर्वदृष्टविषयमेतत् । यावहमर्थौ पूर्वमद्राचन्तयोः समानं धर्ममुपलभे विशेषं नोपलभ इति । कथन्तु विशेषं पक्षेयं येनान्यतरमवधारयेयमिति, न चैतत्समानधर्मोपलब्धौ* धर्मधर्मिग्रहणमात्रेण निवर्तत इति यच्चोक्तम् नार्थान्तराध्यवसायादन्यत्र संशय इति यो ह्यर्थान्तराध्यवसाय-

भा० मात्रं संशयहेतुमुपाददीत स एवं वाच्य इति । यत्पुनरे-
 तत्कार्यकारणयोस्सारूप्याभावादिति कारणस्य भावाभा-
 वयोः कार्यस्य भावाभावौ कार्यकारणयोः सारूप्यम्
 यस्योत्पादाद्यदुत्पद्यते यस्य चानुत्पादाद्यनोत्पद्यते तत्का-
 रणं कार्यमितरदित्येतत्सारूप्यम्, अस्ति च संशयकारणे
 संशये चैतदिति, एतेनानेकधर्माध्यवसायादिति प्रतिषेधः
 परिहृत इति यत्पुनरेतदुक्तं विप्रतिपत्त्यवस्थाध्यवसायाच्च
 न संशय इति । पृथक् प्रवादयोर्याहतमर्थमुपलभे विशेष-
 ङ्घ न जानामि नोपलभे येनान्यतरमवधारयेयम् । तत्
 कोऽत्र विशेषः स्याद्येनैकतरमवधारयेयमिति । संशयो वि-
 प्रतिपत्तिजनितोऽयं न शक्यो विप्रतिपत्तिसम्प्रतिपत्तिमा-
 त्रेण निवर्त्तयितुमिति । एवमुपलब्ध्यनुपलब्धवस्थाकृते सं-
 शये वेदितव्यमिति । यत् पुनरेतत् विप्रतिपत्तौ च सम्प्रति-
 पत्तेरिति विप्रतिपत्तिशब्दस्य योऽर्थः तदध्यवसायो विशेषा-
 पेक्षः संशयहेतुस्य च समाख्यानन्तरेण न निवृत्तिः समा-
 नेऽधिकरणे व्याहृतार्थो प्रवादौ विप्रतिपत्तिशब्दस्यार्थः
 तदध्यवसायश्च विशेषापेक्षः संशयहेतुः न चास्य सम्प्रति-
 पत्तिशब्दे समाख्यानन्तरे योज्यमाने संशयहेतुत्वं निवर्त्तते ।
 तदिदमकृतबुद्धिसमोहनमिति । यत्पुनरवस्थात्मनि व्य-
 वस्थितत्वाच्चव्यवस्थाया इति संशयहेतोरर्थस्याप्रतिषेधाद-
 व्यवस्थाऽभ्यनुज्ञानाच्च निमित्तान्तरेण शब्दान्तरकल्पना-
 व्यर्था शब्दान्तरकल्पना, अव्यवस्था खलु व्यवस्था न भवत्य-

भा० व्यवस्थात्मनि व्यवस्थितत्वादिति नानयोदपलब्धनुपलब्धेभ्यः
सदसदिषयत्वं विशेषापेक्षं संशयहेतुर्न भवतीति प्रतिषिध्यते
यावता चाव्यवस्थात्मनि व्यवस्थिता न तावतात्मानं जहाति
तावता ह्यनुज्ञाता भवत्यव्यवस्था । एवमियं क्रियमाणापि
शब्दान्तरकल्पना नार्थान्तरं साधयतीति । यत्पुनरेतत्तथा-
त्यन्तसंशयस्तद्धर्मसातत्योपपत्तेरिति नायं समानधर्मादिभ्य
एव संशयः किन्तर्हि तत्तदिषयाध्यवसायादिशेषस्यति-
सहितादित्यतो नात्यन्तसंशय इति अन्यतरधर्माध्यवसा-
यादा न संशय इति तत्र युक्तम् विशेषापेक्षो विमर्शः
संशय इति वचनात् विशेषश्चान्यतरधर्मा न च तस्मिन्न-
ध्यवसीयमाने विशेषापेक्षा सम्भवतीति ॥

सू० यच्च संशयस्तत्रैवमुत्तरोत्तरप्रसङ्गः ॥ ७ ॥

भा० यच्च यच्च संशयपूर्विका परीक्षा शास्त्रे कथायां वा तच्च
तत्रैवं संशये परेण प्रतिषिद्धे समाधिर्वाच्य इति । अतः
सर्वपरिक्षायापित्वाप्रथमं संशयः परीक्षित इति । अथ
प्रमाणपरीक्षा ॥

सू० प्रत्यक्षादीनामप्रामाण्यं चैकाल्यासिद्धेः ॥ ८ ॥

भा० प्रत्यक्षादीनां प्रमाणत्वं नास्ति चैकाल्यासिद्धेः पूर्व्या-
परसहभावानुपपत्तेरिति । अस्य सामान्यवचनस्यार्थवि-
भागः ॥

सू० पूर्वं हि प्रमाणसिद्धौ नेन्द्रियार्थसन्निकर्षात्प्र-
त्यक्षोत्पत्तिः ॥ ९ ॥

भा० गन्धादिविषयं ज्ञानं प्रत्यक्षं तद्यदि पूर्वम्, पश्चाद्गन्धा-
दीनां सिद्धिः, नेदं गन्धादिषन्निकर्षादुत्पद्यत इति ॥

सू० पश्चात् सिद्धौ न प्रमाणेभ्यः प्रमेयसिद्धिः ॥ १० ॥

भा० असति प्रमाणे केन प्रमेयमाणोऽर्थः प्रमेयः स्यात् प्र-
माणेन खलु प्रमेयमाणोऽर्थः प्रमेयमित्येतत्सिध्यति ॥

सू० युगपत्सिद्धौ प्रत्यर्थनियतत्वात् क्रमवृत्तित्वा-
भावो बुद्धीनाम् ॥ ११ ॥

भा० यदि प्रमाणं प्रमेयञ्च युगपद्भवतः । एवमपि गन्धा-
दिष्विन्द्रियार्थेषु ज्ञानानि प्रत्यर्थनियतानि युगपत्सम्भव-
न्तीति ज्ञानानां प्रत्यर्थनियतत्वात् क्रमवृत्तित्वाभावः । या
इमा बुद्ध्यः क्रमेणार्थेषु प्रवर्तन्ते तासां क्रमवृत्तित्वं
न सम्भवतीति, व्याघातश्च युगपज्ज्ञानानुत्पत्तिर्मनसो
ल्लिङ्गमिति, एतावाञ्च प्रमाणप्रमेययोः सङ्गावविषयः स
चानुपपन्न इति तस्मात् प्रत्यक्षादीनां प्रमाणत्वं न सम्भ-
वतीति, अस्य समाधिः उपलब्धिहेतोर्दुपलब्धिविषयस्य
चार्थस्य पूर्वापरसहभावानियमाद्यथा दर्शनं विभागवचनम्
कचिदुपलब्धिहेतुः पूर्वं पश्चादुपलब्धिविषयः । यथा-
दित्यस्य प्रकाशः उत्पद्यमानानां कचित्पूर्वमुपलब्धिविषयः

भा० पश्चादुपलब्धिहेतुः, यथावस्थितानां प्रदीपः क्वचिदुपल-
 ब्धिहेतुरुपलब्धिविषयस्य सह सम्भवतः, यथा धूमेनाग्नेर्ग्रह-
 णमिति, उपलब्धिहेतुस्य प्रमाणम्, प्रमेयनूपलब्धिविषयः
 एवं प्रमाणप्रमेययोः पूर्वापरसहभावेऽनियते यथाऽर्थो दृ-
 श्यते तथा विभज्य वचनीय इति । तत्रैकान्तेन प्रतिषेधा-
 नुपपत्तिः सामान्येन खलु विभज्य प्रतिषेध उक्त इति समा-
 ख्याहेतोस्तैकात्म्ययोगात् तथाभूता समाख्या, यत् पुनरिदं
 पश्चात् सिद्धे च प्रमाणेन प्रमीयमाणोऽर्थः प्रमेयमिति वि-
 ज्ञायत इति । प्रमाणमित्येतस्याः समाख्याया उपलब्धिहे-
 तुत्वं निमित्तं तस्य चैकात्म्ययोगः, उपलब्धिमकार्षीदुपलब्धिं
 करोति उपलब्धिं करिष्यतीति समाख्याहेतोस्तैकात्म्ययो-
 गात् समाख्या तथाभूता, प्रमितोऽनेनार्थः प्रमीयते प्रमा-
 स्यते इति प्रमाणम्, प्रमितं प्रमीयते प्रमास्यत इति च प्रमे-
 यम् । एवं सति भविष्यत्यस्मिन् हेतुत उपलब्धिः, प्रमास्यतेऽ-
 यमर्थः, प्रमेयमिदमित्येतत् सर्व्वं भवतीति, चैकात्म्यानभ्यनु-
 ज्ञाने च व्यवहारानुपपत्तिः । यस्यैवं नाभ्यनुजानीयात् तस्य
 पाचकमानय पच्यति, लावकमानय लविष्यतीति व्यव-
 हारो नापपद्यत इति । प्रत्यक्षादीनामप्रामाण्यं चैकात्म्या-
 सिद्धेरित्येवमादिवाक्यम् प्रमाणप्रतिषेधः । तत्रायं प्रष्टव्यः ।
 अथानेन प्रतिषेधेन भवता किं क्रियत इति, किं सम्भवो
 निवर्त्त्यते अथासम्भवो ज्ञायत इति, तद्यदि सम्भवो निव-
 र्त्त्यते सति सम्भवे प्रत्यक्षादीनां प्रतिषेधानुपपत्तिः अथा-

भा० सम्भवो ज्ञायते प्रमाणलक्षणं प्राप्तस्तर्हि प्रतिषेधः प्रमाणा-
सम्भवस्योपलब्धिहेतुत्वादिति । किञ्चातः ॥

सू० चैकाल्यासिद्धेः प्रतिषेधानुपपत्तिः ॥ १२ ॥

भा० अस्य तु विभागः पूर्व्वं हि प्रतिषेधसिद्धावसतिप्रति-
षेधे किमनेन प्रतिषिध्यते, पश्चात् सिद्धौ प्रतिषेध्यासिद्धिः
प्रतिषेधाभावादिति, युगपत्सिद्धौ प्रतिषेधसिद्धयभ्यनुज्ञाना-
दनर्थकः प्रतिषेध इति । प्रतिषेधलक्षणे च वाक्येऽनुपपद्य-
माने सिद्धं प्रत्यक्षादीनां प्रामाण्यमिति ॥

सू० सर्व्वप्रमाणप्रतिषेधाच्च प्रतिषेधानुपपत्तिः ॥ १३ ॥

भा० कथम् चैकाल्यासिद्धेरित्यस्य हेतोर्यद्युदाहरणमुपा-
दीयते हेत्वर्थस्य साधकत्वं दृष्टान्ते दर्शयितव्यमिति न च
तर्हि प्रत्यक्षादीनामप्रामाण्यम् । अथ प्रत्यक्षादीनामप्रा-
माण्यमुपादीयमानमप्युदाहरणं नार्थं साधयिष्यतीति सोऽयं
सर्व्वप्रमाणैर्व्याहतो हेतुरहेतुः । सिद्धान्तमभ्युपेत्य तद्वि-
रोधी विरुद्ध इति, वाक्यार्थो ह्यस्य सिद्धान्तः स च
वाक्यार्थः प्रत्यक्षादीनि नार्थं साधयन्तीति । इदञ्चाव-
यवानामुपादानमर्थस्य साधनायेति । अथ नोपादीयते
अप्रदर्शितहेत्वर्थस्य दृष्टान्तेन साधकत्वमिति *निषेधो नो-
पपद्यते हेतुत्वासिद्धेरिति ॥

सू० तत्रामाण्ये वा न सर्वप्रमाणविप्रतिषेधः ॥ १४ ॥

भा० प्रतिषेधलक्षणे स्ववाक्ये तेषामवयवाश्रितानां प्रत्यक्षा-
दीनामप्रामाण्येऽभ्यनुज्ञायमाने परवाक्येऽप्यवयवाश्रितानां
प्रामाण्यं प्रसज्यते अविशेषादिति । एवञ्च न सर्वाणि प्रमा-
णानि प्रतिषिध्यन्त इति । विप्रतिषेध इति वीत्ययमुप-
सर्गः सम्प्रतिपत्त्यर्थे न व्याघातेऽर्थाभावादिति ॥

त्रैकाल्याप्रतिषेधश्च शब्दादातोद्यसिद्धिवत्तत्
सिद्धेः ॥ १५ ॥

भा० किमर्थं पुनरिदमुच्यते, पूर्वोक्तनिबन्धनार्थं यत्तावत्
पूर्वोक्तमुपलब्धिहेतोरुपलब्धिविषयस्य चार्थस्य पूर्वापर-
सहभावानियमाद्यथादर्शनं विभागवचनमिति । तदितः
समुत्थानं यथा विज्ञायेत । अनियमदर्शी खल्वयमृषिर्निय-
मेन प्रतिषेधं प्रत्याचष्टे, त्रैकाल्यस्य चायुक्तः प्रतिषेध इति ।
तत्रैकां विधामुदाहरति । शब्दादातोद्यसिद्धिवदिति यथा
पश्चात् सिद्धेन शब्देन पूर्वसिद्धमातोद्यमनुमीयते सा-
ध्यज्ञातोद्यं साधनञ्च शब्दः । अन्तर्हिते ह्यातोद्ये स्वनतो-
ऽनुमानं भवतीति । वीणा वाद्यते वेणुः पूर्यते इति स्वन-
विशेषेण आतोद्यविशेषं प्रतिपद्यते । तथा पूर्वसिद्धमुपल-
ब्धिहेतुना प्रतिपद्यतइति । निदर्शनार्थत्वाच्चास्य शेषयो-
र्विधयोर्थयोक्तमुदाहरणं वेदितव्यमिति । कस्मात् पुनरिह

भा० तन्नोच्यते पूर्वोक्तमुपपाद्यत इति । सर्व्वथा तावदयमर्थः

प्रकाशयितव्यः सह इह वा प्रकाशेत तत्र वा न कश्चि-
द्विशेष इति । यदा चोपलब्धिविषयः कस्यचिदुपलब्धि-
साधनं भवति तदा प्रमाणं प्रमेयमिति चैकोऽर्थोऽभि-
धीयते । अस्यार्थस्यावद्योतनार्थमिदमुच्यते ॥

सू० प्रमेयता च तुलाप्रामाण्यवत् ॥ १६ ॥

भा० गुरुत्वपरिमाणज्ञानसाधनं तुला प्रमाणं, ज्ञानविष-
यो गुरुद्रव्यं सुवर्णादि प्रमेयम् । यदा तु सुवर्णादिना
तुलान्तरं व्यवस्थाप्यते तदा तुलान्तरप्रतिपत्तौ सुवर्णादि
प्रमाणम्, तुलान्तरं प्रमेयमिति । एवमनवयवेन त-
न्त्रार्थ उद्दिष्टो वेदितव्यः । आत्मा तावदुपलब्धिविषयत्वात्
*प्रमेये परिपठितः । उपलब्धौ स्वातन्त्र्यात् प्रमाता । बुद्धि-
रुपलब्धिसाधनत्वात् प्रमाणम्, उपलब्धिविषयत्वात् प्रमे-
यम्, उभयाभावात् प्रमितिः । एवमर्थविशेषे समाख्या
समावेशो योज्यः । तथा च कारकशब्दा निमित्तवशात्
समावेशेन वर्त्तन्त इति । वृक्षस्तिष्ठतीति स्तस्थितौ स्वात-
न्त्र्यात् कर्त्ता, वृक्षं पश्यतीति दर्शनेनाप्तुमिच्छमाणतमत्वात्
कर्म्म, वृक्षेण चन्द्रमसं ज्ञापयतीति ज्ञापकस्य साधकतमत्वात्
करणम् । वृक्षायोदकमासिञ्चतीत्यासिञ्चमानेनोदकेन वृ-
क्षमभिप्रैतीति सम्प्रदानम्, वृक्षात्पर्णम्यततीति ध्रुवमपाये-

भा०ऽपादानमित्यपादानम् । वृत्ते वयांसि सन्तीत्याधारोऽधिक-
रणमित्यधिकरणम् । एवञ्च सति न द्रव्यमात्रं कारकं न
क्रियामात्रं किं तर्हि क्रियासाधनं क्रियाविशेषयुक्तं कार-
कम् । यत् क्रियासाधनं स्वतन्त्रः स कर्त्ता न द्रव्यमात्रं न
क्रियामात्रम् । क्रियया ह्याप्तमित्यमाणतमं कर्म न द्रव्य-
मात्रं न क्रियामात्रम् । एवं साधकतमादिष्वपि, एवञ्च
कारकार्यान्वाख्यानं यथैवोपपत्तित एवं लक्षणतः कार-
कान्वाख्यानमपि न द्रव्यमात्रेण न क्रियया वा, किं तर्हि
क्रियासाधने क्रियाविशेषे युक्त इति कारकशब्दश्चायं प्रमा-
णं प्रमेयमिति स च कारकधर्मं न दातुमर्हति अस्ति च
भोः कारकशब्दानां निमित्तवशात् समावेशः । प्रत्य-
क्षादीनि च प्रमाणानि उपलब्धिहेतुत्वात्, प्रमेयञ्चोप-
लब्धिविषयत्वात्, संवेद्यानि च प्रत्यक्षादीनि प्रत्यक्षेणोप-
लभे अनुमानेनोपलभे उपमानेनोपलभे आगमेनोप-
लभे प्रत्यक्षं मे ज्ञानमानुमानिकं मे ज्ञानमौपमानिकं मे
ज्ञानमागमिकं मे ज्ञानमिति ज्ञानविशेषा गृह्यन्ते, लक्ष-
णतश्च ज्ञायमानानि ज्ञायन्ते विशेषेण इन्द्रियार्थसन्नि-
कर्षोत्पन्नं ज्ञानमित्येवमादिना, सेयमुपलब्धिः प्रत्यक्षादि-
विषया किम्प्रमाणान्तरतोऽथान्तरेण प्रमाणान्तरमसा-
धनेति कस्याच विशेषः ॥

सू० प्रमाणतः सिद्धेः प्रमाणानां प्रमाणान्तरसिद्धि-
प्रसङ्गः ॥ १७ ॥

भा० यदि प्रत्यक्षादीनि प्रमाणेन नोपलभ्यन्ते । येन प्रमाणेनोपलभ्यन्ते तत्प्रमाणान्तरमङ्गावः प्रसज्यत इति । अनवस्थामाह तस्याप्यन्यतरस्याप्यन्येनेति नचानवस्था शक्यानुज्ञातुमनुपपत्तेरिति । अस्तु तर्हि प्रमाणान्तरमन्तरेण निःसाधनेति ॥

सू० तद्विनिवृत्तेर्वा प्रमाणान्तरसिद्धिवत् प्रमेयसिद्धिः
॥ १८ ॥

भा० यदि प्रत्यक्षाद्युपलब्धौ प्रमाणान्तरं निवृत्तं आत्मैत्युपलब्ध्वावपि प्रमाणान्तरं निवर्त्यत्यविशेषात् । एवञ्च सर्वप्रमाणविलोप इत्यत आह ॥

सू० न प्रदीपप्रकाशवत् तत्सिद्धेः ॥ १९ ॥

भा० यथा प्रदीपप्रकाशः प्रत्यक्षाङ्गत्वाद्दृश्यदर्शने प्रमाणम्, स च प्रत्यक्षान्तरेण चक्षुषः सन्निकर्षेण गृह्यते । प्रदीपभावाभावयोर्दर्शनस्य तथाभावाद्दर्शनहेतुरनुमीयते । तमसि प्रदीपमुपादधीया इत्याप्तोपदेशेनापि प्रतिपद्यते । एवं प्रत्यक्षादीनां यथादर्शनं प्रत्यक्षादिभिरेवोपलब्धिः । इन्द्रियाणि तावत् स्वविषयग्रहणेनैवानुमीयन्ते । अर्थाः प्रत्यक्षतो गृह्यन्ते, इन्द्रियार्थसन्निकर्षस्तु आवरणेन लिङ्गेनानुमीयते, इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नं ज्ञानमात्ममनसोः संयोगविशेषादात्मसमवायाच्च सुखादिवद्गृह्यते । एवं

भा० प्रमाणविशेषो विभज्य वचनीयः । यथा च दृश्यः सन् प्रदीप-
प्रकाशो दृष्टान्तराणां दर्शनहेतुरिति दृश्यदर्शनव्यवस्थां
लभते । एवं प्रमेयं सत् किञ्चिदर्थजातमुपलब्धिहेतुत्वात्
प्रमाणप्रमेयव्यवस्थां लभते, मेयं प्रत्यक्षादिभिरेव प्रत्यक्षा-
दीनां यथादर्शनमुपलब्धिर्न प्रमाणान्तरतो न च प्रमाण-
मन्तरेण निःसाधनेति, तेनैव तस्या ग्रहणमिति चेत् ना-
र्थभेदस्य लक्षणसामान्यात् प्रत्यक्षादीनाम् प्रत्यक्षादिभिरेव
ग्रहणमित्युक्तम् । अन्येन ह्यन्यस्य ग्रहणं दृष्टमिति नार्थभेदस्य
लक्षणसामान्यात् प्रत्यक्षलक्षणेनानेकोऽर्थः सङ्गृहीतः । तत्र
केनचित् कस्यचिद्ग्रहणमित्यदोषः । एवमनुमानादिव्यपो-
ति, यथोद्धृतेनोदकेनाशयस्यस्य ग्रहणमिति ज्ञातमनमोश्च
दर्शनात् । अहं सुखी अहं दुःखी चेति तेनैव ज्ञात्वा त-
स्यैव ग्रहणं दृश्यते, युगपज्ज्ञानानुत्पत्तिर्मनसो लिङ्गमिति
च तेनैव मनसा तस्यैवानुमानं दृश्यते, ज्ञातुर्ज्ञेयस्य चा-
भेदो ग्रहणस्य ग्राह्यस्य चाभेद इति । निमित्तभेदोऽत्रेति
चेत् समानम्, न निमित्तान्तरेण विना ज्ञाताऽत्मानं जा-
नीते न च निमित्तान्तरेण विना मनसा मनो गृह्यत इति
समानमेतत्, प्रत्यक्षादिभिः प्रत्यक्षादीनां ग्रहणमित्यत्रा-
प्यर्थभेदो न गृह्यत इति । प्रत्यक्षादीनाञ्चाविषयस्यानुप-
पत्तेः । यदि स्यात् किञ्चिदर्थजातं प्रत्यक्षादीनामविषयः ।
यत् प्रत्यक्षादिभिर्न शक्यं ग्रहीतुं तस्य ग्रहणाय प्रमा-
णान्तरमुपादीयेत । तत्तु न शक्यं केनचिदुपपादयितु-

भा० मिति । प्रत्यक्षादीनां यथादर्शनमेवेदं सच्चासच्च सर्व्वं विषय इति केचित्तु दृष्टान्तमपरिगृहीतं हेतुना विशेषहेतुमन्तरेण साध्यसाधनायोपाददते । यथा प्रदीपप्रकाशः प्रदीपान्तरप्रकाशमन्तरेण गृह्यते, तथा प्रमाणानि प्रमाणान्तरमन्तरेण गृह्यन्त इति । स चायं किञ्चिन्निवृत्तिदर्शनादनिवृत्तिदर्शनाच्च कश्चिदनेकान्तः । यथा चायं प्रसङ्गेऽनिवृत्तिदर्शनात् प्रमाणसाधनायोपादीयते, एवं प्रमेयसाधनायाप्युपादेयो विशेषहेतुत्वात् यथा स्थाव्यादिरूपग्रहणे प्रदीपप्रकाशः प्रमेयसाधनायोपादीयते । एवं प्रमाणसाधनायाप्युपादेयो विशेषहेत्वभावात् सोऽयं विशेषहेतुपरिग्रहमन्तरेण दृष्टान्त एकस्मिन् पक्षे उपादेयो न प्रतिपक्ष इत्यनेकान्तः । एकस्मिंश्च पक्षे दृष्टान्त उपादेयो न प्रतिपक्षे दृष्टान्त इत्यनेकान्तो विशेषहेतुत्वाभावादिति । विशेषहेतुपरिग्रहे सति उपसंहाराभ्यनुज्ञानादप्रतिषेधः । विशेषहेतुपरिगृहीतस्तु दृष्टान्त एकस्मिन् पक्षे उपसंह्रियमाणो न शक्यो ज्ञातुम् । एवञ्च सत्यनेकान्त इत्ययं प्रतिषेधो न भवति । प्रत्यक्षादीनां प्रत्यक्षादिभिरुपलब्धत्वावयवस्येति चेत् न संविद्विषयनिमित्तानामुपलब्धत्वा व्यवहारोपपत्तेः । प्रत्यक्षेणार्थमुपलभे अनुमानेनार्थमुपलभे उपमानेनार्थमुपलभे आगमेनार्थमुपलभ इति । प्रत्यक्षं मे ज्ञानमानुमानिकं मे ज्ञानमौपमानिकं मे ज्ञानमागमिकं मे ज्ञानमिति संविन्निमित्तञ्चोपलभमानस्य धर्मार्थसुखापवर्गप्रयो-

भा० जनस्तत्प्रत्यनीकपरिवर्जनप्रयोजनस्य व्यवहार उपपद्यते,
सोऽयं तावत्येव निवर्त्तते, न चास्ति व्यवहारान्तरमनवस्था
साधनीयम्, येन प्रयुक्तोऽनवस्थामुपाददीतेति । सामान्येन
प्रमाणानि परीक्ष्य विशेषेण परीक्ष्यन्ते तत्र ॥

सू० प्रत्यक्षलक्षणानुपपत्तिरसमग्रवचनात् ॥ २० ॥

भा० आत्ममनःसन्निकर्षो हि कारणान्तरं नोक्तमिति । न
चासंयुक्ते द्रव्ये संयोगजन्यस्य गुणस्योत्पत्तिरिति ज्ञानो-
त्पत्तिदर्शनादात्ममनःसन्निकर्षः कारणम्, मनःसन्निक-
र्षानपेक्षस्य चेन्द्रियार्थसन्निकर्षस्य ज्ञानकारणत्वे युगपदुत्प-
द्येरन् बुद्ध्य इति मनःसन्निकर्षोऽपि कारणम् । तदिदं
सूत्रं पुरस्तात् कृतमाह्यम् ॥

सू० नात्ममनसोः सन्निकर्षाभावे प्रत्यक्षोत्पत्तिः ॥
॥ २१ ॥

भा० आत्ममनसोः सन्निकर्षाभावे नोत्पद्यते प्रत्यक्षम् इन्द्रि-
यार्थसन्निकर्षाभाववदिति, सति चेन्द्रियार्थसन्निकर्षे ज्ञा-
नोत्पत्तिदर्शनात् कारणभावं ब्रुवते ॥

सू० दिग्देशकालाकाशेष्वप्येवंप्रसङ्गः ॥ २२ ॥

भा० दिगादिषु सत्सु ज्ञानभावात्तान्यपि कारणानीति ।
अकारणभावेऽपि ज्ञानोत्पत्तिर्दिगादिसन्निधेरवर्जनीय-
त्वात् । यदायकारणं दिगादीनि ज्ञानोत्पत्तौ तदापि सत्सु

भा० दिगादिषु ज्ञानेन भवितव्यम्, न हि दिगादीनां सन्निधिः
 शक्यः परिवर्ज्यितुमिति तत्र कारणभावे हेतुवचनम्,
 एतस्माद्धेतोर्दिगादीनि ज्ञानकारणानीति । आत्ममनः-
 सन्निकर्षस्तर्ह्युपसङ्ख्येय इति तत्रेदमुच्यते ॥

सू० ज्ञानलिङ्गत्वादात्मनो नानवरोधः ॥ २३ ॥

भा० ज्ञानमात्मनो लिङ्गं तदुणत्वात् न चासंयुक्ते द्रव्ये संयो-
 गजस्य गुणस्योत्पत्तिरस्तीति ॥

सू० तदयौगपद्यलिङ्गत्वाच्च न मनसः ॥ २४ ॥

भा० अनवरोध इति वृत्तंते, युगपज्ज्ञानानुत्पत्तिर्मनसो लि-
 ङ्गमित्युच्यमाने सिध्यत्येव मनःसन्निकर्षापेक्ष इन्द्रियार्थ-
 सन्निकर्षो ज्ञानकारणमिति प्रत्यक्षनिमित्तत्वाच्चेन्द्रियार्थ-
 योः सन्निकर्षस्य शब्देन वचनम्, प्रत्यक्षानुमानोपमानशब्दा-
 नां निमित्तमात्ममनःसन्निकर्षः प्रत्यक्षस्येवेन्द्रियार्थसन्निकर्ष
 इत्यसमानोऽसमानत्वात्तस्य ग्रहणं सुप्तव्यासक्तमनसाच्चेन्द्रि-
 यार्थयोः सन्निकर्षनिमित्तत्वादिन्द्रियार्थसन्निकर्षस्य ग्रहणं
 नात्ममनसोः सन्निकर्षस्येति । एकदा खल्वयं प्रबोधकालं
 प्रणिधाय सुप्तः प्रणिधानवशात् प्रबुध्यते । यदा तु
 तीव्रौ ध्वनिसंज्ञौ प्रबोधकारणभवतस्तदा प्रसुप्तस्येन्द्रि-
 यार्थसन्निकर्षनिमित्तं प्रबोधज्ञानमुत्पद्यते, तत्र न ज्ञातु-
 र्मनसस्य सन्निकर्षस्य प्राधान्यं भवति, किन्तुर्हीन्द्रियार्थयोः

भा० सन्निकर्षस्य, न ह्यात्मा जिज्ञासमानः प्रयत्नेन मनस्तदा प्रेरयतीति । एकदा खल्वयं विषयान्तरासक्तमनाः सङ्कल्पवशाद्विषयान्तरं जिज्ञासमानः प्रयत्नप्रेरितेन मनसेन्द्रियं संयोज्य तत्तद्विषयान्तरं जानीते । यदा तु खल्वस्य निःसङ्कल्पस्य निर्जिज्ञासस्य च व्यासक्तमनसो वाह्यविषयोपनिपातनाज्ज्ञानमुत्पद्यते तदेन्द्रियार्थसन्निकर्षस्य प्राधान्यम् न ह्यत्रासौ जिज्ञासमानः प्रयत्नेन मनः प्रेरयतीति प्राधान्याच्चेन्द्रियार्थसन्निकर्षस्य ग्रहणं कार्यं, गुणत्वात्, नात्ममनसोः सन्निकर्षस्येति । प्राधान्ये च हेत्वन्तरम् ॥

सू० तैश्चापदेशो ज्ञानविशेषाणाम् ॥ २५ ॥

भा० तैरिन्द्रियैरर्थैश्च व्यपदिश्यन्ते ज्ञानविशेषाः, कथम्, घ्राणेन जिघ्रति, चक्षुषा पश्यति, रसनया रसयतीति, घ्राणविज्ञानं, चक्षुर्विज्ञानं, रसनाविज्ञानमिति, गन्धविज्ञानं, रूपविज्ञानं, रमविज्ञानमिति च इन्द्रियविषयविशेषाश्च पञ्चधा बुद्धिर्भवति, अतः प्राधान्यमिन्द्रियार्थसन्निकर्षस्येति । यदुक्तमिन्द्रियार्थसन्निकर्षग्रहणं कार्यन्नात्ममनसोः सन्निकर्षस्येति कस्मात् सुप्तव्यासक्तमनसामिन्द्रियार्थयोः सन्निकर्षस्य ज्ञाननिमित्तत्वादिति, सोऽयं ॥

सू० व्याहृतत्वादहेतुः ॥ २६ ॥

भा० यदि तावत् कचिदात्ममनसोः सन्निकर्षस्य ज्ञानकारणत्वं नेष्यते तदा युगपज्ज्ञानानुत्पत्तिर्मनसोर्लिङ्गमिति

भा० व्याहृत्येत तदानीं मनसः सन्निकर्षमिन्द्रियार्थसन्निकर्षोऽपे-
क्षते, मनःसंयोगानपेक्षायाञ्च युगपज्ज्ञानोत्पत्तिप्रसङ्गः ।
अथ माभूदव्याघात इति सर्व्वविज्ञानानामात्ममनसोः
सन्निकर्षः कारणमिष्यते तदवस्थमेवेदं भवति ज्ञानकार-
णत्वादात्ममनसोः सन्निकर्षस्य ग्रहणं कार्य्यमिति ॥

सू० नार्थविशेषप्राबल्यात् ॥ २७ ॥

भा० नास्ति व्याघातः न ह्यात्ममनःसन्निकर्षस्य ज्ञानकार-
णत्वं व्यभिचरति, इन्द्रियार्थसन्निकर्षस्य प्राधान्यमुपादी-
यते अर्थविशेषप्राबल्याद्धि सुप्तव्यासक्तमनसां ज्ञानोत्पत्ति-
रेकदा भवति, अर्थविशेषः कश्चिदेवेन्द्रियार्थः तस्य प्राबल्यं
तीव्रतापटुते तच्चार्थविशेषप्राबल्यमिन्द्रियार्थसन्निकर्षविषयं
नात्ममनसोः सन्निकर्षविषयं, तस्मादिन्द्रियार्थसन्निकर्षः
प्रधानमिति, असति प्रणिधाने सङ्कल्पे चासति सुप्त-
व्यासक्तमनसां यदिन्द्रियार्थसन्निकर्षादुत्पद्यते ज्ञानं तत्र
मनःसंयोगोऽपि कारणमिति मनसि क्रिया कारणं वा-
च्यमिति । यथैव ज्ञातुः खल्वयमिच्छाजनितः प्रयत्नो म-
नसः प्रेरक आत्मगुण एवमात्मनि गुणान्तरं सर्व्वस्य साधकं
प्रवृत्तिदोषजनितमस्ति, येन प्रेरितं मन इन्द्रियेण सम्ब-
ध्यते तेन ह्यप्रेर्यमाणे मनसि संयोगाभावाज्ज्ञानानुत्पत्तौ
सर्व्वार्थतास्य निवर्त्तते, एषितव्यञ्चास्य गुणान्तरस्य द्रव्य-
गुणकर्म्मकारणकत्वं अन्यथा हि चतुर्विधानामणूनां भूत-

भा० सूक्ष्माणां मनसाञ्च ततोऽन्यस्य क्रियाहेतोरसम्भवात् शरी-
रेन्द्रियविषयाणामनुत्पत्तिप्रसङ्गः ॥

सू० प्रत्यक्षमनुमानमेकदेशग्रहणादुपलब्धेः ॥ २८ ॥

भा० यदिदमिन्द्रियार्थसन्निकर्षादुत्पद्यते ज्ञानं वृत्त इत्ये-
तत् किल प्रत्यक्षं तत् खल्वनुमानमेव, कस्मात्, एकदेश-
ग्रहणात् वृत्तस्योपलब्धेरर्वाङ्गभागमयं गृहीत्वा वृत्तमुपल-
भते नचैकदेशो वृत्तः । तत्र यथा धूमं गृहीत्वा वह्नि-
मनुमिनोति तादृगेव तद्भवति । किं पुनर्गृह्यमाणादेक-
देशादर्थान्तरमनुमेयं मन्यसे अवयवसमूहपक्षे अवयवान्त-
राणि द्रव्योत्पत्तिपक्षे तानि चावयवी चेति अवयव-
समूहपक्षे तावत् एकदेशग्रहणाद्वृत्तबुद्धेरभावः नागृह्य-
माणमेकदेशान्तरं वृत्तो गृह्यमाणैकदेशवदिति, अथैकदेश-
ग्रहणादेकदेशान्तरानुमाने समुदायप्रतिसम्भानात् तत्र
वृत्तबुद्धिः न तर्हि वृत्तबुद्धिरनुमानमेवं सति भवितुमर्ह-
तीति । द्रव्यान्तरोत्पत्तिपक्षे नावयव्यनुमेयः । अस्यैकदेश-
सम्बन्धस्याग्रहणात् ग्रहणे चाविशेषादनुमेयत्वाभावः । तस्मा-
द्वृत्तबुद्धिरनुमानं न भवति । एकदेशग्रहणमाश्रित्य प्रत्य-
क्षस्यानुमानत्वमुपपाद्यते तच्च ॥

सू० न प्रत्यक्षेण यावत्तावदप्युपलम्भात् ॥ २९ ॥

भा० न प्रत्यक्षमनुमानं कस्मात् प्रत्यक्षेणैवोपलम्भात् । यत्त-

भा० देकदेशग्रहणमाश्रीयते प्रत्यक्षेणासावुपलम्भः न चोपलम्भो निर्विषयोऽस्ति यावच्चार्थजातन्तस्य विषयस्तावदभ्यनुज्ञायमानं प्रत्यक्षव्यवस्थापकमभवति । किं पुनस्ततोऽन्यदर्थजातमवयवी समुदायो वा न चैकदेशग्रहणमनुमानं भावयितुं शक्यं हेतुभावादिति । अन्यथापि च प्रत्यक्षस्य नानुमानत्वप्रसङ्गस्तत्पूर्वकत्वात्, प्रत्यक्षपूर्वकमनुमानं, सम्बद्धावग्निधूमौ प्रत्यक्षतो दृष्टवतो धूमप्रत्यक्षदर्शनादग्नावनुमानमभवति यत्र च सम्बद्धयोर्लिङ्गलिङ्गिनोः प्रत्यक्षं यच्च लिङ्गमात्रप्रत्यक्षग्रहणं नैतदन्तरेणानुमानस्य प्रवृत्तिरस्ति न चैतदनुमानमिन्द्रियार्थसन्निकर्षजत्वात् न चानुमेयस्येन्द्रियेण सन्निकर्षादनुमानमभवति सोऽयम् प्रत्यक्षानुमानयोर्लक्षणभेदो महानाश्रयितव्य इति ॥

सू० न चैकदेशोपलब्धिरवयविसङ्गावात् ॥ ३० ॥

भा० न चैकदेशोपलब्धिमात्रं किं तर्ह्येकदेशोपलब्धिस्तत्तद्वचरितावयव्युपलब्धिश्च, कस्मात् अवयविसङ्गावात् अस्ति ह्ययमेकदेशव्यतिरिक्तोऽवयवी तस्यावयवस्थानस्योपलब्धिकारणप्राप्त्यैकदेशोपलब्धावनुपलब्धिरनुपपन्नेति । अहस्तग्रहणादिति चेत् न कारणतोऽन्यस्यैकदेशस्याभावात् न चावयवाः कृत्स्ना गृह्यन्ते अवयवैरेवावयवान्तरव्यवधानात् नावयवी कृत्स्ना गृह्यन्ते इति नायं गृह्यमाणेष्ववयवेषु परिसमाप्त इति, मेयमेकदेशोपलब्धिरनिवृत्तेति

भा० कृत्स्नमिति वै खल्वशेषतायां सत्याम्भवति, अकृत्स्नमिति शेषे सति, तच्चैतदवयवेषु बद्धव्यस्ति । अव्यवधाने ग्रहणात् व्यवधाने चाग्रहणादिति । अङ्गन्तु भवान् पृष्ठो व्याचष्टां गृह्यमाणस्यावयविनः किमगृहीतं मन्यसे येनैकदेशोप-
लब्धिः स्यादिति न ह्यस्य कारणेभ्योऽन्ये एकदेशा *भव-
न्तीति तत्रावयववृत्तं नोपपद्यत इति इदं तस्य वृत्तम्,
येषामिन्द्रियार्थसन्निकर्षाद्ग्रहणमवयवानां तैः सह गृह्यते
येषामवयवानां व्यवधानादग्रहणं तैः सह न गृह्यते न
चैतत्कृतोऽस्ति भेद इति समुदायोऽप्यशेषता वा समुदायो
वृत्तः स्यात् तत्प्राप्तिर्वा उभयथाग्रहणभावः । मूलस्कन्ध-
शाखापक्षाशादीनामशेषता वा समुदायो वृत्त इति स्यात्
प्राप्तिर्वा समुदायिनामिति उभयथा समुदायभूतस्य वृ-
त्तस्य ग्रहणं नोपपद्यत इति अवयवैस्तावदवयवान्तरस्य
व्यवधानादशेषग्रहणं नोपपद्यते प्राप्तिग्रहणमपि नोपपद्यते
प्राप्तिमतामग्रहणात् सेयमेकदेशग्रहणसहचरिता वृत्तबुद्धि-
र्द्रव्यान्तरोत्पत्तौ कल्प्यते न समुदायमात्र इति ॥

सू० साध्यत्वादवयविनि सन्देहः ॥ ३१ ॥

भा० यदुक्तमवयविसङ्गावात् प्राप्तिमतामयमहेतुः, साध्यत्वात्
साध्यन्तावदेतत्कारणेभ्यो द्रव्यान्तरमुत्पद्यत इति अनुप-
पादितमेतत्, एवञ्च सति विप्रतिपत्तिमात्रमभवति विप्रति-
पत्तेश्चावयविनि संशय इति ॥

सू० सर्वाग्रहणमवयव्यसिद्धेः ॥ ३२ ॥

भा० यद्यवयवी नास्ति सर्वस्य ग्रहणं नोपपद्यते किं तत्सर्वम्
द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवायाः । कथञ्चत्वा परमाणु-
समवस्थानं तावद्दर्शनविषयो* भवतीत्यतीन्द्रियत्वादणूनां
द्रव्यान्तरावयवविभूतं दर्शनविषयो नास्ति दर्शनविषय-
स्याश्वमे द्रव्यादयो गृह्यन्ते तेन निरधिष्ठाना न गृह्येरन्,
गृह्यन्ते तु कुम्भोऽयं श्याम एको महान् संयुक्तः सन्दते
अस्ति नृण्यस्येति, सन्ति चेमे गुणादयो धर्मा इति तेन
सर्वस्य ग्रहणात् पश्यामोऽस्ति द्रव्यान्तरभूतोऽवयवीति ॥

सू० धारणाकर्षणोपपत्तेश्च ॥ ३३ ॥

भा० अवयव्यर्थान्तरभूत इति संयद्वकारिते वै धारणा-
कर्षणे संयद्वो नाम संयोगसहचरितं गुणान्तरम् । स्नेह-
द्रव्यत्वकारितमपांसंयोगादामे कुम्भे, अग्निसङ्गात् पक्वे यदि
त्ववयविकारिते अभविष्यताम् पांशुराग्निप्रभृतिष्वप्यज्ञा-
स्येतां द्रव्यान्तरानुत्पत्तौ च दृष्टोपलकाष्ठादिषु जन्तुसङ्ग-
हीतेष्वपि नाभविष्यतामिति । अथावयविनं प्रत्याचक्षाण-
को माभूत् प्रत्यक्षलोप इत्यणुसञ्चयं दर्शनविषयं प्रतिजा-
नानः किमनुयोक्तव्य इति । एकमिदं द्रव्यमित्येकबुद्धेर्विषयं
पर्यनुयोज्यः किमेकबुद्धिरभिन्नार्थविषया, आहो नानार्थ-
विषयेति । अभिन्नार्थविषयेति चेत् अर्थान्तरानुज्ञानादव-
यविसिद्धिः, नानार्थविषयेति चेत् भिन्नेष्वेकदर्शनानुपपत्तिः ।
अनेकस्मिन्नेक इति व्याहृताबुद्धिर्न दृश्यत इति ॥

* विषयो न इति क्वचित् पाठः ।

सू० सेनावनवद्ग्रहणमिति चेन्नातीन्द्रियत्वादणूनाम्
॥ ३४ ॥

भा० यथा सेनाङ्गेषु वनाङ्गेषु च दूरादगृह्यमाणपृथक्त्वै-
कमिदमित्युपपद्यते बुद्धिः, एवं परमाणुषु सञ्चितेष्वगृह्य-
माणपृथक्त्वैकमिदमित्युपपद्यते बुद्धिरिति, यथाऽगृह्य-
माणपृथक्त्वानां खलु सेनावनाङ्गानामारात्कारणान्तरतः
पृथक्त्वाग्रहणम्, यथाऽगृह्यमाणजातीनां पक्षाश इति वा
खदिर इति वा नाराज्जातिग्रहणम्भवति, गृह्यमाणप्रत्य-
न्दानान्नारात् सन्दग्रहणम्, गृह्यमाणे चार्थजाते पृथक्त्व-
स्याग्रहणादेकमिति भाक्तः प्रत्ययो भवति, न त्वणूनां गृह्य-
माणपृथक्त्वानां कारणतः पृथक्त्वाग्रहणात् भाक्त एक-
प्रत्ययोऽतीन्द्रियत्वादणूनामिति । इदमेव च परीक्ष्यते
किमेकप्रत्ययोऽणुसञ्चयविषय आहोस्त्रिनेति । अणुसञ्चयएव
सेनावनाङ्गानि न च परीक्ष्यमाणमुदाहरणमिति युक्तम्,
साध्यत्वादिति, दृष्टमिति चेन्न तद्विषयस्य परीक्ष्योपपत्तेः ।
यदपि मन्यते दृष्टमिदं सेनावनाङ्गानां पृथक्त्वाग्रह-
णादभेदेनैकमिति ग्रहणं न च दृष्टं शक्यं प्रत्याख्यातु-
मिति, तथा नैवं तद्विषयस्य परीक्ष्योपपत्तेः । दर्शनविषय-
एवायं परीक्ष्यते योऽयमेकमिति प्रत्ययो दृश्यते स परी-
क्ष्यते किं द्रव्यान्तरविषयो वाऽथाणुसञ्चयविषय इत्यत्र
दर्शनमन्यतरस्य साधकं न भवति नानाभावे चाणूनां पृ-
थक्त्वाग्रहणादभेदेनैकमिति ग्रहणम् । अतस्त्रिंशदिति

भा० प्रत्ययो यथा स्थाणौ पुरुष इति ततः किमतस्मिंस्तदिति
 प्रत्ययस्य प्रधानापेक्षितत्वात् प्रधानसिद्धिः, स्थाणौ पुरुष-
 इति प्रत्ययस्य किं प्रधानम्, योऽसौ पुरुषे पुरुषप्रत्ययस्त-
 स्मिन् सति पुरुषसामान्यग्रहणात् स्थाणौ पुरुषोऽयमिति,
 एवं नानाभूतेश्वेकमिति *प्रामाण्यग्रहणात् प्रधाने सति
 भवितुमर्हति प्रधानञ्च सर्वस्याग्रहणादिति नोपपद्यते, त-
 स्मादभिन्न एवायमभेदप्रत्यय एकमिति, इन्द्रियान्तरविष-
 येष्वभेदप्रत्ययः प्रधानमिति चेत् न विशेषहेत्वभावात् दृष्टा-
 न्नाव्यवस्था, आत्रादिविषयेषु शब्दादिष्वभिन्नेष्वेकप्रत्ययः
 प्रधानमनेकस्मिन्नेकप्रत्ययस्येति । एवञ्च सति दृष्टान्तोपा-
 दानं न व्यवतिष्ठते, विशेषहेत्वभावात्, अणुषु सञ्चितेषु एक-
 प्रत्ययः किमतस्मिंस्तत्प्रत्ययः स्थाणौ पुरुषप्रत्ययवत्, अथार्थस्य
 तथाभावात् तस्मिंस्तदिति प्रत्ययो यथा शब्दस्यैकत्वादेकः
 शब्द इति । विशेषहेतुपरिग्रहमन्तरेण दृष्टान्तौ संशय-
 मापादयत इति, कुम्भवत् सञ्चयमात्रं गन्धादयोऽपीत्य-
 नुदाहरणं गन्धादय इति, एवं परिमाणसंयोगस्यन्द-
 जातिविशेषप्रत्ययानयनयोक्तव्यास्तेषु चैवं प्रसङ्ग इति ।
 एकत्वबुद्धिस्तस्मिंस्तदिति प्रत्यय इति विशेषहेतुर्महदिति
 प्रत्ययेन समानाधिकरण्यात् एकमिदं महच्चेति एकवि-
 षयौ प्रत्ययौ समानाधिकरणौ भवतः तेन विज्ञायते
 यन्महत् तदेकमिति । अणुसमूहातिशयग्रहणं महत्प्रत्यय-

* सामान्यग्रहणादिति क्वचित् पाठः ।

भा० इति चेत् सोऽयममहत्त्वणुषु महत्प्रत्ययो ऽतस्मिंस्तदिति
 प्रत्ययो भवतीति, किञ्चातः अतस्मिंस्तदिति प्रत्ययस्य प्रधा-
 नापेक्षितत्वात् प्रधानसिद्धिरिति भवितव्यं महत्येव महत्प्र-
 त्ययेनेति । अणुशब्दो महानिति च व्यवसायात् प्रधान-
 सिद्धिरिति चेत् न मन्दतीव्रताग्रहणमियत्तानवधारणात्
 यथा द्रव्येऽणुः शब्दोऽल्पो मन्द इत्येतस्य ग्रहणम्, महान्-
 शब्दः पटुतीव्र इत्येतस्य ग्रहणम् । कस्मात् इयत्तानव-
 धारणात्, न ह्ययं महान् शब्द इति व्यवस्थान्नियानयमि-
 त्यवधारयति । यथा वदरामलकविल्लादीनि संयुक्ते इमे
 इति च द्वित्वसमानाश्रयं प्राप्तिग्रहणम् द्वौ समुदायावाश्रयः
 संयोगश्चेति चेत् कोऽयं समुदायः । प्राप्तिरनेकस्याऽनेका
 वा प्राप्तिरेकस्य समुदाय इति चेत् प्राप्तेरग्रहणं प्राप्या-
 श्रितायाः संयुक्ते इमे वस्तुनी इति नात्र द्वे प्राप्ती संयुक्ते
 गृह्येते अनेकसमूहः समुदाय इति चेन्न द्वित्वेन समानाधि-
 करणस्य ग्रहणात् द्वाविमौ संयुक्तावर्थाविति ग्रहणे सति
 नानेकसमुदायाश्रयः संयोगो गृह्यते न च द्वयोरणो-
 रग्रहणमस्ति तस्मान्महतो द्वित्वाश्रयभूते द्रव्यसंयोगस्य स्था-
 नमिति प्रत्यासत्तिः प्रतीक्षा तावता संयोगो नार्थान्त-
 रमिति चेत् नार्थान्तरहेतुत्वात् संयोगस्य शब्दरूपादि-
 स्यन्दानां हेतुः संयोगो न च द्रव्ययोगुणान्तरोपजनन-
 मन्तरेण शब्दे रूपादिषु *स्यर्धे च कारणत्वं गृह्यते तस्मा-

* स्यर्धे इति कचित् पाठः ।

भा० दुष्णान्तरं प्रत्ययविषयस्वार्थान्तरं तत्प्रतिषेधो वा कुण्डलो
 गुरुरकुण्डलश्चात्र इति संयोगबुद्धेस्व यद्यर्थान्तरं न विष-
 यः, अर्थान्तरप्रतिषेधस्तर्हि विषयस्तत्र प्रतिषिद्धमानवचनं
 संयुक्ते द्रव्ये इति यदर्थान्तरमन्यत्र दृष्टमिह प्रतिषिद्धते
 तदक्तव्यमिति द्वयोर्महतोराश्रितस्य ग्रहणान्नाण्यत्र इति
 जातिविशेषस्य प्रत्ययानुवृत्तिलिङ्गस्याप्रत्याख्यानम् प्रत्या-
 ख्याने वा प्रत्ययव्यवस्थानुपपत्तिः । अधिकरणस्थानभि-
 व्यक्तेरधिकरणवचनम् अणुसमवस्थानम् विषय इति चेत्,
 प्राप्ताप्राप्तसामर्थ्यवचनम् । किमप्राप्ते अणुसमवस्थाने तदा-
 अथो जातिविशेषो गृह्यते अथ प्राप्ते इति, अप्राप्ते ग्रह-
 णमिति चेत् व्यवहितस्याणुसमवस्थानस्याप्युपलब्धिप्रसङ्गः,
 अव्यवहितेऽणुसमवस्थाने तदाअथो जातिविशेषो गृह्यते,
 प्राप्ते ग्रहणमिति चेत्, मध्यपरभागयोरप्राप्तावनभिव्यक्तिः,
 यावत् प्राप्तमभवति तावत्यभिव्यक्तिरिति चेत् तावतो-
 ऽधिकरणत्वमणुसमवस्थानस्य यावति प्राप्ते जातिविशेषो
 गृह्यते तावदस्याधिकरणमिति प्राप्तमभवति, तत्रैकसमुदाये
 प्रतीयमानेऽर्थभेदः । एवञ्च सति योऽयमणुसमुदायो वृत्त-
 इति प्रतीयते तत्र वृत्तवज्जलम्प्रतीयते । यत्र यत्र ह्यणु-
 समुदायस्य भागे वृत्तत्वं गृह्यते स स वृत्त इति । तस्मात्
 समुदिताणुसमवस्थानस्यार्थान्तरस्य जातिविशेषस्याभिव्यक्ति-
 विषयत्वादवयव्यर्थान्तरभूत इति । परोक्षितं प्रत्यक्षम् ।
 अनुमानमिदानीं परीक्ष्यते ॥

सू० रोधोपघातसादृश्येभ्यो व्यभिचारादनुमानम-
प्रमाणम् ॥ ३५ ॥

भा० अप्रमाणमिति । एकदायर्थस्य न प्रतिपादकमिति ।
रोधोदपि नदी पूर्णा गृह्यते तदा चोपरिष्ठादृष्टो देव-
इति मिथ्यानुमानम् । नीडोपघातादपि पिपोलिकाण्ड-
सञ्चारो भवति तदा च भविष्यति वृष्टिरिति मिथ्यानुमा-
नमिति । पुरुषोऽपि मयूरवासितमनुकरोति तदापि शब्द-
सादृश्यान्मिथ्यानुमानमभवति ॥

सू० नैकदेशचाससादृश्येभ्योऽर्थान्तरभावात् ॥ ३६ ॥

भा० नायमनुमानव्यभिचारः अननुमाने तु खल्वयमनु-
मानाभिमानः, कथं, नाविशिष्टो लिङ्गं भवितुमर्हति । पूर्वा-
दकविशिष्टं खलु वर्षादकं शीघ्रतरत्वं स्रोतसो वज्रतरफेण-
फलपर्णकाष्ठादिवज्रलञ्चोपलभमानः पूर्णत्वेन नद्या उपरि
वृष्टो देव इत्यनुमिनोति नेदकवृद्धिमात्रेण । पिपोलिका-
प्रायस्याण्डसञ्चारे भविष्यति वृष्टिरित्यनुमीयते न कासा-
च्चिदिति । नेदं मयूरवासितं तत्सदृशोऽयं शब्द इति विशे-
षापरिज्ञानान्मिथ्यानुमानमिति यस्तु सदृशात् विशिष्टाच्छ-
ब्दादिशिष्टं मयूरवासितं गृह्णाति तस्य विशिष्टोऽर्थो गृह्य-
माणो लिङ्गं यथा सर्पादीनामिति, सोऽयमनुमातुरपरा-
धो नानुमानस्य योऽर्थविशेषेणानुमेयमर्थमविशिष्टार्थदर्श-
नेन बुभुक्षत इति । त्रिकालविषयमनुमानं त्रैकाग्र्यव-
त्तादित्युक्तमत्र च ॥

सू० वर्त्तमानाभावः पततः पतितपतितव्यकालोपपत्तेः
॥ ३७ ॥

भा० वृन्तात् प्रच्युतस्य फलस्य भूमौ प्रत्यासीदतो यदूर्ध्वं
स पतितोऽध्वा तत्संयुक्तः कालः, पतितकालः, योऽधस्तात्
स पतितव्योऽध्वा तत्संयुक्तः कालः पतितव्यकालः, नेदानीं
तृतीयोऽध्वा वर्त्तते यत्र पततीति वर्त्तमानः कालो गृह्येत,
तस्माद्वर्त्तमानः कालो न विद्यते इति ॥

सू० तयोरप्यभावो वर्त्तमानाभावे तदपेक्षत्वात् ॥
॥ ३८ ॥

भा० नाध्वयज्ज्ञः कालः, किन्तर्हि क्रियाव्यज्ज्ञः पततीति
यदा पतनक्रिया व्युपरता भवति स कालः पतितकालः,
यदोत्पत्त्यते स पतितव्यकालः । यदा द्रव्ये वर्त्तमाने क्रिया
गृह्यते स वर्त्तमानः कालः । यदि चायं द्रव्ये वर्त्तमानं
पतनं न गृह्णाति कस्योपरममुत्पत्त्यमानतां वा प्रतिपद्यते
पतितः काल इति भूता क्रिया, पतितव्यः काल इति
चोत्पत्त्यमाना क्रिया, उभयोः कालयोः क्रियाहीनं द्र-
व्यमधःपततीति क्रियासम्बद्धम् सोऽयं क्रियाद्रव्ययोः स-
म्बन्धं गृह्णाति वर्त्तमानः कालस्तदाश्रयौ चेतरेौ कालौ
तदभावे न स्यातामिति । अथापि ॥

सू० नातीतानागतयोरितरेतरापेक्षा सिद्धिः ॥ ३९ ॥

भा० यद्यतीतानागतावितरेतरापेक्षो सिद्धेताम्, प्रतिपद्ये-

भा० महि वर्त्तमानविलोपम् । नातीतापेक्षाऽनागतसिद्धिः ।
 नाप्यनागतापेक्षा अतीतसिद्धिः कया युक्त्वा केन कल्पे-
 नातीताः कथमतीतानागतयोरिति तत्रोपपद्यते विशेषहे-
 त्वभावात् । दृष्टान्तवत् प्रतिदृष्टान्तोऽपि प्रसज्यते । यथा
 रूपस्यैवा गन्धरसौ नेतरेतरापेक्षौ सिद्धोते एवमतीता-
 नागताविति नेतरेतरापेक्षा कस्यचित् सिद्धिरिति । यस्मा-
 देकाभावेऽन्यतराभावादुभयाभावः । यद्येकस्यान्यतरापेक्षा-
 सिद्धिरन्यतरस्येदानो किमपेक्षा यद्यन्यतरस्यैकापेक्षा सि-
 द्धिरैकस्येदानो किमपेक्षा एवमेकस्याभावेऽन्यतरन्न सिद्ध-
 तीत्युभयाभावः प्रसज्यते । अर्थसङ्गावव्यङ्ग्यञ्चायं वर्त्तमानः
 कालः विद्यते द्रव्यं विद्यते गुणः विद्यते कर्मेति । यस्य
 चायं नास्ति तस्य ॥

सू० वर्त्तमानाभावे सर्वाग्रहणमप्रत्यक्षानुपपत्तेः ॥
 ॥ ४० ॥

भा० प्रत्यक्षमिन्द्रियार्थसन्निकर्षजम् न चाविद्यमानमसदि-
 न्द्रियेण सन्निकृत्यते, न चायं विद्यमानं सत् किञ्चिदनुजा-
 नाति प्रत्यक्षनिमित्तं प्रत्यक्षविषयः प्रत्यक्षज्ञानं सर्वज्ञो-
 पपद्यते प्रत्यक्षानुपपत्तौ च तत्पूर्वकत्वात् अनुमानाग-
 मयोरनुपपत्तिः । सर्वप्रमाणविलोपे सर्वग्रहणं न भव-
 तोति । उभयथा च वर्त्तमानः कालो गृह्यते कचिदर्थ-
 सङ्गावव्यङ्ग्यः यथा *द्रव्ये द्रव्यमिति, कचित् क्रियासन्तान-

* यथास्ति द्रव्यमिति कचित् पाठः ।

भा० व्यङ्ग्यः । यथा पचति क्षिनत्तीति, नानाविधा चैकार्था क्रिया क्रियासन्तानः क्रियाभ्यासश्च नानाविधा चैकार्था क्रिया पचतीति स्थाव्यधिश्रयणमुदकासेचनं तण्डुलावपनमेधोप-
सर्पणमग्न्यभिज्वालनं दर्वीघटनं मण्डश्रावणमधोऽवतारण-
मिति । क्षिनत्तीति क्रियाभ्यास उद्यम्योद्यम्य परशुं दा-
रुणि निपातयन् क्षिनत्तीत्युच्यते । यच्चेदं पच्यमानं च्छि-
द्यमानञ्च तत्क्रियमाणं तस्मिन् क्रियमाणे ॥

सू० कृतताकर्तव्यतोपपत्तेस्तूभयथाग्रहणम् ॥ ४१ ॥

भा० क्रियासन्तानोऽनारम्भश्चिकीर्षितोऽनागतः कालः पच्य-
तीति । प्रयोजनावसानः क्रियासन्तानोपरमोऽतीतः कालो-
ऽपाचीदिति । आरम्भक्रियासन्तानो वर्त्तमानः कालः पच-
तीति । तत्र या उपरता सा कृतता, या चिकीर्षिता सा
कर्त्तव्यता, या विद्यमाना सा क्रियमाणा । तदेवं क्रिया-
सन्तानस्यैकाल्यसमाहारः पचति पच्यत इति वर्त्तमान-
ग्रहणेन * गृह्यन्ते क्रियासन्तानस्य ह्यत्राविच्छेदो विधी-
यते नारम्भो नोपरम इति सोऽयमुभयथा वर्त्तमानो
गृह्यते । अपवृक्तो व्यपवृक्तश्च । अतीतानागताभ्यां स्थि-
तिव्यङ्ग्यो विद्यते द्रव्यमिति क्रियासन्तानविच्छेदाभिधायी
च त्रैकाल्यान्वितः पचति क्षिनत्तीति अन्यश्च प्रत्यासत्ति-
प्रभृतेरर्थस्य विवक्षायां तदभिधायी बहुप्रकारो लोकेषु
उत्प्रेक्षितव्यः तस्मादस्ति वर्त्तमानः काल इति ॥

* गृह्यन्ते इति कचित् पाठः साधुः ।

सू० अत्यन्तप्रायैकदेशसाधर्म्यादुपमानासिद्धिः ॥ ४२ ॥

भा० अत्यन्तसाधर्म्यादुपमानं न सिद्धति, न चैवं भवति
यथा गौरेवं गौरिति, प्रायः साधर्म्यादुपमानं न सिद्धति,
नहि भवति यथानङ्गानेवं महिष इति, एकदेशसाध-
र्म्यादुपमानं न सिद्धति, नहि सर्व्वेण सर्व्वमुपमीयत इति ॥

सू० प्रसिद्धसाधर्म्यादुपमानसिद्धेर्यथोक्तदोषानुपप-
त्तिः ॥ ४३ ॥

भा० न साध्यस्य कृत्प्रप्रायास्यभावमाश्रित्योपमानं प्रवर्त्तते,
किन्तर्हि, प्रसिद्धसाधर्म्यात् साध्यसाधनभावमाश्रित्य प्रव-
र्त्तते, यत्र चैतदस्ति न तत्रोपमानम्प्रतिषेद्धुं शक्यम्, त-
स्माद्यथोक्तदोषो नोपपद्यत इति । अस्तु तर्ह्युपमानमनु-
मानम् ॥

सू० प्रत्यक्षेणाप्रत्यक्षसिद्धेः ॥ ४४ ॥

भा० य धूमेन प्रत्यक्षेणाप्रत्यक्षस्य वज्रेर्गृहणमनुमानमेवं
गवा प्रत्यक्षेणाप्रत्यक्षस्य गवयस्य गृहणमिति नेदमनुमाना-
दिशिष्यते । विशिष्यत इत्याह, कया युक्त्वा ॥

सू० नाप्रत्यक्षे गवये प्रमाणार्थमुपमानस्य पश्याम
इति ॥ ४५ ॥

भा० यदा ह्ययमुपयुक्तोपमानो गोदर्शी गवयसमानमर्थं
पश्यति, तदाऽयं गवय इत्यस्य संज्ञाशब्दस्य व्यवस्थां प्रति-

भा० पद्यते, न *चैवमनुमानमिति, परार्थं चोपमानम् यस्य
 ह्युपमानमप्रसिद्धं तदर्थं †प्रसिद्धोभयेन क्रियत इति परा-
 र्थमुपमानमिति चेत् न स्वयमध्यवसायात् भवति च भोः
 स्वयमध्यवसायः यथा गौरेवं गवय इति । नाध्यवसायः
 प्रतिषिध्यते उपमाने तु तन्न भवति प्रसिद्धसाधर्म्यात्
 साध्यसाधनमुपमानम् न च यस्योभयं प्रसिद्धं तं प्रति-
 साध्यसाधनभावो विद्यत इति । अथापि ॥

सू० तथेत्युपसंहारादुपमानसिद्धेर्नाविशेषः ॥ ४६ ॥

भा० तथेति समानधर्मोपसंहारादुपमानं सिध्यति नानु-
 मानम् । अयञ्ज्ञानयोर्विशेष इति ॥

सू० शब्दोऽनुमानमर्थस्यानुपलब्धेरनुमेयत्वात् ॥ ४७ ॥

भा० शब्दोऽनुमानं न प्रमाणान्तरम्, कस्मात् शब्दार्थस्या-
 नुमेयत्वात्, कथमनुमेयत्वम्, प्रत्यक्षतोऽनुपलब्धेः यथाऽनु-
 पलभ्यमानो लिङ्गी मितेन लिङ्गेन पश्यामीति अनु-
 मानम् एवं मितेन शब्देन पश्यामीत्येतोऽर्थोऽयमनुपलभ्य-
 मान इत्यनुमानं शब्दः । इतश्चानुमानं शब्दः ॥

सू० उपलब्धेरद्विप्रवृत्तित्वात् ॥ ४८ ॥

भा० प्रमाणान्तरभावे द्विप्रवृत्तिरुपलब्धिरन्यथा ह्युपलब्धि-
 रनुमाने अन्यथोपमाने, तज्ज्ञात्वा न शब्दानुमानयोस्तूप-

* न चेदमिति क्वचित् पाठः । † प्रसिद्धोपमेयेनेति क्वचित् पाठः ।

भा० लभिरदिप्रवृत्तिर्यथानुमाने प्रवर्तते तथा शब्देऽपि विशेष-
वाभावादनुमानं शब्द इति ॥

सू० सम्बन्धाच्च ॥ ४६ ॥

भा० शब्देऽनुमानमिति वर्तते, सम्बद्धयोश्च शब्दार्थयोः
सम्बन्धप्रसिद्धौ शब्दोपलब्धेरर्थग्रहणम् यथा सम्बद्धयोलिङ्ग-
लिङ्गिनोः सम्बन्धप्रतीतौ लिङ्गोपलब्धौ लिङ्गग्रहणमिति ।
यत्तावदर्थस्थानुमेयत्वादिति तन्न ॥

सू० * आतोपदेशसामर्थ्याच्छब्दार्थसम्प्रत्ययः ॥ ५० ॥

भा० स्वर्गः अप्सरस उत्तराः कुरवस्तप्तदीपाः समुद्रो लोक-
सन्निवेश इत्येवमादेरप्रत्ययस्यार्थस्य न शब्दमात्रात् प्र-
त्ययः, किन्तु हिं आप्नैरयमुक्तः शब्द इत्यतः सम्प्रत्ययः ।
विपर्ययेण सम्प्रत्ययाभावात् । न त्वेवमनुमानमिति । यत्
पुनरुपलब्धेरदिप्रवृत्तित्वादिति, अयमेव शब्दानुमानयो-
रुपलब्धेरदिप्रवृत्तिभेदः । तत्र विशेषे सत्यहेतुर्विशेषाभा-
वादिति । यत्पुनरिदं सम्बन्धाच्चेति अस्ति शब्दार्थयोः
सम्बन्धोऽनुज्ञातः अस्ति च प्रतिषिद्धः । अखेदमिति षष्ठो-
विशिष्टस्य वाक्यस्यार्थविशेषोऽनुज्ञातः प्राप्तिलक्षणस्तु शब्दा-
र्थयोः सम्बन्धः प्रतिषिद्धः कस्मात् ॥

सू० प्रमाणतोऽनुपलब्धेः ॥ ५१ ॥

* आतोपदेशसामर्थ्याच्छब्दार्थसम्प्रत्यय इति क्वचित् पाठः ।

भा० प्रत्यक्षतत्त्वावच्छब्दार्थप्राप्ते नोपलब्धिरतीन्द्रियत्वात् ये-
नेन्द्रियेण गृह्यते शब्दस्तस्य विषयभावमतिवृत्तोऽर्थो न
गृह्यते । अस्ति चातीन्द्रियविषयभूतोऽप्यर्थः समानेन चे-
न्द्रियेण गृह्यमाणयोः प्राप्तिर्गृह्यत इति प्राप्तिलक्षणे च
गृह्यमाणे सम्बन्धे शब्दार्थयोः शब्दान्तिके वार्थः स्यात्,
अर्थान्तिके वाशब्दः स्यात्, उभयं वोभयत्र । अथ खल्वयं ॥

सू० पूरणप्रदाहपाटनानुपलब्धेश्च सम्बन्धाभावः ॥
॥ ५२ ॥

भा० स्थानकरणाभावादिति चार्थः । न चायमनुमानतो-
ऽप्युपलभ्यते शब्दान्तिकेऽर्थ इति । एतस्मिन् पक्षेऽप्यस्य स्थान-
करणोच्चारणीयः शब्दस्तदन्तिकेऽर्थ इति । अस्मान्ग्यसि
शब्दोच्चारणे पूरणप्रदाहपाटनानि गृह्येरन्, न च प्रगृ-
ह्यन्ते । अयदृष्टान्मानुमेयः प्राप्तिलक्षणः सम्बन्धः अर्थान्ति-
के शब्द इति । स्थानकरणासम्भवादनुच्चारणम्, स्थानं
कण्ठादयः, करणं प्रयत्नविशेषः । तस्यार्थान्तिकेऽनुपपत्ति-
रिति उभयप्रतिषेधाच्च नोभयम् । तस्मान्न शब्देनार्थः
प्राप्त इति ॥

सू० शब्दार्थव्यवस्थानादप्रतिषेधः ॥ ५३ ॥

भा० शब्दार्थप्रत्ययस्य व्यवस्थादर्शनादनुमीयतेऽस्ति शब्दार्थ-
सम्बन्धो व्यवस्थाकारणम् । असम्बन्धे हि शब्दमात्रादर्थमात्रे
प्रत्ययप्रसङ्गः । तस्मादप्रतिषेधः सम्बन्धस्येति । अत्र समाधिः ॥

सू० न सामयिकत्वाच्छब्दार्थसम्प्रत्ययस्य ॥ ५४ ॥

भा० न सम्बन्धाकारितं शब्दार्थव्यवस्थानं किन्तु हि समय-
कारितं यत्तद्वोचाम । अख्येदमितिषष्ठीविशिष्टस्य वा-
क्यस्यार्थविशेषोऽनुज्ञातः शब्दार्थयोः सम्बन्ध इति समयं
तद्वोचामेति । कः पुनरयं समयः । अस्य शब्दख्येद-
मर्थजातमभिधेयमित्यभिधानाभिधेयनियमनियोगः । त-
स्मिन्नुपयुक्ते शब्दादर्थसम्प्रत्ययो भवति । विपर्यये हि शब्द-
श्रवणेऽपि प्रत्ययाभावः, सम्बन्धवादिनापि चायमवर्जनोय
इति । प्रयुज्यमानग्रहणाच्च समयोपयोगो लौकिकानाम्
समयपालनार्थं चेदपदलक्षणया वाचोऽन्वाख्यानं व्याकर-
णवाक्यलक्षणया वाचोऽर्थो लक्षणम् । पदसमूहो वाक्य-
मर्थपरिसमाप्ताविति । तदेवं प्राप्तिलक्षणस्य शब्दार्थसम्ब-
न्धस्यार्थजुषोऽप्यनुमानहेतुर्न भवतीति ॥

सू० जातिविशेषे चानियमात् ॥ ५५ ॥

भा० सामयिकः शब्दादर्थसम्प्रत्ययो न स्वाभाविकः । च-
क्षार्थस्तेच्छानां यथाकामं शब्दविनियोगोऽर्थप्रत्यायनाय
प्रवर्तते, स्वाभाविके हि शब्दस्यार्थप्रत्यायकत्वे यथाकामं
न स्यात् । यथा तैजसस्य प्रकाशस्य रूपप्रत्ययहेतुत्वं न जा-
तिविशेषे* व्यभिचरतीति ॥

सू० तदप्रामाण्यमनृतव्याधातपुनरुक्तदोषेभ्यः ॥ ५६ ॥

भा० पुत्रकामेष्टिहवनाभ्यासेषु तस्येतिशब्दविशेषमेवाधिकु-
रते भगवानृषिः । शब्दस्य प्रमाणत्वं न सम्भवति, कस्माद-
नृतदोषात् । पुत्रकामेष्टौ पुत्रकामः पुत्रेष्ट्या यजेतेति, नेष्टौ
संस्थितायां पुत्रजन्म दृश्यते । दृष्टार्थस्य वाक्यस्थानृतत्वात्
अदृष्टार्थमपि वाक्यमग्निहोत्रं जुहुयात् स्वर्गकाम इत्या-
द्यनृतमिति ज्ञायते । विहितव्याघातदोषाच्च हवने “उदि-
ते होतव्यमनुदिते होतव्यं समयाध्युषिते होतव्यम्” इति
विधाय विहितं व्याहन्ति “श्रावोऽस्याहुतिमभ्यवहरति य
उदिते जुहोति श्रवलोऽस्याहुतिमभ्यवहरति योऽनुदिते
जुहोति *श्रावश्रवलौ वास्याहुतिमभ्यवहरतो यः समयाध्यु-
षिते जुहोति” । व्याघाताच्चान्यतरन्मिष्येति । पुनरुक्तदोषाच्च
अभ्यासे देश्यमाने “त्रिः प्रथमामन्वाह त्रिरुत्तमाम्” इति
पुनरुक्तदोषो भवति । पुनरुक्तञ्च प्रमत्तवाक्यमिति तस्मा-
दप्रमाणं शब्दोऽनृतव्याघातपुनरुक्तदोषेभ्य इति ॥

सू० न कर्मकर्तृसाधनवैगुण्यात् ॥ ५७ ॥

भा० नानृतदोषः पुत्रकामेष्टौ, कस्मात्, कर्मकर्तृसाधनवैगु-
ण्यात् इष्ट्या पितरौ संयुज्यमानौ पुत्रं जनयत इति इष्टेः
करणं साधनम् पितरौ कर्तारौ संयोगः कर्म त्रयाणां
गुणयोगात् पुत्रजन्म वैगुण्यादिपर्ययः । इष्ट्याश्रयं तावत्क-
र्मवैगुण्यम् समीहाभ्येषः† । कर्तृवैगुण्यम् अविद्वान् प्रयोक्ता

* श्रावः श्रवलो वास्याहुतिमभ्यवहरतीति क्वचित् पाठः ।

† दोष इति क्वचित् पाठः ।

भा० कपूयाचरणस्य । साधनवैगुण्यं हविरसंस्कृतमुपहतमिति ।
मन्त्रा न्यूनाधिकाः स्वरवर्णहीना इति । दक्षिणा दुरा-
गता हीना निन्दिता चेति । अथोपयजनाश्रयं कर्मवैगुण्यम्
मिथ्यासम्प्रयोगः । कर्तव्यवैगुण्यम् योनिव्यापादो बीजोप-
घातश्चेति । साधनवैगुण्यम् दृष्टावभिहितम् लोके चाग्नि-
कामो दाहणीमघ्नीयादिति विधिवाक्यम्, तत्र कर्मवैगु-
ण्यम् मिथ्याभिमन्यनम्, कर्तव्यवैगुण्यम् प्रज्ञाप्रयत्नगतः प्र-
मादः, साधनवैगुण्यम् आर्द्रं सुषिरं दार्विति, तत्र फलं न
निष्पद्यत इति नानृतदोषः । गुणयोगेन फलनिष्पत्तिदर्श-
नात् न चेदं लौकिकाद्भिद्यते पुत्रकामः पुत्रेष्ट्या यजेतेति ॥

सू० अभ्युपेत्य कालभेदे दोषवचनात् ॥ ५८ ॥

भा० न व्याघातो हवन इत्यनुवर्तते योऽभ्युपगतं हवन-
कालम्विनत्ति ततोऽन्यत्र जुहोति तत्रायमभ्युपगतकालभेदे
दोष उच्यते श्वावोऽस्याहुतिमभ्यवहरति य उदिते जु-
होति तदिदं विधिभङ्गे निन्दावचनमिति ॥

सू० अनुवादोपपत्तेश्च ॥ ५९ ॥

भा० पुनरुक्तदोषोऽभ्यासे नेति प्रकृतम् । अनर्थकोऽभ्यासः
पुनरुक्तः अर्थवानभ्यासोऽनुवादः योऽयमभ्यासस्तिः प्रथमा-
मन्वाह त्रिरुक्तमामित्यनुवाद उपपद्यते अर्थवत्त्वात् । त्रि-
र्वचनेन हि प्रथमोत्तमयोः पञ्चदशलं सामिधेनीना-

भा० भवति । तथाच मन्त्राभिवादः । *इदमहं ब्राह्मणं पञ्चद-
शावरेण वाग्वज्रेण बाधे योऽस्मान् देष्टुं यच्च वयं दिश इति
पञ्चदशसामिधेनोर्वज्रं मन्त्रोऽभिवदति तदभ्यासमन्तरेण
न स्यादिति ॥

सू० वाक्यविभागस्य चार्थग्रहणात् ॥ ६० ॥

भा० प्रमाणं शब्दो यथा लोके विभागश्च ब्राह्मणवाक्यानां
त्रिविधः ॥

सू० विध्यर्थवादानुवादवचनविनियोगात् ॥ ६१ ॥

भा० त्रिधा खलु ब्राह्मणवाक्यानि विनियुक्तानि विधि-
वचनानि अर्थवादवचनान्यनुवादवचनानीति तत्र ॥

सू० विधिर्विधायकः ॥ ६२ ॥

भा० यद्वाक्यं विधायकं चोदकं स विधिः । विधिस्तु नि-
योगोऽनुज्ञा वा यथाग्निहोत्रं जुहुयात् स्वर्गकाम इत्यादि ॥

सू० स्तुतिर्निन्दा परकृतिः पुराकल्प इत्यर्थवादः ॥
॥ ६३ ॥

भा० विधेः फलवादलक्षणा या प्रशंसा सा स्तुतिः सम्प्रत्य-
यार्थं† स्तुयमानं अर्हधीतेति प्रवर्त्तिका च फलश्रवणात्
प्रवर्त्तते । सर्व्वजिता वै देवाः सर्व्वमजयन् सर्व्वस्याप्त्यै सर्व्वस्य
जित्यै सर्व्वमेवैतेनाप्नोति सर्व्वं जयतीत्येवमादिः । अनिष्ट-

* इममहमिति क्वचित् पाठः । † सम्प्रत्ययार्था इति क्वचित् पाठः ।

भा० फलवादो निन्दा वर्ज्जनायै निन्दितं न समाचरेदिति ।

स एष वा प्रथमो यज्ञो यज्ञानां यज्योतिष्ठोमो य एतेना-
निद्वाऽन्येन यजते गर्ते पतत्ययमेवैतज्जीर्यते वा इत्येव-
मादि । अन्यकर्मकस्य व्याहतस्य विधेर्वादः परकृतिः । ऊत्वा
वपामेवाग्रेऽभिधारयन्ति अथ पृषदाज्यं तदुह चरकाध्व-
र्यवः पृषदाज्यमेवाग्रेऽभिधारयन्ति । अग्नेः प्राणाः पृष-
दाज्यं स्तोममित्येवमभिदधतीत्येवमादि । ऐतिह्यसमाच-
रितो विधिः पुराकल्प इति । तस्माद्वा एतेन ब्राह्मणा
हविः पवमानं सामस्तोममस्तौषन् योने यज्ञं प्रतनवा-
मह इत्येवमादिः । कथं परकृतिपुराकल्पौ अर्थवादा-
विति । स्तुतिनिन्दावाक्येनाभिसम्बन्धादिध्याश्रयस्य कस्य
कस्यचिदर्थस्य द्योतनादर्थवाद इति ॥

सू० विधिविहितस्यानुवचनमनुवादः ॥ ६४ ॥

भा० विध्यनुवचनञ्चानुवादो विहितानुवचनञ्च, पूर्वः शब्दानु-
वादोऽपरोऽर्थानुवादः । यथा पुनरुक्तं द्विविधमेवमनुवा-
दोऽपि । किमर्थं पुनर्विहितमनूद्यते, अधिकारार्थम्, विहि-
तमधिकृत्य स्तुतिर्बोध्यते निन्दा वा विधिष्वेषो वाभिधी-
यते । विहितानन्तरार्थोऽपि चानुवादो भवति । एवमन्य-
दप्युत्प्रेक्षणीयम् । लोकेऽपि च विधिरर्थवादोऽनुवाद इति
च त्रिविधं वाक्यम् । आदनं पचेदिति विधिवाक्यम् । अर्थ-
वादवाक्यमायुर्वर्चो बलं सुखं प्रतिभानञ्चास्ते प्रतिष्ठितम् ।
अनुवादः पचतु पचतु भवानित्यभ्यासः क्षिप्रं प्रच्यता-

भा० मिति वा, अङ्ग पच्यतामित्यर्थेऽप्यर्थम् । पच्यतामेवेति वाऽवधारणार्थम् । यथा लौकिके वाक्ये विभागेनार्थग्रहणात् *प्रमाणत्वमेवं वेदवाक्यानामपि विभागेनार्थग्रहणात् प्रमाणत्वं भवितुमर्हतीति ॥

सू० नानुवादपुनरुक्तयोर्विशेषः शब्दाभ्यासोपपत्तेः ॥ ६५ ॥

भा० पुनरुक्तमसाधु, साधुरनुवाद इति अयं विशेषो नापपद्यते । कस्मात् । उभयत्र हि प्रतीतार्थः शब्दोऽभ्यस्यते चरितार्थस्य शब्दस्याभ्यासादुभयमसाध्विति ॥

सू० शीघ्रतरगमनोपदेशवदभ्यासान्नाविशेषः ॥ ६६ ॥

भा० नानुवादपुनरुक्तयोरविशेषः । कस्मात् । अर्थवदभ्यासस्यानुवादभावात् समानेऽभ्यासे पुनरुक्तमनर्थकम् । अर्थवानभ्यासोऽनुवादः । शीघ्रतरगमनोपदेशवत् । शीघ्रं शीघ्रं गम्यतां शीघ्रतरं गम्यतामिति क्रियातिशयोऽभ्यासे नैवोच्यते । उदाहरणार्थश्चेदम् एवमन्योऽप्यभ्यासः । पचति पचतीति क्रियानुपरमः । यामो यामो रमणीय इति व्याप्तिः । परिपरि त्रिगर्त्तेभ्यो वृष्टो देव इति परिवर्जनम्, अथ्यधि कुक्षं निषण्णमिति सामीप्यम् । तिक्रं तिक्रमिति प्रकारः । एवमनुवादस्य स्तुतिनिन्दाशेषविधिव्यधिरार्यता विहितार्थता चेति । किं पुनः प्रतिषेधहेतुद्वारादेव शब्दस्य प्रमाणत्वं न सिद्ध्यति ।

* प्रमाणत्वं तथा वेदेऽपि भवितुमर्हतीति कश्चित् पाठः ।

सू० मन्त्रायुर्वेदप्रामाण्यवच्च तत्प्रामाण्यमाप्तप्रामा-
ण्यात् ॥ ६७ ॥

भा० किं पुनरायुर्वेदस्य प्रामाण्यं यदायुर्वेदेनोपदिश्यते इदं
कृतेष्टमधिगच्छति इदं वर्ज्ययित्वाऽनिष्टं जहाति तस्यानु-
ष्ठीयमानस्य तथाभावः सत्यार्थताऽन्विपर्ययः, मन्त्रपदा-
नाञ्च विषभूताऽऽनिप्रतिषेधार्थानां प्रयोगेऽर्थस्य तथाभावः
एतत्प्रामाण्यं किं कृतमेतत् । आप्तप्रामाण्यकृतम् । किं पुन-
राप्तानां प्रामाण्यम् साक्षात्कृतधर्मता भूतदया यथा-
भूतार्थचिख्यापयिषेति । आप्ताः खलु साक्षात्कृतधर्माणः
इदं हातव्यमयमस्य हानिहेतुरिदमस्याधिगन्तव्यमयम-
स्याधिगमहेतुरिति भूतान्यनुकम्पन्ते । तेषां खलु वै प्राण-
भूतां स्त्रयमनवबुध्यमानानां नान्यदुपदेशादवबोधकारण-
मस्ति, न चानवबोधे समीक्षा वर्जनं वा, नवाऽकृत्वा स्वस्ति-
भावः, नाप्यस्यान्य उपकारकोऽप्यस्ति । इन्त वयमेभ्यो
यथादर्शनं यथाभूतमुपदिशामस्त इमे श्रुत्वा प्रतिपद्यमाना
हेयं हास्यन्त्यधिगन्तव्यमेवाधिगमिष्यन्तीति । एवमाप्तोप-
देशः एतेन त्रिविधेनाप्तप्रामाण्येन परिगृहीतोऽनुष्ठीयमा-
नोऽर्थस्य साधको भवति । एवमाप्तोपदेशः प्रमाणमेवमाप्ताः
प्रमाणम् । दृष्टार्थेनाप्तोपदेशेनायुर्वेदेनादृष्टार्थो वेदभागो-
ऽनुमातव्यः प्रमाणमिति आप्तप्रामाण्यस्य हेतोः समान-
त्वादिति, अस्यापि चैकदेशो ग्रामकामो यजेतेत्येवमादि-
दृष्टार्थज्ञेयानुमातव्यमिति । लोके च भूयानुपदेशाश्रया

भा० व्यवहारः । लौकिकस्याप्युपदेष्टुरूपदेष्टव्यार्थ* ज्ञानपरानुजि-
घृत्तया यथाभूतार्थचिख्यापयिषया च प्रामाण्यम् । तत्प-
रिग्रहादाप्तोपदेशः प्रमाणमिति द्रष्टृप्रवक्तृसामान्याच्चानुमा-
नम् य एवाप्ता वेदार्थानां द्रष्टारः प्रवक्तारश्च त एवायुर्वेद-
प्रभृतीनामित्यायुर्वेदप्रामाण्यवद्देदप्रामाण्यमनुमातव्यमिति ।
नित्यत्वाद्देदवाक्यानां प्रमाणत्वे तत्प्रामाण्यमात्रप्रामाण्या-
दित्ययुक्तम् शब्दस्य वाचकत्वादर्थप्रतिपत्तौ प्रमाणत्वं न नि-
त्यत्वात् नित्यत्वे हि सर्वस्य सर्वेण वचनाच्छब्दार्थव्यवस्था-
नुपपत्तिः । नानित्यत्वे वाचकत्वमिति चेत् न लौकिकेष्वद-
र्शनात्, तेऽपि नित्या इति चेत् न अनाप्तोपदेशादर्थविसं-
वादोऽनुपपन्नः । नित्यत्वाद्धि शब्दः प्रमाणमिति अनित्यः
स इति चेत् अविशेषवचनम् अनाप्तोपदेशो लौकिको न
नित्य इति स्मरणं वाच्यमिति । यथानियोगञ्चार्थस्य
प्रत्यायनान्नामधेयशब्दानां लोके प्रामाण्यम् नित्यत्वात्प्रा-
माण्यानुपपत्तिः । यच्चार्थे नामधेयशब्दो नियुज्यते लोके
तस्य नियोगसंभेदार्थात् प्रत्यायको भवति न नित्यत्वात्
मन्वन्तरयुगान्तरेषु चातीतानागतेषु सम्प्रदायाभ्यासप्र-
योगाविच्छेदो वेदानां नित्यत्वम् आप्तप्रामाण्याच्च प्रामा-
ण्यम् लौकिकेषु शब्देषु चैतत् समानमिति ॥

इति वात्स्यायनीये न्यायभाष्ये द्वितीयाध्यायस्याष्टमा-
ङ्किकम् ॥ * ॥

भा० अथथार्थः प्रमाणोद्देश इति मत्वाह ।

सू० न चतुष्टमैतिह्यार्थापत्तिसम्भवाभावप्रामाण्यात्
॥ १ ॥

भा० न चत्वार्येव प्रमाणानि, किन्तुर्हि, ऐतिह्यमर्थापत्तिः
सम्भवोऽभाव इत्येतान्यपि प्रमाणानि, इति होचुरित्यनिर्दि-
ष्टप्रवक्तृकम्प्रवादपारम्यर्थमैतिह्यम्, अर्थादापत्तिरर्थापत्तिः
आपत्तिः प्राप्तिः प्रसङ्गः । यत्राभिधीयमानेऽर्थे योऽन्योऽर्थः
प्रसज्यते सोऽर्थापत्तिः । यथा मेघेष्वसत्सु दृष्टिर्न भवतीति
किमत्र प्रसज्यते सत्सु भवतीति । सम्भवो नाम अविनाभा-
विनोऽर्थस्य सत्ताग्रहणादन्यस्य सत्ताग्रहणम् । यथा द्रो-
णस्य सत्ताग्रहणादाढकस्य सत्ताग्रहणम् आढकस्य सत्ता-
ग्रहणात्प्रसज्यते । अभावो विरोधी अभूतं भूतस्य, अविद्य-
मानं वर्षकर्म विद्यमानस्य वाय्वभ्रसंयोगस्य प्रतिपादकम्
विधारके हि वाय्वभ्रसंयोगे गुहत्वादपापतनकर्म न भव-
तीति । सत्यमेतानि प्रमाणानि न तु प्रमाणान्तराणि
प्रमाणान्तरञ्च मन्यमानेन प्रतिषेध उच्यते सोऽयम् ॥

सू० शब्द ऐतिह्यानर्थान्तरभावादनुमानेऽर्थापत्तिस-
म्भवाभावानर्थान्तरभावाच्चाप्रतिषेधः ॥ २ ॥

भा० अनुपपन्नः प्रतिषेधः कथम् आप्तोपदेशः शब्द इति
न च शब्दलक्षणमैतिह्यावर्तते सोऽयं भेदः सामान्यात्

भा० संगृह्यत इति । प्रत्यक्षेणाप्रत्यक्षस्य सम्बद्धस्य प्रतिपत्तिरनुमानम्, तथा चार्थापत्तिसम्भवाभावाः, वाक्यार्थसम्प्रत्ययेनानभिहितस्यार्थस्य प्रत्यनीकभावाद्ग्रहणमर्थापत्तिरनुमानमेव, अविनाभाववृत्त्या च सम्बद्धयोः समुदायिसमुदायिनोः समुदायेनेतरस्य ग्रहणं सम्भवः । तदप्यनुमानमेव । अस्मिन् सतोदं नोपपद्यत इति विरोधित्वे प्रसिद्धे कार्यानुत्पत्त्या कारणस्य प्रतिबन्धकमनुमीयते सोऽयं यथार्थ एव प्रमाणोद्देश इति सत्यमेतानि प्रमाणानि न तु प्रमाणान्तराणीत्युक्तम् । अचार्थापत्तेः प्रमाणभावाभ्यनुज्ञा नोपपद्यते तथा हीयम् ॥

सू० अर्थापत्तिरप्रमाणमनैकान्तिकत्वात् ॥ ३ ॥

भा० असत्सु मेघेषु दृष्टिर्न भवतीति सत्सु भवतीत्येतदर्थ्यादापद्यते सत्त्वपि चैकदा न भवति सेयमर्थापत्तिरप्रमाणमिति । नानैकान्तिकत्वमर्थापत्तेः ॥

सू० अनर्थापत्तावर्थापत्त्यभिमानात् ॥ ४ ॥

भा० असति कारणे कार्यमुत्पद्यते इति वाक्यात् प्रत्यनीकभूतोऽर्थः सति कारणे कार्यमुत्पद्यत इत्यर्थादापद्यते अभावस्य हि भावः प्रत्यनीक इति । सोऽयं कार्योत्पादः सति कारणेऽर्थादापद्यमानो न कारणस्य सत्तां व्यभिचरति न खल्वसति कारणे कार्यमुत्पद्यते तस्मान्नानैकान्तिकी यत्तु

भा० सति कारणे निमित्तप्रतिबन्धात् कार्यस्रोतपद्यत इति
कारणधर्मीऽसौ न तर्थापत्तेः प्रमेयं किन्तुर्ह्यस्याः प्रमेयम्
सति कारणे कार्यमुत्पद्यत इति योऽसौ कार्योत्पादः
कारणस्य सत्तां न व्यभिचरति एतदस्याः प्रमेयम् । एवन्तु
सति अनर्थापत्तावर्थापत्यभिमानं कृत्वा प्रतिषेध उच्यत
इति । दृष्टञ्च कारणधर्मी न शक्यः प्रत्याख्यातुमिति ॥

सू० प्रतिषेधाप्रामाण्यञ्चानैकान्तिकत्वात् ॥ ५ ॥

भा० अर्थापत्तिर्न प्रमाणमनैकान्तिकत्वादिति वाक्यम् प्र-
तिषेधः तेनानेनार्थापत्तेः प्रमाणत्वं प्रतिषिद्धते न सङ्गावः
एवमनैकान्तिको भवति अनैकान्तिकत्वादप्रमाणेनानेन न
कश्चिदर्थः प्रतिषिद्धते इति । अथ मन्यसे नियतविषये-
स्वर्थेषु स्वविषये व्यभिचारो भवति न च प्रतिषेधस्यास-
ङ्गावो विषयः एवन्तर्हि ॥

सू० तत्प्रामाण्ये वा नार्थापत्त्यप्रामाण्यम् ॥ ६ ॥

भा० अर्थापत्तेरपि कार्योत्पादेन कारणसत्ताया अव्य-
भिचारो विषयः न च कारणधर्मी निमित्तप्रतिबन्धात्
कार्यानुत्पादकत्वमिति । अभावस्य तर्हि प्रमाणभावा-
भ्यनुज्ञा नोपपद्यते कथमिति ॥

सू० नाभावप्रामाण्यम्प्रमेयासिद्धेः ॥ ७ ॥

भा० अभावस्य भूयसि प्रमेये लोकसिद्धे वैजात्यादुच्यते
नाभावप्रामाण्यम् प्रमेयासिद्धेरिति । अथाऽयमर्थवज्जलाद-
र्थैकदेश उदाह्रियते ॥

सू० लक्षितेष्वलक्षणलक्षितत्वादलक्षितानां तत्प्रमेय-
सिद्धेः ॥ ८ ॥

भा० तस्याभावस्य सिद्ध्यति प्रमेयम्, कथम् लक्षितेषु वासस्तु
अनुपादेयेषु उपादेयानामलक्षितानां लक्षणलक्षितत्वात्
लक्षणाभावेन लक्षितत्वादिति । उभयसन्निधावलक्षितानि
वासांस्थानयेति प्रयुक्तो येषु वासस्तु लक्षणानि न भव-
न्ति तानि लक्षणाभावेन प्रतिपद्यते प्रतिपद्य चानयति
प्रतिपत्तिहेतुश्च प्रमाणमिति ॥

सू० असत्यर्थे नाभाव इति चेन्नान्यलक्षणोपपत्तेः ।
॥ ९ ॥

भा० यत्र भूत्वा किञ्चिन्न भवति तत्र तस्याभाव उपपद्यते ।
अलक्षितेषु च वासस्तु लक्षणानि भूत्वा न भवन्ति तस्मात्
तेषु लक्षणाभावोऽनुपपन्न इति नान्यलक्षणोपपत्तेः यथा-
यमन्येषु वासःस्तु लक्षणानामुपपत्तिमपश्यति नैवमलक्षितेषु
सोऽयं लक्षणाभावं पश्यन्नभावेनार्थमतिपद्यते इति ॥

सू० तत्सिद्धेरलक्षितेष्वहेतुः ॥ १० ॥

भा० तेषु वासःसु लक्षितेषु सिद्धिर्विद्यमानता येषां भवति न तेषामभावो लक्षणानाम्, यानि च लक्षितेषु विद्यन्ते लक्षणानि, तेषामलक्षितेष्वभाव इत्यहेतुः । यानि खलु *भवन्ति तेषामभावो व्याहत इति ॥

सू० न लक्षणावस्थितापेक्षसिद्धेः ॥ ११ ॥

भा० न ब्रूमे यानि लक्षणानि †भवन्ति तेषामभाव इति । किन्तु केषुचिल्लक्षणान्यवस्थितानि अनवस्थानि केषुचिदपेक्षमाणो येषु लक्षणानां भावं न पश्यति तानि लक्षणाभावेन प्रतिपद्यत इति ॥

सू० प्रागुत्पत्तेरभावोपपत्तेश्च ॥ १२ ॥

भा० अभावद्वैतं खलु भवति प्राक् चोत्पत्तेरविद्यमानता उत्पन्नस्य चात्मनो हानादविद्यमानता, तत्रालक्षितेषु वासःसु प्रागुत्पत्तेरविद्यमानतालक्षणे लक्षणानामभावो नेतर इति । आप्तोपदेशः शब्द इति प्रमाणभावे विशेषणं ब्रुवतानानाप्रकारः शब्द इति ज्ञायते तस्मिन् सामान्येन विचारः किं नित्योऽथानित्य इति ॥

सू० विमर्शहेत्वनुयोगे च विप्रतिपत्तेः संशयः ॥ १३ ॥

भा० आकाशगुणः शब्दो विभुर्नित्योऽभिव्यक्तिधर्मक इत्येके,

* सम्भवन्ति इति क्वचित् पाठः । † सम्भवन्तीति क्वचित् पाठः ।

‡ दत्तिकारमते नेदं सूत्रं किन्तु भाष्यमिति ।

भा० गन्धादिसहवृत्तिर्द्रव्येषु सन्निविष्टो गन्धादिवदवस्थितोऽ-
भिव्यक्तिधर्मक इत्यपरे, आकाशगुणः शब्द उत्पत्तिनिरोध-
धर्मको बुद्धिवदित्यपरे, महाभूतमङ्गोभजः शब्दोऽनाश्रित
उत्पत्तिधर्मको निरोधधर्मक इत्यन्ये, अतः संशयः किमत्र
तत्त्वमिति, अनित्यः शब्द इत्युत्तरम्, कथम् ॥

सू० आदिमत्वादैनद्रियकत्वात्कृतकवदुपचाराच्च ॥

॥ १४ ॥

भा० आदिर्योनिः कारणम्, आदीयतेऽस्मादिति कारण-
वदनित्यं दृष्टम् संयोगविभागजश्च शब्दः कारणवत्त्वाद-
नित्य इति, का पुनरियमर्थदेशना कारणवदिति उत्पत्ति-
धर्मकत्वादित्यः शब्द इति । भूत्वा न भवति विनाशधर्मक
इति, सांशयिकमेतत् किमुत्पत्तिकारणं संयोगविभागौ
शब्दस्य, आहोस्त्रिदभिव्यक्तिकारणमित्यत आह । ऐन्द्रि-
यकत्वात् इन्द्रियप्रत्यासत्तिर्वाच्य ऐन्द्रियः । किमयं व्यञ्ज-
केन समानदेशोऽभिव्यज्यते रूपादिवत् । अथ संयोगजाच्छ-
ब्दाच्छब्दसन्ताने सति ओत्रप्रत्यासन्नो गृह्यत इति, संयो-
गनिवृत्तौ शब्दग्रहणान्न व्यञ्जकेन समानदेशस्य ग्रहणम् ।
दारुवृक्षेने दारुपरशुसंयोगनिवृत्तौ दूरस्थेन शब्दो गृह्यते
न च व्यञ्जकाभावे व्यञ्जस्य ग्रहणं भवति, तस्मान्न व्यञ्जकः
संयोगः । उत्पादके तु संयोगे संयोगजाच्छब्दाच्छब्दस-
न्ताने सति ओत्रप्रत्यासन्नस्य ग्रहणमिति युक्तं संयोग-
निवृत्तौ शब्दस्य ग्रहणमिति । इतश्च शब्द उत्पद्यते

भा० नाभिव्यज्यते कृतकवदुपचारात् तीव्रं मन्दमिति कृत-
कमुपचर्यते तीव्रं सुखं मन्दं सुखं तीव्रं दुःखं मन्दं दुः-
खमिति उपचर्यते च तीव्रः शब्दो मन्दः शब्द इति ।
व्यञ्जकस्य तथाभावाद्गृहणस्य तीव्रमन्दता रूपवदिति चेन्न
अभिभवोपपत्तेः संयोगस्य व्यञ्जकस्य तीव्रमन्दतया शब्द-
गृहणस्य तीव्रमन्दता भवति न तु शब्दोभिद्यते यथा
प्रकाशस्य तीव्रमन्दतयारूपगृहणस्येति तच्च नैवम् अभि-
भवोपपत्तेः, तीव्रोभेरीशब्दोमन्दं तन्त्रीशब्दमभिभवति
न मन्दः, न च शब्दगृहणमभिभावकं शब्दश्च न भिद्यते
शब्दे तु भिद्यमाने युक्तोऽभिभवः तस्मादुत्पद्यते शब्दो
नाभिव्यज्यत इति, अभिभवानुपपत्तिश्च व्यञ्जकसमा-
नदेशस्याभिव्यक्तौ प्राप्यभावात् व्यञ्जकेन समानदेशोऽभि-
व्यज्यते शब्द इत्येतस्मिन् पक्षे नोपपद्यतेऽभिभवः, नहि भेरी-
शब्देन तन्त्रीखनः प्राप्त इति, अप्राप्ते अभिभव इति चेत्
शब्दमात्राभिभवप्रसङ्गः । अथ मन्येताऽसत्यां प्राप्तावभिभवो
भवतीति । एवं सति यथा भेरीशब्दः कश्चित्तन्त्रीखन-
मभिभवति । एवमन्तिकस्योपादानमिव दवीयस्योपादान-
मपि तन्त्रीखनं नाभिभवेत् अप्राप्तेरविशेषात् तत्र कश्चि-
देव भेर्यां प्रणादितायां सर्व्वलोकेषु समानकालास्तन्त्री-
खना न श्रूयेरन् इति । नानाभूतेषु शब्दसन्तानेषु सत्सु
ओत्रप्रत्यासत्तिभावेन कस्यचिच्छब्दस्य तीव्रेण मन्दस्या-
भिभवो युक्त इति । कः पुनरयमभिभवो नाम ग्राह्य-

भा० समानजातीयग्रहणकृतमग्रहणमभिभवः । यथोक्ताप्रका-
शस्य ग्रहणार्हस्यादित्यप्रकाशेनेति ॥

सू० न घटाभावसामान्यनित्यत्वात् *नित्येष्वप्यनि-
त्यवदुपचाराच्च ॥ १५ ॥

भा० न खलु आदिमत्त्वादित्यः शब्दः, कस्मात् व्यभिचा-
रात् आदिमतः खलु घटाभावस्य दृष्टं नित्यत्वम्, कथमा-
दिमान् कारणविभागभ्यो हि घटो न भवति कथमस्य
नित्यत्वं योऽसौ कारणविभागभ्यो न भवति न तस्याभावो
भावेन कदाचिन्नित्येति इति, यदप्येन्द्रियकत्वात् तदपि
व्यभिचरति । ऐन्द्रियकञ्च सामान्यं नित्यञ्चेति, यदपि
कृतकवदुपचारादिति तदपि व्यभिचरति नित्येष्वनित्यव-
दुपचारो दृष्टः यथा हि भवति वृक्षस्य प्रदेशः कमलस्य
प्रदेशः एवमाकाशस्य प्रदेशः आत्मनः प्रदेश इति भव-
तीति ॥

सू० तत्त्वभाक्तयोर्नानात्वविभागादव्यभिचारः ॥
॥ १६ ॥

भा० नित्यमित्यत्र किं तावत्तत्त्वम् । आत्मान्तरस्यानुत्पत्ति-
धर्माकस्यात्महानानुपपत्तिर्नित्यत्वम् । तच्चाभावे नोपप-
द्यते, भाक्तं तु भवति, यत्तत्रात्मा न महानासीत् यद्भूत्वा न

भा० भवति न जातु तत् पुनर्भवति तत्रानित्य इव नित्यो घटा-
भाव इत्यर्थं पदार्थ इति, तत्र यथाजातीयकः शब्दो न
तथाजातीयकं कार्यं किञ्चिन्नित्यं दृश्यत इत्यव्यभिचारः ।
यदपि सामान्यनित्यत्वादिति इन्द्रियप्रत्यासत्तिग्राह्यमैन्द्रि-
यकमिति ॥

सू० । सन्तानानुमानविशेषणात् ॥ १७ ॥

भा० नित्ये व्यभिचार इति प्रकृतम् । नेन्द्रियग्रहणमा-
मर्थ्याच्छब्दस्यानित्यत्वं किन्तर्हीन्द्रियप्रत्यासत्तिग्राह्यत्वात्
सन्तानानुमानं तेनानित्यत्वमिति यदपि नित्येव्यनित्य-
त्वदुपचारादिति न ॥

सू० कारणद्रव्यस्य प्रदेशशब्देनाभिधानान्नित्येष्वप्य-
व्यभिचार इति ॥ १८ ॥

भा० एवमाकाशप्रदेश आत्मप्रदेश इति नात्राकाशात्मनोः
कारणद्रव्यमभिधीयते यथा कृतकस्य, कथं ह्यविद्यमान-
मभिधीयते अविद्यमानता च प्रमाणतोऽनुपलभ्येः कि-
न्तर्हि तत्राभिधीयते संयोगस्याव्याप्यवृत्तित्वम् परिच्छि-
न्नेन द्रव्येणाकाशस्य संयोगो नाकाशं व्याप्नोति अव्याप्य
वर्त्तत इति, तदस्य कृतकेन द्रव्येण सामान्यम् न ह्या-
मलकयोः संयोग आश्रयं व्याप्नोति सामान्यकृता च भ-
क्तिराकाशस्य प्रदेश इति । अनेनात्मप्रदेशो व्याख्यातः

भा० संयोगवच्च शब्दबुद्ध्यादीनामव्याप्यवृत्तित्वमिति । परीक्षिता च तीव्रमन्दता शब्दतत्त्वं न भक्तिरूपेति । कस्मात् पुनः सूत्रकारस्यास्मिन्नर्थे सूत्रं न श्रूयत इति, शीलमिदं भगवतः सूत्रकारस्य बह्वधिकरणेषु द्वौ पक्षौ न व्यवस्थापयति तत्र शास्त्रसिद्धान्तात् तत्त्वावधारणं प्रतिपत्तुमर्हतीति मन्यते शास्त्रसिद्धान्तस्तु न्यायसमाख्यातमनुमतं बह्वशाखमनुमानमिति । अथापि खल्विदमस्ति इदं नास्तीति कुत एतत् प्रतिपत्तव्यमिति प्रमाणत उपलब्धेरनुपलब्धेरेति । अविद्यमानस्तर्हि शब्दः ॥

सू० प्रागुच्चारणाद्यनुपलब्धेरावरणाद्यनुपलब्धेश्च ॥

॥ १६ ॥

भा० प्रागुच्चारणान्नास्ति शब्दः । कस्मात् । अनुपलब्धेः सतोऽनुपलब्धिरावरणादिभ्य एतन्नोपपद्यते कस्मात् आवरणादीनामनुपलब्धिकारणानामग्रहणात् । अनेनावृतः शब्दो नोपलभ्यते असन्निकृष्टस्येन्द्रियव्यवधानादित्येवमादि अनुपलब्धिकारणं न गृह्यत इति सोऽयमनुच्चारितो नास्तीति, उच्चारणमस्य व्यञ्जकं तदभावात् प्रागुच्चारणाद्यनुपलब्धिरिति । किमिदमुच्चारणं नामेति । विवचाजनिनेन प्रयत्नेन कोष्ठस्य वायोः प्रेरितस्य कण्ठतालादिप्रतिघातः । यथास्थानं प्रतिघाताद्वर्णाभिव्यक्तिरिति । संयोगविशेषो वै प्रतिघातः प्रतिषिद्धश्च संयोगस्य व्यञ्ज-

भा० कल्म। तस्मान्न व्यञ्जकाभावादयद्वयम् अपि त्वभावादेवेति
 सोऽयमुच्चार्यमाणः श्रूयते श्रूयमाणश्च भूत्वा भवतीति
 अनुमीयते ऊर्ध्वं चोच्चारणाच्छ्रूयते, स भूत्वा न भवतीति
 अभावान्न श्रूयत इति कथं आवरणाद्यनुपलब्धेरित्युक्तं
 तस्मादुत्पत्तितिरोभावधर्मकः शब्द इति एवञ्च सति तत्त्वं
 पांशुभिरिवावाकिरन्निदमाह ॥

सू० तदनुपलब्धेरनुपलम्भादावरणोपपत्तिः ॥ २० ॥

भा० यद्यनुपलम्भादावरणं नास्ति आवरणानुपलब्धिरपि
 तर्ह्यनुपलम्भान्नास्तीति तस्या अभावादप्रतिषिद्धमावरण-
 मिति कथं पुनर्जानीतेऽभावान्नावरणानुपलब्धिरुपलभ्यत
 इति किमत्र ज्ञेयं प्रत्यात्मवेदनीयत्वात् समानम् अयं
 खल्ववरणमनुपलभमानः प्रत्यात्ममेव संवेदयते नावर-
 णमुपलभ्य इति यथा कुड्मेनावृतस्यावरणमुपलभमानः
 प्रत्यात्ममेव संवेदयते सेयमावरणोपलब्धिवदावरणानुप-
 लब्धिरपि संवेद्यैवेति एवञ्च सत्यपहतविषयमुत्तरवाक्यम-
 स्तीति अभ्यनुज्ञावादेन त्वच्यते जातिवादिना ॥

सू० अनुपलम्भादप्यनुपलब्धिसद्भाववन्नावरणानुप-
 पत्तिरनुपलम्भात् ॥ २१ ॥

भा० यथानुपलभ्यमानाऽप्यावरणानुपलब्धिरस्ति एवमनुप-
 लभ्यमानमप्यावरणमस्तीति यद्यभ्यनुजानाति भवाननुप-

भा० लभ्यमानायावरणानुपलब्धिरस्ति एवमनुपलभ्यमानमया-
 वरणमस्तीति । यद्यभ्यनुजानाति न चानुपलभ्यमाना ना-
 वरणानुपलब्धिरस्तीति अभ्यनुज्ञाय च वदति नास्यावरण-
 मनुपलम्भादिति । एतस्मिन्नप्यभ्यनुज्ञावादे प्रतिपत्तिनि-
 यमो नोपपद्यत इति ॥

सू० अनुपलम्भात्मकत्वादनुपलब्धेरहेतुः ॥ २२ ॥

भा० यदुपलभ्यते तदस्ति यन्नोपलभ्यते तन्नास्तीति अनुप-
 लम्भात्मकमसदिति व्यवस्थितम् उपलब्ध्यभावश्चानुपल-
 भिरिति सेयमभावत्वान्नोपलभ्यते सच्च खल्वारणं तस्या-
 पलब्ध्या भवितव्यम् । न चोपलभ्यते तस्मान्नास्तीति । तच्च
 यदुक्तं नावरणानुपपत्तिरनुपलम्भादित्युक्तमिति अथ
 शब्दस्य नित्यत्वं प्रतिजानानः कस्माद्धेतोः प्रतिजानीते ॥

सू० अस्पर्शत्वात् ॥ २३ ॥

भा० अस्पर्शमाकाशं नित्यं दृष्टमिति तथा च शब्द इति
 सोऽयमुभयतः सव्याभिचारः स्पर्शवांश्चाणुर्नित्यः अस्पर्शश्च
 कर्माऽनित्यं दृष्टं अस्पर्शत्वादित्येतस्य साध्यसाधर्म्येणोदा-
 हरणम् ॥

सू० न कर्मानित्यत्वात् ॥ २४ ॥

भा० साध्यवैधर्म्येणोदाहरणम् ॥

सू० नाणुनित्यत्वात् ॥ २५ ॥

भा० उभयस्मिन्नुदाहरणे व्यभिचारान्न हेतुः । अयन्तर्हि हेतुः ॥

सू० सम्प्रदानात् ॥ २६ ॥

भा० सम्प्रदीयमानमवस्थितं दृष्टम्, सम्प्रदीयते च शब्द आचार्येणान्तेवासिने तस्मादवस्थित इति ॥

सू० तदन्तरालानुपलब्धेरहेतुः ॥ २७ ॥

भा० येन सम्प्रदीयते यस्मै च तयोरन्तरालेऽवस्थानमस्य केन लिङ्गेनोपलभ्यते सम्प्रदीयमानो ह्यवस्थितः सम्प्रदातु-
रपैति सम्प्रदानञ्च प्राप्नोतीत्यवर्जनोपमेतत् ॥

सू० अध्यापनादप्रतिषेधः ॥ २८ ॥

भा० अध्यापनं लिङ्गं असति *सम्प्रदानेऽध्यापनं न स्यादिति ॥

सू० उभयोः पक्षयोरन्यतरस्याध्यापनादप्रतिषेधः ॥
॥ २९ ॥

भा० समानमध्यापनमुभयोः पक्षयोः †संशयानतिवृत्तेः कि-
माचार्यस्थः शब्देऽन्तेवासिनमापद्यते तदध्यापनम् । आ-

* सम्प्रदीयमाने इत्यर्थः । † संशयानिवृत्तेरिति कश्चित् पाठः ।

भा० हेखिन्नृत्योपदेशवद्गृहीतस्यानुकरणमध्यापनमिति । एवम-
ध्यापनमलिङ्गं सम्प्रदानस्येति । अयन्तर्हि हेतुः ॥

सू० अभ्यासात् ॥ ३० ॥

भा० अभ्यस्यमानमवस्थितं दृष्टम् पञ्चकलः पश्यतीति, रूप-
मवस्थितं पुनः पुन दृश्यते, भवति च शब्देऽभ्यासः, दशकलो-
धीतोऽनुवाको विंशतिकलोऽधीत इति, तस्मादवस्थितस्य
पुनः पुनरुच्चारणमभ्यास इति ॥

सू० नान्यत्वेऽप्यभ्यासस्योपचारात् ॥ ३१ ॥

भा० अनवस्थानेऽप्यभ्यासस्याभिधानं भवति । दिनृत्यतु भ-
वान् चिन्नृत्यतु भवानिति, द्विरनृत्यत् चिरनृत्यत् द्विर-
ग्रिहोत्रं जुहोति द्विर्भुङ्क्ते एवं व्यभिचारात् प्रतिषिद्ध-
हेतावन्यशब्दस्य प्रयोगः प्रतिषिध्यते ॥

सू० अन्यदन्यस्मादनन्यत्वादनन्यदित्यन्यताऽभावः ॥
॥ ३२ ॥

भा० यदिदमन्यदिति मन्यसे तत् स्वार्थेनानन्यत्वादन्यत्र
भवति । एवमन्यताया अभ्यासः, तत्र यदुक्तमन्यत्वेऽप्यभ्या-
सोपचारादित्येतदयुक्तमिति शब्दप्रयोगं प्रतिषेधतः श-
ब्दान्तरप्रयोगः प्रतिषिध्यते ॥

सू० तदभावे नास्त्यनन्यता तयोरितरेतरापेक्षसिद्धेः
॥ ३३ ॥

भा० *अन्यस्मादन्यतामुपपादयति भवान् उपपाद्य चान्यत्
प्रत्याचष्टे अनन्यदिति च शब्दमनुजानाति प्रयुक्ते चान-
न्यदिति । एतत् समासपदमन्यशब्दोऽयं प्रतिषेधेन सह
समस्यते यदिचात्रोत्तरं पदं नास्ति कस्यायं प्रतिषेधेन सह
समासः, तस्मात्तयोरनन्यान्यशब्दयोरितरोऽनन्यशब्द इतर-
मन्यशब्दमपेक्षमाणः सिद्ध्यतीति तत्र यदुक्तमन्यताया अभाव
इत्येतदयुक्तमिति. असु तर्हीदानों शब्दस्य नित्यत्वम् ॥

सू० विनाशकारणानुपलब्धेः ॥ ३४ ॥

भा० यदनित्यं तस्य विनाशः कारणाद्भवति यथा लोष्टस्य
कारणद्रव्यविभागात्, शब्दश्चेदनित्यस्तस्य विनाशो यस्मात्
कारणाद्भवति तदुपलभ्येत न चोपलभ्यते तस्मान्नित्य इति ॥

सू० अश्रवणकारणानुपलब्धेः सततश्रवणप्रसङ्गः ॥
॥ ३५ ॥

भा० यथा विनाशकारणानुपलब्धेरविनाशप्रसङ्गः । एवम-
श्रवणकारणानुपलब्धेः सततं श्रवणप्रसङ्गः । व्यञ्जकाभावा-
दश्रवणमिति चेत् प्रतिषिद्धम् व्यञ्जकम् । अथाविद्यमा-
नस्य निर्निमित्तं श्रवणमिति विद्यमानस्य निर्निमित्तो

* अन्यस्यानन्यतामिति क्वचित् पाठः ।

भा० विनाश इति समानश्च दृष्टविरोधो निमित्तमन्तरेण
विनाशे चाश्रवणे चेति ॥

सू० उपलभ्यमाने चानुपलब्धेरसत्त्वादनपदेशः॥३६॥

भा० अनुमानाद्योपलभ्यमाने शब्दस्य विनाशकारणे वि-
नाशकारणानुपलब्धेरसत्त्वादित्यनपदेशः । यस्माद्विषाणी
तस्मादश्च इति किमनुमानमिति चेत् सन्तानोपपत्तिः
उपपादितः शब्दसन्तानः संयोगविभागजाच्छब्दाच्छब्दा-
न्तरं ततोऽप्यन्यत्ततोऽप्यन्यदिति तत्र कार्यः शब्दः का-
रणशब्दं निरूपयति प्रतिघातिद्रव्यसंयोगस्त्वन्यस्य शब्दस्य
मिरोधकः । * दृष्टं हि तिरः प्रतिकुड्यमन्तिकस्थेनाप्यश्रवणं
शब्दस्य श्रवणं दूरस्थेनाप्यसति व्यवधान इति । घण्टाया-
मभिहन्यमानायां तारस्तारतरो मन्दो मन्दतर इति
श्रुतिभेदान्नानाशब्दसन्तानोऽविच्छेदेन श्रूयते तन्न नित्ये
शब्दे, घण्टास्यमन्यगतं वाऽवस्थितं सन्ताननिवृत्तिरभि-
व्यक्तिकारणं वाच्यम् येन श्रुतिसन्तानो भवतीति शब्द-
भेदश्चासतिश्रुतिभेद उपपादयितव्य इति । अनित्ये तु शब्दे
घण्टास्यं सन्तानवृत्तिमयोगसहकारिनिमित्तान्तरं संस्कार-
भूतं †पटुमन्दमिति वर्तते तस्यानुवृत्त्या शब्दसन्तानानु-
वृत्तिः । पटुमन्दभावाच्च तीव्रमन्दता शब्दस्य, तत्कृतस्य

* दृष्टं हि वः प्रतिकुड्यमिति क्वचित् पाठः ।

† पटुमन्दमनुवर्तते इति क्वचित् पाठः ।

भा० श्रुतिभेद इति *न वै निर्निमित्तान्तरं संस्कार उपलभ्यते
अनुपलब्धेर्नास्तीति ॥

सू० पाणिनिमित्तप्रक्षेपाच्छब्दाभावे नानुपलब्धिः ॥
॥ ३७ ॥

भा० पाणिकर्मणा पाणिघण्टाप्रक्षेपो भवति तस्मिंश्च सति
शब्दसन्तानो नोपलभ्यते अतः श्रवणानुपपत्तिः । तत्र
प्रतिघातिद्रव्यसंयोगः शब्दस्य निमित्तान्तरं संस्कार-
भूतं निरुणद्धीत्यनुमीयते । तस्य च निरोधाच्छब्द-
सन्तानो नात्यद्यते अनुत्पत्तौ श्रुतिविच्छेदः । यथा प्रति-
घातिद्रव्यसंयोगादिषोः क्रियाहेतौ संस्कारे निरुद्धे गम-
नाभाव इति कल्पसन्तानस्य स्पर्शनेन्द्रियग्राह्यस्य चोप-
रमः कांश्चपात्रादिषु पाणिसंक्षेपो लिङ्गं संस्कारसन्तान-
स्येति, तस्मान्निमित्तान्तरस्य संस्कारभूतस्य नानुपलब्धि-
रिति ॥

सू० विनाशकारणानुपलब्धेश्चावस्थाने तन्नित्यत्व-
प्रसङ्गः ॥ ३८ ॥

भा० यदि यस्य विनाशकारणं नोपलभ्यते तदवतिष्ठते
अवस्थानाच्च तस्य नित्यत्वं प्रसज्यते । एवं यानि खल्विमानि
शब्दश्रवणानि शब्दाभिव्यक्तय इति मतं न तेषां विनाश-
कारणं भवतोपपाद्यते अनुपपादनादनवस्थानमनवस्था-

भा० नात् तेषां नित्यत्वं प्रसज्यत इति । अथ नैवन्तर्हि वि-
नाशकारणानुपलब्धेः शब्दस्यावस्थानान्नित्यत्वमिति । कम्प-
समानाश्रयस्य च नादस्य पाणिप्रक्षेपात् कम्पवत् कारणो-
परमादभावः वैयधिकरण्ये हि प्रतिघातिद्रव्यप्रक्षेपात्
समानाधिकरणस्यैवोपरमः स्यादिति ॥

सू० अस्पर्शत्वादप्रतिषेधः ॥ ३६ ॥

भा० यदिदमाकाशगुणः शब्द इति प्रतिषिध्यते अयमनुप-
पन्नः प्रतिषेधः अस्पर्शत्वाच्छब्दाश्रयस्य रूपादिसमान-
देशस्याग्रहणे शब्दसन्तानोपपत्तेरस्पर्शव्यापिद्रव्याश्रयः शब्द
इति ज्ञायते न च कम्पसमानाश्रय इति प्रतिद्रव्यं
रूपादिभिः सह सन्निविष्टः शब्दसमानदेशो व्यज्यत इति
नोपपद्यते कथम् ॥

सू० विभक्त्यन्तरोपपत्तेश्च समासे ॥ ४० ॥

भा० सन्तानोपपत्तेश्चेति चार्थः, तद्व्याख्यातम् । यदि रूपा-
दयः शब्दाश्च प्रतिद्रव्यं समस्ताः समुदितास्तस्मिन् समा-
से समुदाये यो यथाजातीयकः सन्निविष्टस्तस्य तथाजा-
तीयस्यैव ग्रहणेन भवितव्यं शब्दे रूपादिवत् तत्र चोऽयं
विभाग एकद्रव्ये नानारूपाभिन्नश्रुतयो विधर्माणः शब्दा
अभिव्यज्यमानाः श्रूयन्ते । यच्च विभागान्तरं सरूपाः

भा० समानश्रुतयः सधर्माणः शब्दास्तीव्रमन्दधर्मातया भिन्नाः
 श्रूयन्ते तदुभयं नोपपद्यते नानाभूतानामुत्पद्यमाना-
 नामयं धर्मा नैकस्य व्यज्यमानस्येति । अस्ति चायं विभागे
 विभागान्तरश्च तेन विभागोपपत्तेर्मन्यामहे न प्रतिद्रव्यं
 रूपादिभिः सह शब्दः सन्निविष्टो व्यज्यत इति । द्विवि-
 धस्यायं शब्दो वर्णात्मकोध्वनिमात्रश्च, तत्र वर्णात्मनि
 तावत् ॥

सू० विकारादेशोपदेशात् संशयः ॥ ४१ ॥

भा० दध्यचेति । केचिदिकार इत्वं हित्वा यत्नमापद्यते इति
 विकारं मन्यन्ते । केचिदिकारस्य प्रयोगे विषयकृते यदि-
 कारः स्थानं जहाति तत्र यकारस्य प्रयोगं ब्रुवते । संहि-
 तायां विषये इकारो न प्रयुज्यते तस्य स्थाने यकारः प्र-
 युज्यते स आदेश इति । उभयमिदमुपदिश्यते तत्र न
 ज्ञायते किन्तत्त्वमिति । आदेशोपदेशस्तत्त्वम् । विकारोप-
 देशे ह्यन्वयस्याग्रहणादिकारानुमानम् सत्यन्वये किञ्चिन्नि-
 वर्तते किञ्चिदुपजायत इति शक्येत विकारोऽनुमातुम्, न
 चान्वयो गृह्यते, तस्मादिकारो नास्तीति, भिन्नकरणयोश्च
 वर्णयोरप्रयोगे प्रयोगोपपत्तिः । *विवृत्तकरण इकारः,
 ईषत्स्पृष्टकरणे यकारः । ताविमौ पृथक् करणाख्येन

भा० प्रयत्नेनोच्चारणीयौ तयोरेकस्याप्रयोगे *न्यतरस्य प्रयोग
 उपपन्न इति अविकारे चाविशेषः । यच्चेमाविकारय-
 कारौ न विकारभूतौ यतते यच्छति प्राचंस्त इति ।
 इकार इदमिति च । यच्च च विकारभूतौ इदं व्याहरति
 उभयत्र प्रयोक्तुरविशेषो यत्नः, ओतुश्च श्रुतिरित्यादे-
 शोपपत्तिः । प्रयुज्यमानायहणाच्च न खल्विकारः प्रयु-
 ज्यमानो यकारतामापद्यमानो गृह्यते । किन्तर्हि इकारस्य
 प्रयोगे यकारः प्रयुज्यते तस्मादविकार इति । अविकारे
 च न शब्दान्वाख्यानलोपः । न विक्रियन्ते वर्णा इति नचै-
 तस्मिन् पक्षे शब्दान्वाख्यानस्यामन्भवो येन वर्णविकारं प्र-
 तिपद्येमहीति न खलु वर्णस्य वर्णान्तरं कार्यम् न न्हीका-
 राद्यकार उत्पद्यते यकारादिकारः । पृथक्स्थानप्रय-
 त्नात्पाद्या हीमे वर्णास्तेषामन्योन्यस्य स्थाने प्रयुज्यत इति
 युक्तम् । एतावच्चैतत् परिणामो विकारः स्यात् कार्य-
 कारणभावो वा उभयञ्च नास्ति तस्मान्न सन्ति वर्णविका-
 रा वर्णसमुदायविकारानुपपत्तिवच्च वर्णविकारानुपपत्तिः
 अस्ते भूः ब्रूवो वचिरिति यथा वर्णसमुदायस्य धातुलक्षणस्य
 क्वचिद्विषये वर्णान्तरसमुदायो न परिणामो नाकार्यं श-
 ब्दान्तरस्य स्थाने शब्दान्तरं प्रयुज्यते तथा वर्णस्य वर्णा-
 न्तरमिति †इतश्च न सन्ति वर्णविकाराः ॥

* अन्यस्येति क्वचित् पाठः । † नहीकारो यकार उत्पद्यते यकार
 इकार इति क्वचित् पाठः । ‡ अतस्तेति क्वचित् पाठः ।

सू० प्रकृतिविवृद्धौ विकारविवृद्धेः ॥ ४२ ॥

भा० प्रकृत्यनुविधानं विकारेषु दृष्टम् । यकारे ह्रस्वदी-
र्घानुविधानं नास्ति येन विकारत्वमनुमीयत इति ॥

सू० न्यूनसमाधिकोपलब्धेर्विकाराणामहेतुः ॥ ४३ ॥

भा० द्रव्यविकारा न्यूनाः समा अधिकाश्च गृह्यन्ते तद्वदयं
विकारो न्यूनः स्यादिति द्विविधस्यापि हेतोरभावाद-
साधनं दृष्टान्तः । अत्र नोदाहरणसाधर्म्याद्धेतुरस्ति न
वैधर्म्यात् अनुपसंहृतस्य हेतुना दृष्टान्तो न साधक इति
प्रतिदृष्टान्ते चानियमः प्रसज्येत । यथाऽनडुहस्थानेऽश्वो बोद्धुं
नियुक्तो न तद्विकारो भवति, एवमिवर्णस्य स्थाने यकारः
प्रयुक्तो न विकार इति, न चात्र नियमहेतुरस्ति दृष्टान्तः
साधको न प्रतिदृष्टान्त इति, द्रव्यविकारोदाहरणञ्च ॥

सू० नातुल्यप्रकृतीनां विकारविकल्पात् ॥ ४४ ॥

भा० अतुल्यानां द्रव्याणां प्रकृतिभावो विकल्पते विकारस्य
प्रकृतीरनुविधीयते, न तु इवर्णमनुविधीयते यकारः,
तस्मादनुदाहरणं द्रव्यविकार इति ।

सू० द्रव्यविकारे* वैषम्यवद्वर्णविकारविकल्पः ॥ ४५ ॥

* विकारवैषम्येति क्वचित् पाठः ।

भा० यथा द्रव्यभावेन तुल्यायाः प्रकृते विकारवैषम्यम्, एवं वर्णभावेन तुल्यायाः प्रकृते विकारविकल्प इति ॥

सू० न विकारधर्मानुपपत्तेः ॥ ४६ ॥

भा० अयं विकारधर्मो द्रव्यसामान्ये, यदात्मकं द्रव्यं मृदा सुवर्णं वा तस्यात्मनोऽन्वये पूर्वेण व्यूहो निवर्तते, व्यूहान्तरञ्चोपजायते तं विकारमाचक्षहे । न वर्णसामान्ये कश्चिच्छब्दात्मान्वयी य इत्वं जहाति यत्त्वञ्चापद्यते तत्र यथा सति द्रव्यभावे विकारवैषम्ये नाऽनडुहोऽश्चो विकारो विकारधर्मानुपपत्तेः, एवमिवर्णस्य न यकारो विकारो विकारधर्मानुपपत्तेरिति । इतश्च न सन्ति वर्णविकाराः ॥

सू० विकारप्राप्तानामपुनरावृत्तेः ॥ ४७ ॥

भा० अनुपपन्ना पुनरापत्तिः । कथम् । पुनरापत्तेरननुमानादिति । इकारो यकारत्वमापन्नः पुनरिकारो भवति न पुनरिकारस्य स्थाने यकारस्य प्रयोगोऽप्रयोगश्चेत्यननुमानं नास्ति ॥

सू० सुवर्णादीनां पुनरापत्तेरहेतुः ॥ ४८ ॥

भा० अननुमानादिति न इदं ह्यनुमानम्, सुवर्णं कुण्डलत्वं हिला इत्यकत्वमापद्यते इत्यकत्वं हिला पुनः कुण्डल-

भा० त्वमापद्यते, एवमिकारोऽपि यकारत्वमापन्नः पुनरिकारो
भवतीति व्यभिचारादननुमानम्, यथा पयो दधिभावमा-
पन्नं पुनः पयो भवति किम्, एवं वर्णानां न पुनरा-
पत्तिः । अथ सुवर्णवत्पुनरापत्तिरिति सुवर्णोदाहरणोपप-
त्तिश्च न ॥

सू० तद्विकाराणां सुवर्णभावव्यतिरेकात् ॥ ४६ ॥

भा० अवस्थितं सुवर्णं होयमानेनोपजायमानेन धर्म्येण
धर्म्यं भवति नैवं कश्चिच्छब्दात्मा होयमानेनेत्येवोपजा-
यमानेन यत्नेन धर्म्यं गृह्यते । तस्मात्सुवर्णोदाहरणं
नोपपद्यत इति ।

सू० वर्णत्वाव्यतिरेकाद्वर्णविकाराणामप्रतिषेधः ॥

॥ ५० ॥

भा० वर्णविकारा अपि वर्णत्वं न व्यभिचरन्ति । यथा
सुवर्णविकारः सुवर्णत्वमिति ॥

सू० सामान्यवतो धर्मयोगो न सामान्यस्य ॥ ५१ ॥

भा० कुण्डलरुचकौ सुवर्णस्य धर्मौ न सुवर्णत्वस्य एवमि-
कार्यकारौ कस्य वर्णात्मनो धर्मौ वर्णत्वं सामान्यं न
तस्यैव वर्णो भवितुमर्हतः । न च निवर्त्तमानो धर्म्य
उपजायमानस्य प्रकृतिः । तत्र निवर्त्तमान इकारो न

भा० यकारस्योपजायमानस्य प्रकृतिरिति । इतश्च वर्णविकारा-
नुपपत्तिः ॥

सू० नित्यत्वे विकारादनित्यत्वे चानवस्थानात् ॥
॥ ५२ ॥

भा० नित्या वर्णा इत्येतस्मिन् पक्षे इकारयकारौ वर्णौ
इत्युभयोर्नित्यत्वादिकारानुपपत्तिः । अनित्यत्वे विनाशि-
त्वात्कः कस्य विकार इति । अथानित्या वर्णा इति पक्षः
एवमप्यनवस्थानं वर्णानाम्, किमिदमनवस्थानं वर्णानाम्
उत्पद्य निरोधः । उत्पद्य निरुद्धे इकारे यकार उत्पद्यते
यकारे चोत्पद्य निरुद्धे इकार उत्पद्यते इति कः कस्य
विकारः तदेतदवगृह्य सन्धाने सन्धाय चावग्रहे वेदि-
तव्यमिति । नित्यपक्षे तु तावत्समाधिः ॥

सू० नित्यानामतीन्द्रियत्वात्तद्धर्मविकल्पाच्च वर्ण-
विकाराणामप्रतिषेधः ॥ ५३ ॥

भा० नित्या वर्णा न विक्रियन्त इति विप्रतिषेधः यथा
नित्यत्वे सति किञ्चिदतीन्द्रियं किञ्चिदिन्द्रियग्राह्यमिन्द्रिय-
ग्राह्याश्च वर्णा एवं नित्यत्वे सति किञ्चिन्न विक्रियते वर्णास्तु
विक्रियन्त इति विरोधादहेतुस्तद्धर्मविकल्पः, नित्यं नेत्य-
जायते नापैति अनुपजनापायधर्माकम्, अनित्यं पुनरुप-
जनापाययुक्तम्, न चान्तरेणोपजनापायौ विकारः सम्भ-

भा० वति, तद्यदि वर्णा विक्रियन्ते नित्यत्वमेषां निवर्तते ।
अथ नित्या विकारधर्मत्वमेषां निवर्तते सोऽयं विरुद्धो
हेत्वाभासो धर्मविकल्प इति, अनित्यपक्षे समाधिः ॥

सू० अनवस्थायित्वे च वर्णोपलब्धिवत्तद्विकारो-
पपत्तिः ॥ ५४ ॥

भा० यथाऽनवस्थायिनां वर्णानां अवर्णभवति एवमेषां
विकारो भवतीति असम्बन्धादसमर्था अर्थप्रतिपादिका
वर्णोपलब्धिर्न विकारेण सम्बन्धादसमर्था या गृह्यमाणा
वर्णविकारमनुपपादयेदिति । तत्र यादृगिदं गन्धगुणा
पृथिवी एवं शब्दसुखादिगुणापीति तादृगेतद्भवतीति ।
न च वर्णोपलब्धिर्वर्णनिवृत्तौ वर्णान्तरप्रयोगस्य निवर्त्तिका
योऽयमिवर्णनिवृत्तौ यकारस्य प्रयोगो यद्ययं वर्णोपलब्ध्या
निवर्तते तदा तत्रोपलभमान इवर्णो यत्वमापद्यत इति
गृह्यते । तस्माद्वर्णोपलब्धिरहेतुर्वर्णविकारस्येति ॥

सू० विकारधर्मित्वे नित्यत्वाभावात्कालान्तरे वि-
कारोपपत्तेश्चाप्रतिषेधः ॥ ५५ ॥

भा० तद्वर्णविकल्पादिति न युक्तः प्रतिषेधः, न खलु विकार-
धर्मकं किञ्चित् नित्यमुपलभ्यत इति वर्णोपलब्धिवदिति न
युक्तः प्रतिषेधः, अवयवे हि दधि अत्रेति प्रयुज्य चिरं स्थित्वा
ततः संहितायां प्रयुक्ते दधीत्रेति, चिरनिवृत्ते चायमिवर्णे

भा० चकारः प्रयुज्यमानः कस्य विकार इति प्रतीयते कारणा-
भावात्कार्याभाव इत्यनुयोगः प्रसज्यतइति । इतश्च वर्ण-
विकारानुपपत्तिः ॥

सू० प्रकृत्यनियमाद्वर्णविकाराणाम् ॥ ५६ ॥

भा० इकारस्थाने चकारः श्रूयते चकारस्थाने खल्विकारो
विधीयते, विध्यति, तद्यदि स्यात् प्रकृतिविकारभावो वर्णानां
तस्य प्रकृतिनियमः स्यात् दृष्टो विकारधर्मित्वे प्रकृति-
नियम इति ।

सू० अनियमे नियमान्नानियमः ॥ ५७ ॥

भा० योऽयं प्रकृतेरनियम उक्तः स नियतो यथाविषयं
व्यवस्थितः, नियतत्वान्नियम इति भवति, एवं सत्यनि-
यमो नास्ति तत्र यदुक्तं प्रकृत्यनियमादित्येतदयुक्तमिति ॥

सू० नियमानियमविरोधादनियमे नियमाच्चाप्रति-
षेधः ॥ ५८ ॥

भा० नियम इत्यत्रार्थाभ्यनुज्ञा, अनियम इति तस्य प्रति-
षेधः । अनुज्ञातनिषिद्धयोश्च व्याघातादनर्थान्तरत्वं न
भवति । अनियमश्च नियतत्वान्नियमो न भवतीति ना-
त्रार्थस्य तथाभावः प्रतिषिध्यते किन्तर्हि तथाभूतस्या-
र्थस्य नियमशब्देनाभिधीयमानस्य नियतत्वान्नियमशब्द

भा० एवोपपद्यते सोऽयं नियमादनियमे प्रतिषेधो न भवतीति
न चेयं वर्णविकारोपपत्तिः परिणामात्कार्यकारणभा-
वाद्वा, किन्तर्हि ॥

सू० गुणान्तरापत्त्युपमर्द्दहासद्विलेशश्लेषेभ्यस्तु वि-
कारोपपत्तेर्वर्णविकारः ॥ ५८ ॥

भा० खान्यादेशभावादप्रयोगे प्रयोगो विकारशब्दार्थः, स
भिद्यते गुणान्तरापत्तिः उदात्तस्थानुदात्त इत्येवमादिः ।
उपमर्द्दो नाम एकरूपनिवृत्तौ रूपान्तरोपजनः । द्वाभौ
दीर्घस्य द्विर्ः, वृद्धिर्द्विर्ः दीर्घः, तयोर्वा भुतः । लेशो
लाघवं स्त इत्यस्तेर्विकारः । श्लेष आगमः प्रकृतेः प्रत्ययस्य
वा । एत एव विशेषा विकारा इति । एत एवादेशा-
एते चेदिकारा उपपद्यन्ते तर्हि वर्णविकारा इति ॥

सू० ते विभक्त्यन्ताः पदम् ॥ ६० ॥

भा० यथादर्शनं विहता वर्णा विभक्त्यन्ताः पदसंज्ञा भव-
न्ति । विभक्ति र्द्वयो नामिक्याख्यातिकी च, ब्राह्मणः पच-
तीत्युदाहरणम्, उपसर्गनिपातास्तर्हि न पदसंज्ञाः लच-
णान्तरं वाच्यमिति, श्रियते च खलु नामिक्या विभक्ते-
रव्ययान्नोपः तयोः पदसंज्ञार्थमिति पदेनार्थसम्प्रत्यय
इति प्रयोजनम् नामपदज्ञाधिकृत्य परीक्षा गौरिति पदं
खल्विदमुदाहरणम् ॥

सू० तदर्थं व्यक्ताकृतिजातिसन्निधावुपचारात् सं-
शयः ॥ ६१ ॥

भा० अविनाभाववृत्तिः सन्निधिः अविनाभावेन वर्त्तमा-
नासु व्यक्ताकृतिजातिषु गौरिति प्रयुज्यते तच्च न ज्ञा-
यते किमन्यतमः पदार्थः उत सर्वं इति । शब्दस्य प्रयो-
गसामर्थ्यात्पदार्थावधारणम् तस्मात् ॥

सू० याशब्दसमूहत्यागपरिग्रहसंस्थादृष्ट्युपचयवर्ण-
समासानुबन्धानां व्यक्तावुपचाराद्यक्तिः ॥ ६२ ॥

भा० व्यक्तिः पदार्थः कस्मात् याशब्दप्रभृतीनां व्यक्तावुप-
चारादुपचारः प्रयोगः । या गौस्तिष्ठति या गौर्निषण्णेति
नेदं वाक्यं जातेरभिधायकमभेदात् द्रव्याभिधायकम्, गवां
समूह इति भेदात् द्रव्याभिधानं न जातेरभेदात्, वैद्याय
गां ददातीति द्रव्यस्य त्यागो न जातेरमूर्त्तत्वात् प्रतिक्रमा-
नुक्रमानुपपत्तेश्च, परिग्रहः स्वत्वेनाभिसम्बन्धः, कौण्डिन्यस्य
गौर्ब्राह्मणस्य गौरिति द्रव्याभिधाने द्रव्यभेदात् सम्बन्धभेद
इति उपपन्नमभिन्ना तु जातिरिति, सङ्ख्या दश गावो-
विंशतिर्गाव इति भिन्नं द्रव्यं सङ्ख्यायते न जातिरभेदादिति,
वृद्धिः कारणवतो द्रव्यस्यावयवोपचयः अवर्द्धत गौरिति
निरवयवा तु जातिरिति, श्रुतेनापचयो व्याख्यातः, वर्णः
शुक्ला गौः कपिष्ठा गौरिति द्रव्यस्य गुणयोगो न सामा-

भा० कथं, वस्त्राः गौहितः गोमुच्यमिति द्रव्यं कः कुर्यादित्येतेषां
न जातेरिति । अनुवृत्त्यः स्वरूपप्रजननवृत्त्यामेव गौ
जनयतीति तदुत्पत्तिधर्मत्वाद्वा द्रव्ये युक्तं न जाते विपर्यया-
दिति । द्रव्यं व्यक्तिरिति हि नार्थान्तरम्, अस्य प्रतिषेधः ॥

सू० न तदनवस्थानात् ॥ ६३ ॥

भा० न व्यक्तिः पदार्थः । कस्मादनवस्थानात् यावच्चन्द्रप्रभ-
वतिभिः चैव विपर्ययेन गोमुच्यार्थो या गौमुच्यति वा गौर्नि-
वृत्त्येति न द्रव्यमात्रमविवक्षितं जात्या विनाऽभिधीयते, कि-
न्तुर्हि जातिविवक्षितं, तस्मान्न व्यक्तिः पदार्थः, एवं समूहा-
दिषु द्रव्यम् । यदि न व्यक्तिः पदार्थः कथं तर्हि व्यक्ता-
दुपचार इति । निमित्तादतस्मावेऽपि तदुपचारो दृश्यते

सू० सहचरणस्थानतादर्थ्यवृत्तमानधारणसामीप्य-
पाधिपत्येभ्यो ब्राह्मणमश्वकटराज-
शत्रुचन्दनगङ्गाशाटकान्नपुरुषेष्टतद्भावेऽपि त-
दुपचारः ॥ ६४ ॥

अतस्मादेऽपि तदुपचार इत्येतच्चन्द्रचूतैर्न ब्रह्मेणा-
त्मनिति, सहचरणस्थानतादर्थ्यं योजयेति यद्विभावः
ब्राह्मणेऽभिधीयते इति, स्थानात् सन्धाः योज-

भा०-अतिशयः प्रदत्तः समिधीयते ।

गौरित्युक्तं यत्प्रमाणेषु कङ्करोतीति । इत्तात् यतो राजा
कुवेरोऽपि तददत्तं इति, मानात् आढकेन मितः
प्रभवः आढकप्रभव इति, धारणात् तुलया धृतं चन्दनं
तुल्यचन्दनमिति, सामीप्यात् गङ्गायां नावहरणीति
देवोऽभिधीयते सन्निकटः, योगात् कृष्णेन रागेण युक्तः
*आढकः कृष्ण इत्यभिधीयते, साधनात् अक्षं प्राणा इति ।
आधिपत्यात् अयं पुरुषः कुरुं अयं शोभमिति तत्प्रायं
सहचरणाद्योगाद्वा अतिशब्दो व्यक्तो प्रवृत्त इति यदि
गौरित्यस्य पदस्य न व्यक्तिरेवोऽस्तु तर्हि ॥

सू० आकृतिस्तदपेक्षत्वात् तत्त्वव्यवस्थानसिद्धेः ॥६५॥

भा० आकृतिः पदार्थः कस्मात् तदपेक्षत्वात् सत्त्वव्यवस्थान-
सिद्धेः । सत्त्वावयवानां तदवयवानाञ्च नियतोऽयं आ-
कृतिः तस्यां गृह्यमाणायां सत्त्वव्यवस्थानं सिध्यति अयं
गौरवमय इति नागृह्यमाणायाम् अयं सत्त्वात् सत्त्वव्य-
वस्थानं सिध्यति तं शब्दोऽभिधातुमर्हति सोऽन्वार्थ इति
नेतदुपपद्यते अयं आत्मा योगश्च न जातिविशिष्टस्यभिधी-
यते गौरिति । सत्त्वावयवमयस्य आत्मा योगः, कस्य तर्हि
निष्पत्तावयवमयस्य इत्यर्थः, तस्मात्आकृतिः पदार्थः । अयं
तर्हि जातिः पदार्थः ।

जातिः ॥ ६६ ॥

भा० जातिः पदार्थः, कस्मात्, व्यक्तीकृतियुक्तियुक्तेषु मृद्ववके
प्रोचणादोनामप्रसङ्गादिति । यं प्रोचय नामानय मां दे-
हीति जेतानि मृद्ववके प्रयुज्यन्ते कस्मात् जातेरभावात् ।
असि हि तच्च व्यक्तिरस्यकृतिः यदभावात् तत्रासम्भ-
व्यः स पदार्थ इति ॥

सू० नाकृतियुक्त्यपेक्षावाजात्यभिव्यक्तेः ॥ ६७ ॥

भा० जातेरभिव्यक्तिराकृतियुक्तौ अपेक्षते नापेक्षमाणाया-
माकृतौ व्यक्तौ जातिमात्रं शृङ्खलं मृद्ववके तस्माच्च जातिः
पदार्थ इति । न वै पदार्थेन न भवितुं प्रकृत्यम् कः क्वचि-
दागो पदार्थ इति ॥

सू० व्यक्त्याकृतिजातयस्तु पदार्थः ॥ ६८ ॥

भा० तुल्यो विशेषणार्थः । किं विशिष्यते प्रधानमङ्गभा-
वस्योनिसमेव पदार्थत्वमिति । यदा हि भेदविवक्षा विवे-
कगतिस्तदा व्यक्तिः प्रधानमङ्गानु जात्याकृतौ । यदा तु
भेदोऽविवाचितः सामान्यगतिस्तदा जातिः प्रधानमङ्गानु
व्यक्तीकृतौ स्वीकृते तदेतद्वृत्तं प्रयोगेस्वाकृतेषु* प्रधानभाव
+ उपेक्षितव्यः । कथं पुनर्जायते नापेक्षमाकृतिजातयः
इति लक्षणभेदात् तच्च ज्ञेयम् ॥

* प्रयोगे स्वाकृतेषु इति ज्ञेयम् । उपेक्षितव्य इति ज्ञेयम् ।

४०. जातिरूपनिर्देशादर्थो नूतनः । ४० ।

भा०. अथतरति अतिरिच्ययाद्येति न सर्वे इत्येव अतिः।
 यो गुणविशेषाणां समानानां गुणत्वगुणत्वद्रव्यसंस्था-
 राशामव्यापिनः परिमाणव्यापयो यथासम्भवं तद्रूपम्
 नूतनः नूतनीतावयवत्वादिति ॥

४१. आकृतिर्जातिलिङ्गास्था । ४१ ।

भा०. यथा जातिर्जातिलिङ्गानि च प्रख्यायन्ते तामाकृतिं
 विद्यात्। या च नाना सत्त्वानां तदवयवानाञ्च नियताङ्ग-
 षादिति नियतावयवव्यूहाः सन्तु सत्त्वावयवा जातिलिङ्गं
 चिरवा पादेन गामनुमिष्यन्ति। नियते च सत्त्वावयवानां
 व्यूहे इति गेत्वं प्रख्यायत इति। अनाकृतियज्ज्ञायां जातो
 मृत्युवर्षे रजतमित्येवमादिख्याकृति निवर्तन्ते जहाति पदा-
 र्थत्वमिति ॥

४२. समानप्रसवात्मिका जातिः । ४२ ।

भा०. या समाना बुद्धिं प्रसूते भिन्नेष्वधिकरणेषु यथा बह-
 नीतरैतरती न व्यावर्तन्ते योऽर्थोऽनेकच प्रत्यवानुवृत्ति-
 निमित्तं तत् सामान्यम्। यच्च केषांचिद्भेदं सुतचिद्भेदं
 करोति तत् सामान्यविशेषा जातिरिति ॥ २ ॥

जातिर्वाक्यायनीये व्याचभावे द्वितीयाध्यायस्य द्वितीय-
 भागश्च ॥ * ॥

समानप्रसवात्मिका द्वितीयाध्यायः ॥ २ ॥

भा० प्रतीतिरिति प्रमाणाति, प्रत्येकमिदानीं लोकोत्तरे लोका-
 आशीत्यात्मा विविच्यते । किं देहेन्द्रियमनोबुद्धिवेदेना-
 सङ्गातमात्मा आशेषस्ति न ह्यतिरिक्त इति, कुतः संश-
 यः व्यपदेशस्योभयथासिद्धेः क्रियाकरणयोः कर्त्ता सम्-
 न्यस्याभिधानं व्यपदेशः स द्विविधः अवयवेन समुदायस्य
 मूले दृष्टस्तिष्ठति सन्तः प्रासादोऽप्रियत इति । अन्येनान्यस्य
 व्यपदेशः परशुना दृश्यति प्रदीपेन पश्यति । अस्ति चाद्ये
 व्यपदेशः चक्षुषा पश्यति मनसा विजानाति बुद्ध्या विचार-
 यति शरीरेण सुखदुःखमनुभवतीति तत्र नावधार्यते
 किमवयवेन समुदायस्य देहादिसङ्गातस्य अथान्येनान्यस्य
 तद्व्यतिरिक्तस्य वेति अन्येनायमन्यस्य व्यपदेशः कस्मात् ॥

सू० दर्शनस्पर्शनाभ्यामेकार्थग्रहणात् ॥ १ ॥

भा० दर्शनेन *कस्मिंदर्थो गृह्यतेः स्पर्शनेनापि सोऽर्थो गृ-
 ह्यते यमहमद्राक्षक्षुषा तं स्पर्शनेनापि स्पृशामीति यस्या-
 स्यात्तं स्पर्शनेन तं चक्षुषा पश्यामीति, एकविवक्षाविनो
 प्रत्ययावेककर्त्तकौ प्रतिसन्धीयेते न च सङ्गातकर्त्तकौ ने-
 न्द्रियेणैककर्त्तकौ । तद्योऽसौ चक्षुषा त्वमिन्द्रियेण चैकार्थस्य
 सङ्गृहीता भिन्ननिमित्तावनन्यकर्त्तकौ प्रत्ययो समानवि-
 षयो प्रतिसन्द्धाति सोऽर्थान्तरभूत आत्मा । कथं पुन
 नेन्द्रियेणैककर्त्तकौ इन्द्रियं खलु खं खं विषयग्रहणमन्य-
 कर्त्तकं प्रतिसन्धातुमर्हति नेन्द्रियान्तरस्य विषयान्तर-

* यावदर्थो गृहीत इति क्वचित् वाक्यम् ।

भा० उपपत्तिः । कथं न सङ्गातकर्तृको एकः सङ्गत्वं मिश्र-
 निमित्तौ सङ्गातकर्तृको प्रत्ययौ प्रतिषेधितौ वेदयते न
 सङ्गातः कस्मात् च निवृत्तं हि सङ्गाते प्रत्येकं विषयान्तर-
 यत्तवस्थाप्रतिषम्भानमिन्द्रियान्तरेष्वेवेति ॥

सू० न विषयव्यवस्थानात् ॥ २ ॥

भा० न देशादिसङ्गातादन्यत्वेतनः, कस्मात् विषयव्यव-
 स्थानात् व्यवस्थितविषयाणीन्द्रियाणि चक्षुष्वसति रूपं न
 गृह्यते सति च गृह्यते । यच्च यस्मिन्नसति न भवति
 सति भवति तस्य तदिति विज्ञायते । तस्माद्रूपग्रहणं
 चक्षुषः चक्षु रूपं पश्यति एवं *प्राणादिष्वपीति तानीन्द्रि-
 याणीमानि संस्त्रविषयग्रहणाच्चेतनानि इन्द्रियाणां भावा-
 भावयो विषयग्रहणस्य तथाभावात् एवं सति किमन्येन
 चेतनेन । सन्दिग्धत्वादहेतुः योऽयमिन्द्रियाणां भावाभा-
 वयो विषयग्रहणस्य तथाभावः स किञ्चेतनत्वादाहोस्त्रि-
 चेतनोपकरणानां ग्रहणनिमित्तत्वादिति सन्दिह्यते, चे-
 तनोपकरणत्वेऽपीन्द्रियाणां ग्रहणनिमित्तत्वाद्भवितुमर्हति
 यद्येवं विषयव्यवस्थानादिति ॥

सू० तद्व्यवस्थानादेवात्मसङ्गावादप्रतिषेधः ॥ ३ ॥

भा० यदि सङ्गातमिन्द्रियमव्यवस्थितविषयं सर्वज्ञं सर्ववि-

ज्ञपित् पाठः ।

१ सन्दिग्धत्वादहेतुः सति सति चेति प्रसङ्गः ।

अतः यद्यपि चेतनं स्यात्, कथं नोऽन्यं चेतनमनुमातुं शक्यं
 स्यात्। यस्मात्तु व्यवस्थितविषयाधीन्द्रियाणि तस्मात्तैश्चो-
 ऽन्यचेतनः सर्वज्ञः सर्वविषयग्राही विषयव्यवस्थितितोऽनु-
 मीयते। तत्रेदमभिज्ञानमप्याख्येयं चेतनमनुमातुं शक्यं
 यते रूपदर्शी स्वस्वयं रसं गन्धं वा पूर्वगृहीतमनुमिनोति।
 गन्धप्रतिसंवेदी च रूपरसावनुमिनोति। एवं विषयब्रवेऽपि
 वाच्यम्। रूपं दृष्ट्वा गन्धं जिघ्रति श्राला च गन्धं रूपं
 पश्यति। तदेवमनियतपर्यायं सर्वविषयग्राह्यमेकचेतना-
 धिकरणमन्यकर्वकं प्रतिसन्धत्ते प्रत्यक्षानुमानागमसं-
 ग्रहप्रत्यक्षांश्च नानाविषयान् स्वात्मकर्वकान् प्रतिसन्धाय
 वेदयते सर्वार्थविषयश्च शालं प्रतिपद्यते। अर्थमविषय-
 भूतं श्रोत्रस्य क्रमभाविनो वर्णात् श्रुत्वा पदवाक्यभावं प्रति-
 सन्धाय ब्रह्मार्थव्यवस्थां बुध्यमानोऽनेकविषयमर्थजातय-
 क्षणीयमेकैकेन्द्रियेण गृह्णाति। सेयं सर्वज्ञस्य ज्ञेया व्यव-
 स्थाऽनुपदं न प्रक्या परिक्रमिष्येत्। आद्यतिमात्रमनुदाहृतम्।
 तत्र यदुक्तमिन्द्रियचेतन्ये सति किमन्येन चेतनेन तदयुक्ति-
 भवति। इतश्च देहादिष्वतिरिक्त आत्मा न देहादिष्व-
 ज्ञातमात्रम्॥

सू० शरीरदाहे पातकाभावात् ॥ ४ ॥

भा० शरीरसंयमेन शरीरेन्द्रियबुद्धिवेदनासङ्गात् प्राणिभूतं
 यन्मते प्राणिभूतं शरीरं दहतः प्राणिचिन्मात्रं प्राणं पात-

भा० कनिष्ठकृते तथाभावेः सत्पक्षेन कर्तुरन्तर्भावत्वात् कर्तृत्व-
 सत्त्वत्वात् शरीरेन्द्रियबुद्धिवेदनाप्रवृत्तेः स्वल्पान्यः सङ्घात-
 उत्पत्तयेऽन्यो निरर्थक्ये सत्यादनिरोधसम्पत्तीभूतः प्रव-
 र्त्त्योऽन्यत्वात् बाधते, देहादिसंघातस्यान्यत्वाधिष्ठानत्वात् ।
 अन्यत्वाधिष्ठानो ह्यसौ प्रख्यायत इति एवं सति यो देहादि-
 सङ्घातः प्राप्तिभूतो हिंसां करोति नासौ हिंसापक्षेन सम्-
 बध्यते, यद्य सम्बध्यते न तेन हिंसा कृता, तदेवं सत्त्वभेदे कृत-
 द्वात्मसङ्घाताभ्यागमः प्रसज्यते सति तु सत्त्वोत्पादे सत्त्वनिरोधे
 साकर्मनिमित्तः सत्त्वसर्मः प्राप्नोति । तच्च मुक्त्यर्थं ब्रह्मचर्य-
 भासो न स्यात् । तद्यदि देहादिसंघातमात्रं स्यात् शरीर-
 दाहे पातकं न भवेत् अनिष्टस्यैतत् तस्मादेहादिसङ्घात-
 व्यतिरिक्त आत्मा जित्य इति ॥

सू० तदभावः सात्मकप्रदाहेऽपि तन्नित्यत्वात् ॥ ५ ॥

भा० यस्यापि नित्येनात्मना सात्मकं शरीरं दह्यते तस्यापि
 शरीरदाहे पातकं न भवेद्दग्धः, कस्मात् नित्यत्वादात्मनः
 न जातु कश्चिन्नित्यं हिंसितुमर्हति अथ हिंस्यते नित्यत्व-
 मस्य न भवति, सेयमेकस्मिन् पक्षे हिंसा निष्कला अन्यस्मि-
 न्पक्षेति ॥

सू० न कार्याश्रयकर्तृवधात् ॥ ६ ॥

भा० न सूत्रे नित्यस्य सत्त्वस्य यथो हिंसा, अपित्तनुष्ण-
 तिधर्मस्य सत्त्वस्य शरीरस्य यथो हिंसा अपि यथोपपत्त्यर्थे

भा० कर्तृत्वमुपधातः पीडा वैकल्यलक्षणः प्रबन्धाच्छेदो वा प्रमा-
पणलक्षणो वा बधो हिंसेति, कार्यन्तु सुखदुःखसंवेदनं त-
स्याद्यतनमधिष्ठानमाश्रयः शरीरम् । कार्याश्रयस्य शरीरस्य
स्वविषयोपलब्धेः कर्तृणामिन्द्रियाणां बधो हिंसा न नि-
त्यस्यात्मनः । तत्र यदुक्तं तदभावः सात्मकप्रदाहेपि तन्नि-
त्यत्वादित्येतदयुक्तम् । यस्य सत्त्वाच्छेदो हिंसा तस्य हत-
हानमकृताभ्यागमस्य दोषः । एतावच्चैतत् स्यात् । सत्त्वा-
च्छेदो वा हिंसा अनुष्किन्तिधर्मकस्य सत्त्वस्य कार्याश्रय
कर्तृबधो वा न कल्पान्तरमन्यदस्ति सत्त्वाच्छेदस्य प्रतिषि-
द्धः तत्र किमन्यच्छेषं यथाभूतमिति । अथवा कार्याश्रय
कर्तृबधादिति कार्याश्रयो देहेन्द्रियबुद्धिसङ्घातो नित्य-
स्यात्मनस्तत्र सुखदुःखप्रतिसम्बेदनं तस्याधिष्ठानमाश्रय
स्तदाद्यतनं तद्भवति न ततोऽन्यदिति स एव कर्ता तन्नि-
मिन्नादि सुखदुःखसम्बेदनस्य निर्हृतिः न तमन्तरे-
णेति तस्य बध उपधातः पीडा प्रमापणं वा हिंसा
न नित्यत्वेनात्माच्छेदः । तत्र यदुक्तं तदभावः सात्मक-
प्रदाहेपि तन्नित्यत्वादेतन्नेति । इतस्तु देवादिव्यतिरिक्त
आत्मा ॥

सू० सव्यदृष्टस्येतरेण प्रत्यभिज्ञानात् ॥ ७ ॥

भा० पूर्वापरयोर्विज्ञानयोरैकविषये प्रतिसम्भिज्ञानं प्रत्यक्ष-
भिज्ञानम् । तमेवेति हि पश्चात्तु यमज्ञासिषं स एवावमर्श

भा० इति। चक्षुषः चक्षुषा * दृष्टमयेतरेणापि चक्षुषा प्रत्यभिज्ञा-
नात्। यमद्राक्षं तमेवेति पश्यामीति। इन्द्रियचैतन्ये तु-
नान्यदृष्टव्यः प्रत्यभिजानातीति प्रत्यभिज्ञानुपपत्तिः
अस्ति। त्विदं प्रत्यभिज्ञानं तस्मादिन्द्रियव्यतिरिक्तचेतनः ॥

सू० नैकस्मिन्नासास्थिव्यवहिते द्वित्वाभिमानात् ॥
॥ ८ ॥

भा० एकमिदं चक्षुषां नसास्थिव्यवहितं तस्मान्नौ दृष्ट-
माशौ द्वित्वाभिमानं प्रयोजयतः मध्यव्यवहितस्य दीर्घ-
स्येव ॥

सू० एकविनाशे द्वितीयाविनाशनैकत्वम् ॥ ९ ॥

भा० एकस्मिन्नुपहते चोद्धृते वा चक्षुषि द्वितीयमवतिष्ठते
चक्षुर्विषयवृत्तिलङ्घम् तस्मादेकस्य व्यवधानानुपपत्तिः ॥

सू० अवयवनाशेऽप्यवयव्युपलब्धेरहेतुः ॥ १० ॥

भा० एकविनाशे द्वितीयाविनाशादित्यहेतुः कस्मात् दृष्टस्य
वि कासुनिष्ठायास्तु द्विक्कासुपलभ्यत एव दृष्टः ॥

* दृष्टमयेतरेणापीति अचित् पाठः।

† अस्ति इति अचित् पाठः।

सू० दृष्टान्तविरोधादप्रक्षिपेधः ॥ ११ ॥

भा० न कारणद्रव्यस्य विभागे कार्यद्रव्यमवतिष्ठते नि-
त्यप्रसङ्गात् वज्रस्यवयवेषु यस्य कारणानि विभक्तानि
तस्य विनाशः । येषां कारणान्यविभक्तानि तान्यवतिष्ठन्ते
अथवा दृश्यमानार्थविरोधो दृष्टान्तविरोधः मृतस्य हि
शिरःकपाले दाववटौ नासास्थिव्यवहितौ चक्षुषः स्थाने
भेदेन गृह्यते न चैतदेकस्मिन्नासास्थिव्यवहिते सम्भवति
अथैकविनाशस्थानियमाद्वाविमावर्थौ तौ च पृथगाव-
रणोपघातौ अनुमीयेते विभिन्नाविति, अवपीडनाच्चैकस्य
चक्षुषोरग्निविषयसन्निकर्षस्य भेदाद् दृश्यभेद इव गृह्यते
तच्चैकत्वे विरुध्यते, अवपीडननिवृत्तौ चाभिन्नप्रतिसम्भा-
नमिति तस्मादेकस्य व्यवधानानुपपत्तिः अनुमीयते चायं
देशादिगङ्गातथ्यतिरिक्तस्येत्यन इति ॥

सू० इन्द्रियान्तर विकारात् ॥ १२ ॥

भा० कस्य चिदस्त्वफलस्य गृहीतसाहचर्यं रूपे गन्धे वा केन-
चिदिन्द्रियेण गृह्यमाणे रसनस्येन्द्रियान्तरस्य विकारः
रसानुस्यूतौ रसगर्भिप्रवर्त्तितोदकोदकसंभवभूतौ गृह्यते
तस्येन्द्रियचैतन्येऽनुपपत्तिः, नान्यदृष्टमन्यः स्मरति ॥

सू० न स्मृतेः स्मर्तव्यविषयत्वात् ॥ १३ ॥

भा० सतिर्नाम धर्मो निमित्तादुपपद्यते तस्याः सत्तन्वो-
विषयः तत्कृत इन्द्रियान्तरविकारो नात्मकत इति ॥

सू० तदात्मगुणसङ्गावादप्रतिषेधः ॥ १४ ॥

भा० तस्या आत्मगुणत्वे सति सङ्गावादप्रतिषेध आत्मनः
यदि सतिरात्मगुणः एवं सति सतिरूपपद्यते नान्यदृष्ट-
मन्यः स्मरतीति, इन्द्रियचेतन्ये तु नानाकर्तृकाणां विषय-
ग्रहणानामप्रतिसन्धानम् । प्रतिसन्धाने वा विषयव्यव-
स्थानुपपत्तिः, एकस्य चेतनोऽनेकार्थदर्शी भिन्ननिमित्तः
पूर्वदृष्टमर्थं स्मरतीति एकस्थानेकार्थदर्शिनो दर्शनप्रति-
सन्धानात् सतिरात्मगुणत्वे सति सङ्गावः विपर्यये चानु-
पपत्तिः । सत्याश्रयाः प्राणभृतां सर्वे व्यवहाराः आत्म-
स्मिन्मुदाहरणमात्रमिन्द्रियान्तरविकार इति ॥

सू० अपरिसङ्ख्यानस्य स्मृतिविषयस्य ॥ १५ ॥

भा० अपरिसङ्ख्याय च स्मृतिविषयमिदमुच्यते न सत्तेः
सत्तन्वविषयत्वादिति धेयं सतिरगृह्यमाणेऽर्थे अज्ञावि-
षमहममुमर्थमिति । एतस्या ज्ञातज्ञानविशिष्टः पूर्वज्ञा-
तार्थविषयो नार्थमात्रम् ज्ञातवानहममुमर्थमसावर्थो मया
ज्ञातः ज्ञातमस्मिन्नर्थे मम ज्ञानमभूदिति चतुर्विधमे-
तद्वक्तव्यं स्मृतिविषयज्ञापकं समानार्थम् सर्वत्र सत्तु ज्ञा-

भा० ना ज्ञानं ज्ञेयं च गृह्यते अथ प्रत्यक्षेऽर्थे वा सति स्वय-
 मीणि ज्ञानान्येकस्मिन्नर्थे प्रतिसन्धीयन्ते समानकर्तृकाणि
 न नानाकर्तृकाणि नाकर्तृकाणि. किन्तुर्लोककर्तृकाणि
 अद्राक्षममुमर्थं यमेवैतर्हि पश्यामि अद्राक्षमिति दर्शनं
 दर्शनसम्बन्ध, न खल्वसम्बिदिते स्वे दर्शने स्यादेतदद्राक्ष-
 मिति, ते खल्वेते दे ज्ञाने यमेवैतर्हि पश्यामीति तृतीयं ज्ञा-
 नमेवमेकोऽर्थस्त्रिभिर्ज्ञानै र्युज्यमानो नाकर्तृको न नाना-
 कर्तृकः किन्तुर्लोककर्तृक इति, सोऽयं सतिविषयोऽपरि-
 सङ्गायमानो विद्यमानः प्रज्ञातार्थः प्रतिषिध्यते नाख्या-
 त्मा सतिः सत्तव्यविषयत्वादिति न चेदं सतिमात्रं सत्त-
 व्यमात्रविषयं वा इदं खलु ज्ञानप्रतिसन्धानवत् सतिप्रति-
 सन्धानमेकस्य सर्वविषयत्वात् एकोऽयं ज्ञाता सर्वविषयः
 ज्ञानि ज्ञानानि प्रतिसन्धत्ते अमुमर्थं ज्ञात्याम्यमुमर्थं वि-
 जानास्यमुमर्थमज्ञासिषममुमर्थं जिज्ञासमानश्चिरमज्ञात्वा-
 ऽध्यवस्यत्यज्ञासिषमिति एवं सतिमपि त्रिकालविशिष्टां
 सुसुपूर्वाविशिष्टाञ्च प्रतिसन्धत्ते संस्कारसन्ततिमात्रेण सत्वे
 उत्पद्योत्पद्य संस्कारास्तिरोभवन्ति स नास्त्येकोपि संस्का-
 रोयस्त्रिकालविशिष्टं ज्ञानं सतिज्ञानुभवेत् । न चा-
 नुभवमन्तरेण ज्ञानस्य सतिश्च प्रतिसन्धानमहं ममेति
 चोत्पद्यते देहान्तरवत् अतोऽनुमीयते अस्येकः सर्वविषयः
 प्रतिदेहं सज्ज्ञानप्रबन्धं सतिप्रबन्धञ्च प्रतिसन्धत्ते इति
 यस्य देहान्तरेषु दृक्तेरभावात् प्रतिसन्धानं भवतीति ॥

सू० नात्मप्रतिपत्तिहेतूनां मनसि सम्भवात् ॥ १६ ॥

भा० न देहादिसङ्घातव्यतिरिक्त आत्मा कस्मात् आत्मप्र-
तिपत्तिहेतूनां मनसि सम्भवात् । दर्शनस्य दर्शनाभ्यामेकार्थ-
यदृष्ट्यादित्येवमादीनामात्मप्रतिपादकानां हेतूनां मन-
सि सम्भवो यतः मनो हि सर्व्वविषयमिति तस्मान्न शरीरे-
न्द्रियमनोबुद्धिसङ्घातव्यतिरिक्त आत्मेति ॥

सू० ज्ञातुर्ज्ञानसाधनोपपत्तेः संज्ञाभेदमात्रम् ॥ १७ ॥

भा० ज्ञातुः खलु ज्ञानसाधनान्युपपद्यन्ते चतुषा पश्यति
प्राप्तेन जिघ्रति स्पर्शनेन स्पृशति एवमन्तुः सर्व्वविषयस्य
मत्तिसाधनमन्तःकरणभूतं सर्व्वविषयं विद्यते चेनायं
मन्यत इति । एवं सति ज्ञातव्यात्मसंज्ञा न नृष्यते मनः
संज्ञाऽभ्यनुज्ञायते मनसि च मनःसंज्ञा न नृष्यते मत्तिसा-
धनं त्वभ्यनुज्ञायते तदिदं संज्ञाभेदमात्रं नार्थे विवाद इति
प्रत्याख्याने वा सर्व्वेन्द्रियविलोपप्रसङ्गः अथ मन्तुः सर्व्व-
विषयस्य मत्तिसाधनं सर्व्वविषयं प्रत्याख्यायते नास्तीति ।
एवं रूपादिविषययदृष्टसाधनान्यपि न सन्तीति सर्व्वे-
न्द्रियविलोपः प्रसज्यत इति ॥

सू० नियमश्च निरनुमानः ॥ १८ ॥

भा० योचं नियम इत्यनेन रूपादियदृष्टसाधनान्यस्य स-

भा० न्ति मतिसाधनं सर्वविषयं नास्तीति, चयं निरनुमायोऽ-
नामानुमानमस्ति येन नियमं प्रतिपद्यामह इति । रूपा-
दिभ्यश्च विषयान्तरं सुखादयस्कदुपलब्धौ करणान्तरं
सङ्गावः, यथा चक्षुषा गन्धो न गृह्यत इति करणान्तरं
घ्राणम्, एवञ्चक्षुर्घ्राणाभ्यां रसो न गृह्यत इति करणा-
न्तरं रसनम् एवं शेषेषु तथा चक्षुरादिभिः सुखादयो
न गृह्यन्त इति करणान्तरेण भवितव्यम् तच्च ज्ञाना-
द्योगपक्षलिङ्गम् । यच्च सुखाद्युपलब्धौ करणं तच्च ज्ञाना-
द्योगपक्षलिङ्गम् तस्येन्द्रियमिन्द्रियं प्रति मन्निधेरसन्नि-
धेर्न युगपज्ज्ञानान्युत्पद्यन्ते तच्च यदुक्तमात्मप्रतिपत्तिहे-
तूनां मनसि संभवादिति तदयुक्तम् किं पुनरयं देशा-
दिसङ्गातादन्योनित्य उत्तानित्य इति कुतः संशयः उभ-
यथा दृष्टत्वात् संशयः । विद्यमानमुभयथा भवति नित्य-
मनित्यञ्च प्रतिपादिते चात्मसङ्गावे संशयानिवृत्तेरिति
आत्मसङ्गावे हेतुभिरेवाह्य प्राग्देहभेदादवस्थानं सिद्धम्
ऊर्द्धमपि देहभेदादवतिष्ठते कुतः ॥

सू० पूर्वाभ्यस्तस्मृत्यनुबन्धात् जातस्य हर्षभयशोक-
सम्प्रतिपत्तेः ॥ १८ ॥

भा० जातः खल्वयं कुमारकोऽस्मिन् जन्मन्यगृहीतेषु हर्ष-
भयशोकहेतुषु हर्षभयशोकान् प्रतिपद्यते लिङ्गानुमेवान्
ते च स्मृत्यनुबन्धादुत्पद्यन्ते नान्यथा स्मृत्यनुबन्धश्च पूर्वाभ्यां

भा० समन्तरेण न भवति पूर्वाभासश्च पूर्वजननि सति नाभ्ये-
ति सिद्ध्यत्येतत्, अवतिष्ठते ऽयमूहं प्ररोरभेदादिति ॥

सू० पद्मादिषु प्रबोधसंमीलनविकारवत्तद्विकारः ॥
॥ २० ॥

भा० यथा पद्मादिस्वनित्येषु प्रबोधसंमीलनं विकारो भव-
ति एवमनित्यस्यात्मनो हर्षभयशोकसम्प्रतिपत्तिर्विकारः-
स्यात् हेतुभावादयुक्तम् अनेन हेतुना पद्मादिषु प्रबोध-
संमीलनविकारवदनित्यस्यात्मनो हर्षादिसम्प्रतिपत्तिरिति,
नात्रोदाहरणसाधर्म्यात् साध्यसाधनहेतु न वैधर्म्यादस्ति
हेतुभावादसंबद्धार्यकमपार्थक्यमुच्यते इति । दृष्टान्ताच्च
हर्षादिनिमित्तस्थानिवृत्तिः या चेयमासेवितेषु विषयेषु
हर्षादिसम्प्रतिपत्तिः स्यादनुवन्धकता प्रत्यात्मं गृह्यते
संयं पद्मादिसंमीलनदृष्टान्तेन न निवर्तते यथा संयं न
निवर्तते तथा जातस्यापीति, क्रियाजातश्च पर्णविभागः
संयोगप्रबोधः,* संमीलने क्रियाहेतुस्यानुमेयः । एवञ्च
सति किं दृष्टान्तेन प्रतिषिद्ध्यते । अथ निर्निमित्तः पद्मा-
दिषु प्रबोधसंमीलनविकार इति मतम् एवमात्मनोऽपि
हर्षादिसम्प्रतिपत्तिरिति तच्च ॥

सू० नोष्णशीतवर्षाकाशनिमित्तत्वाम् पञ्चात्मकवि-
काराणाम् ॥ २१ ॥

* पर्णविभाग संयोगो प्रबोध संमीलने इति पाठः साधु ।

भा० उच्यते । अतः भावात् असत्त्वभावात् तन्निमित्तः ।
पञ्चभूतानुपपत्तेः निवृत्तानां पद्मादीनां प्रवेधधर्मिणाम्
विकारा निमित्ताद्भवितुमर्हन्ति न निमित्तमन्तरेण, न-
चान्यत् पूर्वाभ्यस्तस्य नुवन्धाश्चिन्तितमस्तीति । नचोत्प-
त्तिनिरोधकारणानुमानमात्मनो दृष्टान्तात् न हर्षादीनां
निमित्तमन्तरोपोत्यन्तिः नाष्णादिवश्चिन्तितान्तरोपा-
दानं हर्षादीनां तस्माद्युक्तमेतत् इतश्च नित्यमात्मा ॥

सू० प्रेत्याहाराभ्यासकृतात् स्तन्याभिल्लाषात् ॥ २२ ॥

भा० जातमात्रस्य वत्सस्य प्रवृत्तिलिङ्गः स्तन्याभिल्लाषो गृ-
ह्यते सच नान्तरेणाहाराभ्यासम् । कथा युक्ता, दृश्यते
हि शरीरिणां सुधापीद्यमानानामाहाराभ्यासकृतात्
स्मरणानुवन्धादाहारैर्भिल्लाषः, न च पूर्वशरीरमन्तरे-
णासौ जातमात्रस्योपपद्यते, तेनानुमीयते भूतपूर्वं शरीरं
यच्चाग्नेनाहारोभ्यस्त इति । स खल्वयमात्मा पूर्वशरीरात्
प्रेत्य शरीरान्तरमापन्नः सुत्योद्धितः पूर्वाभ्यस्तमाहारम-
नुस्मरन् स्तन्यमभिलषति तस्मान्नदेहभेदादात्मा भिद्यते
भवत्येवोर्द्धं देहभेदादिति ॥

सू० अयसोऽयस्कान्ताभिगमनवत्तदुपसर्पणम् ॥ २३ ॥

भा० यथा खलु अयोऽभ्यासमन्तरेणाप्यक्तान्तामुपसर्पति, ऐक-

भा० भावाराभासमन्तरेण वाचः सन्त्यमभिलाषति किमिदं
मयसोऽयस्कान्ताभिसर्पणं निर्निमित्तमयनिमित्तादिति
निर्निमित्तत्वावत् ॥

सू० नान्यत्र प्रवृत्त्यभावात् ॥२४॥

भा० यदि निर्निमित्तं लोष्टादयोऽयस्कान्तामुपसर्पेद्यु न जा-
तु नियमे कारणमस्तीति अथ निमित्तात् तत्केनोपसृज्यते
इति क्रियालिङ्गः क्रियाहेतुः क्रियानियमलिङ्गश्च क्रि-
याहेतुनियमः तेनान्यत्र प्रवृत्त्यभावः वाच्यस्यापि नियतमु-
पसर्पणं क्रियोपसृज्यते न च सन्त्याभिलाषलिङ्गमन्यदाहा-
राभासकृतात् स्मरणानुवन्धात् । निमित्तं दृष्टान्तेनो-
पपाद्यते न चासति निमित्ते कस्य चिदुत्पत्तिः, न च
दृष्टान्तो दृष्टमभिलाषहेतुं बाधते, तस्मादयसोऽयस्कान्ता-
भिगमनमदृष्टान्त इति, अयसः खल्वपि नान्यत्र प्रवृत्ति-
र्भवति न आलस्यो लोष्टमुपसर्पति किं कृतोऽनियम इति
यदि कारणनियमाः सर्व्यक्रियानियमलिङ्गः एवं वा-
च्यस्यापि नियतविषयोऽभिलाषः कारणनियमाद्भवितु-
मर्हति तच्च कारणमभ्यस्तस्मिन् कारणमन्यदेति दृष्टेन विनि-
श्च्यते दृष्टेहि शरीरिणामभ्यस्तस्मिन् कारणदाहाराभिलाष-
इति । इत्यस्य नित्यं आत्मा कस्मात् ॥

सू० धीतरागजन्मादर्शनात् ॥ २५ ॥

भा० स रागो जायते इत्यर्थादापद्यते अयं जायमानो रागो-
नुबद्धो जायते रागस्य पूर्वानुभूतविषयानुचिन्तनं योनिः
पूर्वानुभवस्य विषयाणामन्यस्मिन् जन्मनि शरीरमन्तरेण
नोपपद्यते, सोऽयमात्मा पूर्वशरीरानुभूतान् विषयाननु-
स्मरन् तेषु तेषु रज्यते तथा चायं द्वयोर्जन्मनोः प्रति-
सन्धिः, एवं पूर्वशरीरस्य पूर्वतरेण पूर्वतरस्य पूर्वतमेने-
त्यादिना ऽनादिस्थितस्य शरीरयोगः अनादिश्च रागा-
नुबन्ध इति सिद्धं नित्यत्वमिति । कथं पुनर्जायते पूर्व-
विषयानुचिन्तनजनितो जातस्य रागो न पुनः ॥

सू० सगुणद्रव्योत्पत्तिवत्तदुत्पत्तिः ॥ २६ ॥

भा० यथोत्पत्तिधर्मकस्य द्रव्यस्य गुणाः कारणत उत्प-
द्यन्ते तथोत्पत्तिधर्मकस्यात्मनो रागः कुतश्चिदुत्पद्यते,
अचायमुदितानुवादेनिदर्शनार्थः ॥

सू० न सङ्कल्पनिमित्तत्वाद्रागादीनाम् ॥ २७ ॥

भा० न खलु सगुणद्रव्योत्पत्तिवदुत्पत्तिरात्मनो रागस्य च,
कस्मात् सङ्कल्पनिमित्तत्वाद्रागादीनाम् । अयं खलु प्राणि-
नां विषयानुभवेवमानां सङ्कल्पजनितो रागो मय्येव

भा० सङ्कल्पस्य पूर्वानुभूतविषयानुचिन्तनयोगिः, तेनानुमीयते
जातस्यापि पूर्वानुभूतार्थचिन्तनकृतो राग इति । आत्मोत्पा-
दव्यधिकरणान्तु रागोत्पत्तिर्भवन्ती सङ्कल्पादन्यस्मिन् रा-
गकारणे सति वाच्या कार्यद्रव्यगुणवत् न आत्मोत्पादः
किञ्चो जापि सङ्कल्पादन्यद्रागकारणमस्ति । तस्मादयुक्तं
सङ्कल्पद्रव्योत्पत्तिवत्तयोदत्यत्तिरिति, अथापि सङ्कल्पा-
दन्यद्रागकारणं धर्माधर्मलक्षणमदृष्टमुपादीयते तथापि
पूर्वशरीरयोगो ऽप्रत्याख्येयः । तत्र हि तस्य *निर्दृष्टिः ना-
स्मिन् जन्मनि तन्मयत्वाद्वाग इति विषयाभ्यासः खल्वयं
भावनाहेतुः तन्मयत्वमुच्यत इति जातिविशेषाच्च राग-
विशेष इति, कर्म खल्विदं जातिविशेषनिवर्त्तकम् ताद-
र्यान्ताच्छब्दं विज्ञायते, तस्मादनुपपन्नं सङ्कल्पादन्यद्राग-
कारणमिति, अनादिचेतनस्य शरीरयोग इत्युक्तं, खल्वत-
कर्मनिमित्तं चास्य शरीरं सुखदुःखाधिष्ठानं तत् परी-
क्ष्यते किङ्कणादिवदेकप्रकृतिकम् उत नानाप्रकृतो[†]ति,
कुतः संशयः, विप्रतिपत्तेः संशयः, पृथिव्यादीनि भूतानि
सङ्ख्याविकल्पेन शरीरप्रकृतिरिति प्रतिजानत इति कि-
न्नात्र तत्त्वम् ॥

सू० पार्थिवं गुणान्तरोपलब्धेः ॥ २८ ॥

भा० तत्र मानुषं शरीरं पार्थिवम् । कस्मात् गुणान्तरोप-

भा० स्वप्नेः गन्धवती पृथिवी गन्धवच्छरीरम् अवादीनामगन्ध-
त्वात् तत् प्रकृत्यगन्धत्वात् न त्विदमवादिभिरसंज्ञक्या
पृथिव्यारम्भं चेहेन्द्रियार्थाश्रयभावेन कल्पत इत्यतः पञ्चानां
भूतानां संयोगे सति शरीरं भवति भूतसंयोगोहि मिथः
पञ्चानां न निषिद्ध इति, आप्यतैजसवायव्यानि लोकात्तरै-
शरीराणि, तेऽपि भूतसंयोगः पुरुषार्थतन्त्र इति स्थाव्यादि-
द्रव्यनिष्पत्तावपि निःसंशयोक्तावादि संयोगमन्तरेण निष्प-
त्तिरिति । पार्थिवायतैजसं तद्गुणोपलब्धेः, निश्वासेच्छासेप-
लब्धेऽतुर्भातिकम्, गन्धक्लेदपाकव्यूहावकाशदानेभ्यः पा-
श्चभातिकम्, त इमे सन्दिग्धा हेतव इत्युपेक्षितवान् सूत्र-
कारः, कथं सन्दिग्धाः सति च प्रकृतिभावे भूतानां धर्मो-
पलब्धिरसति च संयोगाप्रतिषेधात् सन्निहितानामिति ।
यथा स्थाव्यामुदकतेजोवाय्वाकाशानामिति तदिदमनेक-
भूतप्रकृति शरीरमगन्धमरश्मिरूपमस्यज्ञं च प्रकृत्यनुविधा-
नात् स्थात् न त्विदमित्यंभूतम् तस्मात् पार्थिवं गुणान्त-
रोपलब्धेः ॥

सू० श्रुतिप्रामाण्याच्च ॥ २६ ॥

भा० सूर्यन्ते चक्षुर्गच्छतादित्यश्च मन्त्रे पृथिवीन्ते शरीरमिति
श्रूयते तदिदं प्रकृतौ विकारस्य प्रलम्बाभिधानमिति सू-
र्यं ते चक्षुः स्पर्शोमीत्यश्च मन्त्रान्तरे पृथिवीन्ते शरीर-

मिति सूचने सेवं कारकादिकारक व्यतिरिक्तीत्यत इति-
 साक्षादिवु च तुल्यजातीयानामेककार्यारम्भदर्शना-
 द्विजजातीयानामेककार्यारम्भानुपपत्तिः । अद्येदानीमि-
 न्द्रियाणि प्रमेयक्रमेण विचार्यन्ते किमाव्यक्तिकान्याहो
 स्विज्ञातिकानीति कुतः संशयः ॥

सू० दृष्टान्तसारे सत्युपलम्भाद्यतिरिच्य चोपलम्भात्
 संशयः ॥ ३० ॥

भा० दृष्टान्तसारभौतिकं तस्मिन्ननुपपत्तेरूपोपलब्धिः उपह-
 ते चानुपलब्धिरिति व्यतिरिच्य दृष्टान्तसारमवस्थितस्य विष-
 यस्योपलम्भो न दृष्टान्तसारप्राप्तस्य, न चाप्राप्तकारित्वमि-
 न्द्रियाणाम् तदिदमभौतिकत्वे विभुत्वात् सम्भवति, एव
 मुभयधर्मोपलब्धेः संशयः, अभौतिकानि इत्याह कस्मात् ॥

सू० महदणुग्रहणात् ॥ ३१ ॥

भा० महदिति महत्तरं महत्तमं चोपलभ्यते यथा न्ययोध-
 पर्वतादि, अणित्यणुतरमणुतमस्य ग्रह्यते न्ययोधधानादि,
 तदुभयमुपलभ्यमानं चणुषो भौतिकत्वं बाधते भौतिकं हि
 यावत्तावदेव व्याप्नोति अभौतिकन्तु विभुत्वात् सर्वव्यापक-
 मिति न महदणुग्रहणमात्राद्भौतिकत्वं विभुत्वमिन्द्रिया-
 णां ग्रहणं प्रतिपत्तुम् इदं शङ्कम् ॥

सू० रश्म्यर्थसन्निकर्षविशेषात् तद्ग्रहणम् ॥ ३२ ॥

भा० तद्योर्महदणोर्यहणं चतुरश्रेरर्थस्य च सन्निकर्षविशेषा-
ज्जवति यथा प्रदीपरश्मिरर्थस्य चेति रश्म्यर्थं सन्निकर्षसा-
वरणलिङ्गः, चाक्षुषो हि रश्मिः कुड्यादिभिरावृतमर्थं न
प्रकाशयति यथा प्रदीपरश्मिरिति आवरणानुमेयत्वे सती-
दमाह ॥

सू० तदनुपलब्धेरहेतुः ॥ ३३ ॥

भा० रूपस्यैव तद्भि तेजो महत्वाद्नेकद्रव्यवत्त्वाच्चोपलब्धिरि-
ति प्रदीपवत् प्रत्यक्षत उपलभ्येत चक्षुषोरश्मिर्यदिस्था-
दिति ॥

सू० नानुमीयमानस्य प्रत्यक्षतोऽनुपलब्धिरभावहे-
तुः ॥ ३४ ॥

भा० सन्निकर्षप्रतिषेधार्थेनावरणेन लिङ्गेनानुमीयमानस्य
रश्मे र्या प्रत्यक्षतोऽनुपलब्धिर्नासावभावं प्रतिपादयति ।
यथा चन्द्रमसः परभागस्य पृथिव्यासाधोभागस्य ॥

सू० द्रव्यगुणधर्मभेदाच्चोपलब्धिः नियमः ॥ ३५ ॥

भा० भिन्नः खल्वयं द्रव्यधर्मो गुणधर्मस्य महद्नेकद्रव्य-
वत्त्वविषयत्वावयवभावेन द्रव्यं प्रत्यक्षतोऽनुपलभ्यते सार्धं च

* विभक्तावयवमिति कश्चित् पाठः ।

† चोपलब्ध्यनियम इति दक्षिणारसम्मतः पाठः ।

प्रोतोऽप्युच्यते तस्य द्रव्यस्यानुबन्धात् हेमन्तमिश्रितोऽप्यु-
च्यते । तथाविधमेव च तेजसं द्रव्यमनुद्भूतरूपं स च रू-
पेण नोपलभ्यते स्पर्शस्त्वस्योष्ण उपलभ्यते तस्य द्रव्यस्यानु-
बन्धात् घीश्ववसन्तौ कश्च्येते यत्र तेषां भवति ॥

सू० अनेकद्रव्यसमवायाद्रूपविशेषाच्च रूपोपलब्धिः ॥
॥ ३६ ॥

भा० यत्र रूपञ्च द्रव्यञ्च तदाश्रयः प्रत्यक्षत उपलभ्यते रूप-
विशेषस्तु यद्भावात् कश्चिद्रूपोपलब्धिः यद्भावाच्च द्रव्यस्य
कश्चिदनूपलब्धिः स रूपधर्मोऽयमुद्भवममाख्यात इति, अनु-
द्भूतरूपस्यायं नायनो रश्मिः, तस्मात्प्रत्यक्षतो नोपलभ्यत
इति दृष्टञ्च तेजसोधर्मभेदः उद्भूतरूपस्पर्शमप्यत्यक्षं तेजो
यथादित्परश्मयः, उद्भूतरूपमनुद्भूतस्पर्शञ्च प्रत्यक्षम् यथा
प्रदीपरश्मयः । उद्भूतस्पर्शमनुद्भूतरूपमप्रत्यक्षम् यथावादि-
संयुक्तं तेजः । अनुद्भूतरूपस्पर्शोऽप्रत्यक्षश्चाक्षुषोरश्मिरिति ॥

सू० कर्मकारितश्चेन्द्रियाणां व्यूहः पुरुषार्थतन्त्रः ॥
॥ ३७ ॥

भा० यथा चेतनस्यार्थो विषयोपलब्धिभूतः सुखदुःखोपल-
ब्धिभूतश्च कश्च्यते तथेन्द्रियाणि व्यूहानि विषयप्राप्त्यर्थञ्च

भा० रम्योदात्तपक्षायुः, रूपसंज्ञानभिधत्तिश्च व्यवहारप्रभु-
 धर्था इत्यविशेषे च प्रतीघातादावरणोपपत्तिर्नवहा-
 रार्था सम्बन्धव्याप्ता विश्वरूपोप्युह इन्द्रियवत्कर्मका-
 रितः पुरुषार्थतन्त्रः । कर्म तु धर्माधर्मभूतं चेतनस्योप
 भोगार्थं मिति ॥

सू० †अव्यभिचाराच्चप्रतीघातो भौतिकधर्मः॥ ३८ ॥

भा० यस्यावरणोपलब्धादिन्द्रियस्य इत्यविशेषे प्रतीघातः
 स भौतिकधर्मो न भूतानि व्यभिचरति नाभौतिकं प्रति-
 घातधर्मकं दृष्टमिति । अप्रतिघातस्तु व्यभिचारो भौति-
 काभौतिकयोः समानत्वादिति । यदपि मन्यते प्रतिघाता-
 ज्ञातिकानोन्द्रियाणि अप्रतिघाताद्भौतिकानोतिप्राप्तम्
 दृष्ट्याप्रतिघातः काचाभ्रपटलस्फटिकान्तरितोपलब्धेः तत्र
 युक्तम् कस्मात् यस्याज्ञातिकमपि न प्रतिहन्यते काचा-
 भ्रपटलस्फटिकान्तरितप्रकाशात् प्रदीपरश्मीनां, स्थाव्या-
 दिषु पाचकस्य तेजसो ऽप्रतिघातः, उपपद्यते चानुप-
 लब्धिः कारणभेदात् ॥

सू० मध्यन्दिनेष्वाप्रकाशानुपलब्धिवत्तदनुपलब्धिः
 ॥ ३९ ॥

* इत्यर्था इति कश्चित् पाठः ।

† इहं सूत्रं न इतिकारसम्मतम् ।

भा० वायुजेकद्रुकोप समनस्यद्रुपतिविषाद्योपलभिरिति
 सत्युपलभिकारणे मध्यन्दिनेऽस्मात्प्रकाशो नोपलभ्यते
 आदित्यप्रकाशेनाभिभूतः, एवं मरुदनेकद्रुवत्त्वादद्रुप-
 तिविषाद्योपलभिरिति, सत्युपलभिकारणे चक्षुषो रश्मि-
 नोपलभ्यते निमित्तान्तरतः, तच्च व्याख्यातमनुभूतरूप-
 स्यर्गद्रुवस्य प्रत्यक्षतोऽनुपलभिरिति, अत्यन्तानुपलब्ध्या-
 भावकारणम्, योहि ब्रवीति खोटप्रकाशो मध्यन्दिने आ-
 दित्यप्रकाशाभिभवाद्योपलभ्यत इति तथैतत्स्यात् ॥

सू० न राचावय्यनुपलब्धेः ॥ ४० ॥

भा० अय्यनुमानतोऽनुपलभिरिति एवमत्यन्तानुपलब्धे लो-
 छप्रकाशो नास्ति नत्वेवं चक्षुषो रश्मिरिति उपपन्नरूपा-
 चैयम् ॥

सू० वायुप्रकाशानुग्रहाद्विषयोपलब्धेरनभिव्यक्ति-
 तेऽनुपलब्धिः ॥ ४१ ॥

भा० वायुज प्रकाशिनानुगृहीतं चक्षुर्विषययाचकम्, तद-
 भावेऽनुपलब्धिः, इति च प्रकाशानुगृहे गीतसर्गोपलब्धौ च
 वत्यां तदाश्रयस्य द्रव्यस्य *चक्षुषाऽग्रहणम् रूपस्यानुभूत-

भा० जातिः सैव रूपानभिभ्यक्तितो रूपप्रपञ्च इत्युक्तम्
अभिभूतं तच्च यद्युक्तं तदनुपपन्नमेतदित्येतदुक्तम्
कस्मात् पुनरभिभवोऽनुपपन्नभिकारणम् चाक्षुषस्य रश्मिर्ना-
स्त्यत इति ॥

सू० अभिव्यक्तौ चाभिभवात् ॥ ४२ ॥

भा० वाङ्मयप्रकाशानुगहनिरपेक्षतायाच्चेति चार्थः, यद्रूप-
मभिव्यक्तमुद्भूतं वाङ्मयप्रकाशानुगहं च नापेक्षते तद्विष-
योऽभिभवोविपर्यये ऽभिभवाभावात् अनुद्भूतरूपत्वाच्चानु-
पपन्नभ्यमानं वाङ्मयप्रकाशानुगहाच्चोपपन्नभ्यमानं नाभिभूयत
इति एवमुपपन्नम् अस्ति चाक्षुषो रश्मिरिति ॥

सू० नक्तश्चरनयनरश्मिदर्शनाच्च ॥ ४३ ॥

भा० दृश्यन्ते हि नक्तं नयनरश्मयो नक्तचराणां दृषदंश-
प्रभृतीनाम्, तेन शेषस्यानुमानमिति, जातिभेदवदिन्द्रि-
यभेद इति चेत् धर्ममात्रं चानुपपन्नं आवरणस्य प्रा-
प्तिप्रतिषेधार्थस्य दर्शनादिति । इन्द्रियार्थवन्निकर्षस्य ज्ञा-
नकारणत्वानुपपत्तिः कस्मात् ॥

सू० अप्राप्य ग्रहणम् काचाद्यपटलस्फटिकान्तरितो-
पपन्ने ॥ ४४ ॥

भा० तस्यादिसर्पद्वयं काचोऽभ्रपटलेषां प्रतिबन्तं दृष्टमव्य-
वहितेन सन्निलम्बते व्यावृत्त्यते वै प्राप्तिर्बन्धवधानेनेति यदि
च रात्र्यर्थसन्निकर्षोपपत्त्येतदुः स्यात् न व्यवहितस्य सन्निक-
र्ष इत्यपहस्यं स्यात् अस्ति चेद्यं काचाभ्रपटलस्य स्फटिका-
न्तरितोपसम्भिः सा † ज्ञापयत्यप्राप्यकारीषीन्धियाणि अत
एवाभौतिकानि प्राप्यकारित्वं हि भौतिकधर्म इति ॥

सू० न कुक्षान्तरितानुपसम्भेरप्रतिषेधः ॥ ४५ ॥

भा० अप्राप्यकारित्वे सतीन्धियाणां कुक्षान्तरितानु-
पसम्भिर्न स्यात् प्राप्यकारित्वेऽपि तु काचाभ्रपटलस्य स्फटि-
कान्तरितोपसम्भिर्न स्यात् ॥

सू० अप्रतिधातात् सन्निकर्षोपपत्तिः ॥ ४६ ॥

भा० न च काचाभ्रपटलं वा नयनरश्मिं विवृधाति सो ‡ प्र-
तिबन्धनमात्रः सन्निलम्बत इति, यस्य मन्यते न भौतिकस्या-
प्रतीक्षा इति तत्र ॥

सू० आदित्यरश्मेः स्फटिकान्तरेपि दाक्षोऽविधा-
तात् ॥ ४७ ॥

* सर्पद्वयं प्रथमिति क्वचित् पाठः ।

† तस्मान् ज्ञापयते प्राप्यकारीषीति क्वचित् पाठः ।

‡ सन्नप्रतिबन्धनमात्र इति क्वचित् पाठः ।

भा० आदित्यरश्मिरविधातात् स्फटिकान्तरितेऽविधातात्
 दाहोऽविधातात् अविधातादिति च पदभिर्बन्धभेदा-
 दाह्यभेद इति यथा वाक्यं चार्थभेद इति प्रतिवाक्यं
 वाक्यार्थभेदः आदित्यरश्मिः कुम्भादिषु न प्रतिहन्यते
 अविधातात् कुम्भस्यमुदकस्तपति प्राप्तौ हि द्रव्यान्त-
 रगुणस्य उष्णस्पर्शस्य ग्रहणम् तेन च शीतस्पर्शाभिभव-
 इति, स्फटिकान्तरितेऽपि प्रकाशनीये प्रदीपरश्मीनाम-
 प्रतिघातः अप्रतिघातात् प्राप्तस्य ग्रहणमिति भर्जनक-
 पाक्षादिस्यञ्च द्रव्यमाग्नेयेन तेजसा दह्यते तत्राविधा-
 तात् प्राप्तिः प्राप्तौ तु दाहोनाप्राप्यकारि तेज इति
 अविधातादिति च केवलं पदमुपादीयते कोऽयमवि-
 धातो नाम अव्यूह्यमानावयवेन व्यवधायकेन द्रव्येणा-
 सर्वतो द्रव्यस्याविष्टम्भः क्रियाहेतोरप्रतिबन्धः प्राप्तेरप्रति-
 रोध इति, दृष्टं हि कलशनिषक्तानामपां वहिः शीतस्पर्शस्य
 ग्रहणम्, न च दग्निद्वयेणासन्निकृष्टस्य द्रव्यस्य स्पर्शोपलब्धिः
 दृष्टौ च प्रत्यन्दपरिख्यौ तत्र काचाभ्रपटलादिभिर्नय-
 नरश्मिरप्रतिघातादिभिर्नार्थेन सह सन्निकर्षादुपपन्नं ग्रह-
 णमिति ॥

सू० नेतरेतरधर्मप्रसङ्गात् ॥ ४८ ॥

भा० काचाभ्रपटलादिवद्वा कुम्भादिभिरप्रतिघातः कुम्भा-

भा० दिवहा काचाभपटलादिभिः प्रतिघात इति नियमे का-
रणं वाच्यमिति ॥

सू० आदर्शोदकयोः प्रसादस्वाभाव्याद्रूपोपलब्धि-
वत्तदुपलब्धिः ॥ ४६ ॥

भा० आदर्शोदकयोः प्रसादो रूपविशेषः स्त्रो धर्मो नियम-
दर्शनात् प्रसादस्य वा स्त्रोधर्मोरूपोपलब्धनम् यथादर्श-
प्रतिघातस्य परावृत्तस्य नयनरश्मिः स्त्रेन मुखेन सन्निकर्षे
सति स्त्रमुखोपलब्धनं प्रतिविम्बगृहणाख्यमादर्शरूपानु-
गृह्यात्तन्निमित्तं भवति आदर्शरूपोपघाते तदभावात्
कुल्यादिषु च प्रतिविम्बगृहणं न भवति एवं काचाभप-
टलादिभिरविघातश्चक्षुरश्मिः कुल्यादिभिश्च प्रतिघातो-
द्भवस्त्रभावनिश्चयमादिति ॥

सू० दृष्टानुमितानां नियोगप्रतिषेधानुपपत्तिः ॥
॥ ५० ॥

भा० प्रमाणस्य तत्त्वविषयत्वात् न खलु भोः परीक्ष्यमाणेन
दृष्टानुमिता अर्थाः प्रक्या निश्चितमेव भवतेति नापि प्र-
तिषेद्धमेव न भवतेति न हीदमुपपद्यते रूपवद्भूतोपि चा-
नुषो भवन्निति गन्धवदा रूपस्यानुषं माभूदिति अग्निप्र-
तिपत्तिवद्भूमेर्लोहकप्रतिपत्तिरपि भवन्निति उदकाप्रति-

भा० कतिपयदा धूमेनाग्निप्रतिप्रत्तिरपि माभूदिति किं कार-
णम् यथा खल्वर्था भवन्ति य एवां सोभावः सोधर्मा
इति तथाभूताः प्रमाणेन प्रतिपद्यन्त इति तथाभूत-
विषयकं हि प्रमाणमिति इमौ खलु नियोग प्रतिषेधौ
भवतादेशितौ काचाभ्रपटलादिवदा कुद्यादिभिरप्रति-
घातो भवतु कुद्यादिवदा काचाभ्रपटलादिभिरप्रति-
घातो माभूदिति न दृष्टानुमिताः खल्विमे द्रव्यधर्माः
प्रतिघाताप्रतीघातयोर्ह्युपलब्ध्यनुपलब्धौ व्यवस्थापिके
व्यवहितानुपलब्ध्याऽनुमीयते कुद्यादिभिः प्रतिघातः, व्य-
वहितोपलब्ध्याऽनुमीयते काचाभ्रपटलादिभिरप्रतिघात
इति अथापि खल्वेकमिदमिन्द्रियं बह्वनीन्द्रियाणि वा
कुतः संशयः ॥

सू० स्थानान्यत्वे नानात्वादवयविनानात्वादवयवि-
नानास्थानत्वाच्च संशयः ॥ ५१ ॥

भा० बह्वनि द्रव्याणि नामास्थानानि दृश्यन्ते नानास्थानस्य
सन्नेकोऽवयवो चेति तेनेन्द्रियेषु भिन्नस्थानेषु संशय इति
एकमिन्द्रियम् ॥

सू० त्वगव्यतिरेकात् ॥ ५२ ॥

भा० त्वगेकमिन्द्रियमित्याह कस्मात् अव्यतिरेकात् न त्व-
गव्यमिन्द्रियमिन्द्रियाभिधानं न प्राप्तम् न चासत्यां त्वगि-

भा० किञ्चिद्विषयवर्णनं भवति यथा सर्वेन्द्रियस्थानानि यानि
 तानि यथास्तु सत्यां विषयवर्णनं भवति सा तन्नेकमिन्द्रि-
 यमिति ॥

सू० नेन्द्रियान्तरार्थानुपलब्धिः ॥ ५३ ॥

भा० सर्वोपलब्धिलक्षणायां सत्यां तच्च गृह्यमाणे तन्नि-
 द्रियेण सर्वेन्द्रियान्तरार्था रूपादयो न गृह्यन्ते अन्वा-
 दिभिः न स्वर्गपादकादिन्द्रियान्तरमस्तीति सर्ववद-
 न्नादिभिर्मध्येरन् रूपादयो न च गृह्यन्ते तस्मादेक-
 मिन्द्रियं तन्निति ॥

सू० त्वगवयवविशेषेण धूमोपलब्धिवत्तदुपलब्धिः ॥
 ॥ ५४ ॥

भा० यथा त्वोऽवयवविशेषः कश्चिच्छुषि सन्निकटो धू-
 मस्तत्र गृह्णाति नान्यः एवं त्वोऽवयवविशेषोरूपादि-
 पादकक्षीणमुपघातादन्नादिभिर्न गृह्यन्ते रूपादय इति ॥

सू० व्याहृतत्वादहेतुः ॥ ५५ ॥

भा० तन्नेकमिति रेकादेकमिन्द्रियमित्युक्त्वा त्वगवयवविशेषेण
 धूमोपलब्धिवद्रूपाद्युपलब्धिरित्युच्यते एवं च सति नाना-
 भूतानि विषयपादकाणि विषयव्यवस्थानात् तन्नावे विष-
 यव्यवस्था भावानुपघाते कर्माभावात् तथा च ॥

भा० उत्तरेण वादेन व्याख्येत इति, सन्निध्यव्यतिरेकः
इन्द्रियादिभिरपि भूतैरिन्द्रियाधिष्ठानानि व्याप्तानि न च
तेष्वसक्तु विषयग्रहणं भवतीति तस्मान्न त्वगन्तु सर्व-
विषयमेकमिन्द्रियमिति ॥

सू० न युगपदर्थानुपलब्धेः ॥ ५६ ॥

भा० आत्मा मनसा संवध्यते मन इन्द्रियेण इन्द्रियं सर्वार्थैः
सन्निलुप्तमिति आत्मेन्द्रियमनोऽर्थसन्निकर्षेभ्यो युगपद्ग्रह-
णानि स्युः, न च युगपद्रूपादयो गृह्यन्ते, तस्मान्नैकमिन्द्रियं
सर्वविषयमस्तीति असाहचर्याच्च विषयग्रहणानां नैकमि-
न्द्रियं सर्वविषयकम्, साहचर्ये हि विषयग्रहणानामन्वा-
द्यनुपपत्तिरिति ॥

सू० विप्रतिषेधाच्च नत्वगेका ॥ ५७ ॥

भा० न खलु त्वगेकमिन्द्रियं व्याघातात् तत्रा रूपाण्यप्रा-
प्तानि गृह्यन्ते इति अप्राप्यकारित्वे स्पर्शादिष्वप्येवं प्रसङ्गः,
स्पर्शादीनाञ्च प्राप्तानां ग्रहणद्रूपादीनामप्राप्तानामग्रह-
णमिति प्राप्तम्, प्राप्याप्राप्यकारित्वमिति चेत् आवरणानुप-
पत्तेर्विषयमात्रस्य ग्रहणम्, अद्यापि मन्येत प्राप्ताः स्पर्शा-
दिष्वस्यैव गृह्यन्ते रूपाणि त्वप्राप्तानीति, एवं सति नास्मा-
द्वत्तम् आवरणानुपपत्तेर्य रूपमात्रस्य ग्रहणं व्यवहितस्य

भा० साध्यवहितस्येति । दूरान्निष्ठानुविधानं च रूपोत्पत्त्य-
 नुपसङ्गो न स्यात् अप्राप्तं तथा गृह्यते रूपमिति दूरे
 रूपस्यापहणमन्तिकेच ग्रहणमित्येतन्न स्यादिति एकत्वप्रति-
 पेक्षाच्च गानात्वविज्ञेया स्थापनाहेतुरन्युपादीयते ॥

सू० इन्द्रियार्थपञ्चत्वात् ॥ ५८ ॥

भा० अर्थः प्रयोजनं तत् पञ्चविधमिन्द्रियाणम्, स्वर्ग-
 नेनेन्द्रियेण स्वर्गग्रहणे सति न तेनैव रूपं गृह्यत इति
 रूपग्रहणप्रयोजनं चक्षुरनुमीयते, स्वर्गरूपग्रहणे च ताभ्या-
 मेव गन्धो न गृह्यत इति गन्धग्रहणप्रयोजनं घ्राणमनुमी-
 यते, चयाणां ग्रहणे न तैरेव रसो गृह्यत इति रसग्रहणप्र-
 योजनं रसनमनुमीयते, न चतुर्णां ग्रहणे तैरेव शब्दः
 श्रूयत इति शब्दग्रहणप्रयोजनं श्रोत्रमनुमीयते, एवमि-
 न्द्रियप्रयोजनस्थानितरेतरसाधनसाध्यत्वात् पञ्चैवेन्द्रियाणि ॥

सू० न तदर्थवहुत्वात् ॥ ५९ ॥

भा० न खल्विन्द्रियार्थपञ्चत्वात् पञ्चेन्द्रियाणीति विज्ञा-
 ति, कस्मात् तेषामर्थानां बहुत्वात्, बहवः खल्विमे इन्दि-
 यार्थाः, स्वर्गस्थानपक्षीतोऽप्यानुष्णपक्षीता इति, रूपमपि उ-
 ल्लहरितादीनि, गन्धा इष्टानिष्टोपेक्षणीयाः, रसाः कटुका-
 दयः, शब्दाः वर्ण्यतामयोऽभगिमाः प्राक् भिन्नाः, तद्यथेन्द्रि-

अत्रान्वयान्तरान् पक्षेन्द्रियाणि तस्येन्द्रियार्थस्यैव तद्वत्त्वं
न्द्रियाणि प्रसज्यन्ते इति ॥

दृ० गन्धत्वाद्यव्यतिरेकाङ्गन्धादीनामप्रतिषेधः ॥

॥ ६० ॥

भा० गन्धत्वादिभिः स्वसामान्यैः कृतव्यवस्थानां गन्धादीनां
यानि गन्धादियदृशानि तान्यसमानसाधनसाध्यत्वाद्वाह-
कान्तराणि न प्रयोजयन्ति, अर्थसमूहोऽनुमानमुक्तो नार्थ-
कदेवः, अर्थैकदेशस्याश्रित्यविषयपक्षत्वमात्रं भवान् प्रति-
षेधति, तस्मादयमुक्तार्थं प्रतिषेध इति, कथं पुनर्गन्धत्वादि-
भिः स्वसामान्यैः कृतव्यवस्था गन्धादय इति। स्वार्थः स्वत्व-
निरविधः श्रुत उच्यतेऽनुष्णशीतस्य स्पर्शत्वेन स्वसामान्येन
संगृहीतः, गृह्यमाणे च श्रुतस्पर्शे नाष्णस्थानुष्णाशीतस्य
वा यदृशम् यादृशकान्तरं प्रयोजयति, स्वार्थभेदानामेकसा-
धनसाध्यत्वात् । येनैव श्रुतस्पर्शो गृह्यते तेनैवेतरावपीति ।
एवं गन्धत्वेन गन्धानां रूपत्वेन रूपाणां रसत्वेन रसा-
नां शब्दत्वेन शब्दानामिति, गन्धादियदृशानि पुनरसमान
साधनसाध्यत्वाद्वाहकान्तराणि प्रयोजकानि, तस्मादुप-
पन्नमिन्द्रियार्थपक्षत्वात् पक्षेन्द्रियाणीति, यदि सामान्यं सं-
याहकं प्राप्तमिन्द्रियाणां ॥

दृ० विषयत्वाव्यतिरेकादेकत्वं ॥ ६१ ॥

भा० विषयत्वेन हि सामान्येन गन्धादयोः संबन्धीना इति।

सू० न बुद्धिलक्षणाधिष्ठानगत्याकृतिजातिपञ्चत्वेभ्यः
॥ ६२ ॥

भा० न खलु विषयत्वेन सामान्येन कृतव्यवस्था विषया या-
वकान्तरनिरपेक्षा एकसाधनया ह्या अनुमीयन्ते, अनुमीय-
न्ते च पञ्च गन्धादयो गन्धत्वादिभिः स्वसामान्यैः कृत
व्यवस्था इन्द्रियान्तरयाच्यास्तस्मादसम्बद्धमेतत् । अयमेव
चार्थोऽनूयते बुद्धिलक्षणपञ्चत्वादिति, बुद्धय एव लक्ष-
णानि विषयग्रहणलिङ्गत्वादिन्द्रियाणाम्, तदेतदिन्द्रिया-
द्यपञ्चत्वादित्येतस्मिन् सूत्रे कृतभाव्यमिति, तस्माद्बुद्धिल-
क्षणपञ्चत्वात् पञ्चेन्द्रियाणि, अधिष्ठानान्यपि खलु पञ्चे-
न्द्रियाणम्, सर्व्वशरीराधिष्ठानं स्पर्शनं स्पर्शग्रहणलिङ्गम्,
कृष्णसारोपधिष्ठानं चक्षुर्वर्द्धनिःसृतं रूपग्रहणलिङ्गम्, ना-
साधिष्ठानं घ्राणम्, जिह्वाधिष्ठानं रसनम्, कर्णच्छि-
द्राधिष्ठानं श्रोत्रम्, गन्धरसरूपस्पर्शशब्दग्रहण*लिङ्गत्वा-
दिति गतिभेदादपीन्द्रियभेदः, कृष्णसारोपनिबद्धं चक्षु-
र्वर्द्धनिःसृत्य रूपाधिकरणानि द्रव्याणि प्राप्नोति, स्पर्श-
नादीर्जलिन्द्रियाणि विषया एवाभ्युपसर्षणात् प्रत्या-
सीदन्ति, सन्तानवृत्त्या शब्दश्च श्रोत्रप्रत्यासन्निरिति सा-

भा० इतिः चक्षुः परिभाषितवन्ता आ पञ्चभाः कस्यानया-
 भाषिः प्राणरसनस्पर्शनानि विषयग्रहणेनानुमेयानि, चक्षुः
 हृन्मसाराग्रयं वह्निर्निःसृतं विषयव्यापि, श्रोत्रं नाभ्य-
 दाकनशात्, तच्च विभु शब्दमात्रानुभवानुमेयं पुरुषसंस्का-
 रोपयहाचाधिष्ठाननियमेन शब्दस्य व्यञ्जकमिति । जा-
 तिरिति योनिं प्रचक्षते, पञ्च खल्विन्द्रिय योनयः पृथि-
 व्यादीनि भूतानि, तस्मात् प्रकृतिपञ्चत्वादपि पञ्चेन्द्रि-
 याणीति सिद्धम्, कथं पुनर्ज्ञायते भूतप्रकृतौ नोन्द्रियाणि
 नाव्यक्तप्रकृतौ नीति ॥

सू० भूतगुणविशेषोपलब्धेस्तादात्म्यम् ॥ ६३ ॥

भा० दृष्टोहि वाङ्मादीनां भूतानां गुणविशेषाभिव्यक्ति-
 नियमः, वायुः स्पर्शव्यञ्जकः, आपो रसव्यञ्जिकाः, तेजो
 रूपव्यञ्जकम्, पार्थिवं किञ्चिद्द्रव्यं कस्यचिद्द्रव्यस्य गन्ध-
 व्यञ्जकम् । अस्ति चायमिन्द्रियाणां भूतगुणविशेषोपलब्धि-
 नियमः, तेन भूतगुणविशेषोपलब्धे मन्व्यामहे भूतप्रकृतौ नो-
 न्द्रियाणि नाव्यक्तप्रकृतौ नीति, गन्धादयः पृथिव्यादिगुणा
 इत्युपदिष्टम् उद्देशश्च पृथिव्यादीनामेकगुणत्वे समान इ-
 त्यत आह ॥

सू० गन्धरसरूपस्पर्शशब्दानां स्पर्शपर्यन्ताः पृथि-
 व्याः अनेजोवायूनां पूर्वं पूर्वमपोऽद्याकाश-
 स्योत्तरः ॥ ६४ ॥

भा० संप्रपञ्चानामिति विभक्तिविपरिवर्तः, साक्षात्
 स्रोतः ब्रह्मः संप्रपञ्चोभ्य इति कथनपरिर्वेदः, अत-
 न्नविनियोगवामर्थ्यात्, तेनोत्तरब्रह्मस्य परार्थाभिधानं
 विज्ञायते, उद्दिष्टस्य चेहि संप्रपञ्चोभ्यः परब्रह्म इति तन्म
 वा संप्रपञ्चस्य विवक्षितत्वात् संप्रपञ्चोभ्यो नियुक्तेषु बोध्य-
 सादुत्तरः ब्रह्म इति ॥

सू० न सर्वगुणानुपलब्धेः ॥ ६५ ॥

भा० नायं गुणनियोगः साधुः, कस्मात् यस्य भूतस्य ये
 गुणा न ते तदात्मकेनेन्द्रियेण सर्वे उपलब्धन्ते पार्थिवेन हि
 ज्ञात्वेन संप्रपञ्चान्ता न गृह्यन्ते गन्धएवैको गृह्यते एवं
 शेषेष्वपीति कथनार्थमे गुणा, विनियोगाद्या इति ॥

सू० एकैकस्यैवोत्तरोत्तरगुणसङ्गावादुत्तरोत्तराणां
 तदनुपलब्धिः ॥ ६६ ॥

भा० गन्धादीनामेकैको यथाक्रमं पृथिव्यादीनामेकैकस्य
 गुणः अतस्तदनुपलब्धिः तेषामनुपलब्धिः, ज्ञा-
 त्वेन इत्युपलब्धिः, रसनेन रूपसंज्ञयोः, चक्षुषा संप्र-
 ख्येति, कथनार्थमेकगुणानि भूतानि गृह्यन्ते इति ॥

सू० संसर्गाद्यनेकगुणप्रत्यक्षम् ॥ ६७ ॥

अथर्ववेदः २. अथर्वश्रौतसंहिता ११४
 भोमेत्यपीति निबन्धनं न प्राप्नोति संसर्गस्यानियमाजतु-
 र्मुखा दृष्टिवी चिनुषा चाप्यो दिगुषं तेज एकगुणे वायुरिति
 निबन्धनोपपद्यते कथम् ॥

सू० विष्टं आपरम्परेण ॥ ६८ ॥

भा० दृष्टिव्यादीनां पूर्वमूर्ध्वमुत्तरेणोत्तरेण विष्टमतः सं-
 सर्गानियम इति तच्चैतद्भूतसूत्रो वेदितव्यश्चेतर्हीति ॥

सू० न पार्थिवाप्ययोः प्रत्यक्षत्वात् ॥ ६९ ॥

भा० नेतिचिदुच्यते प्रत्याचष्टे, कस्मात् पार्थिवस्य द्रव्यस्याप्यस्य
 च प्रत्यक्षत्वात् महत्त्वानेकद्रव्यत्वाद्रूपाद्योपलभिरिति, तेज-
 समेव द्रव्यं प्रत्यक्षं स्यात् न पार्थिवमाप्यं वा रूपाभावात्
 तेजसवत् पार्थिवाप्ययोः प्रत्यक्षत्वात् न संसर्गादनेकगु-
 ण्यवयवं भूतानामिति । भूतान्तररूपकतन्मस्य पार्थि-
 वाप्ययोः प्रत्यक्षत्वं ब्रुवतः प्रत्यक्षो वायुः प्रसज्यते नियमे
 वा कारणमुच्यतामिति, रसयोर्वा पार्थिवाप्ययोः प्रत्यक्ष-
 त्वात् पार्थिवो रसः षड्विधः, चाप्योमधुरएव नचैतत्
 संसर्गाद्भवितुमर्हति, रूपयोर्वा पार्थिवाप्ययोः प्रत्यक्षत्वात्
 तेजसरूपानुगृहीतयोः संसर्गे हि व्यञ्जकमेव रूपं न व्य-
 ञ्जयतीति एकानेकमिभले च पार्थिवाप्ययोः प्रत्यक्षत्वात्

भा० उपयोः पार्थिव इति तदेकैव तेषां कश्चिद् वाच्यः
 वाच्यः प्रत्यक्षमप्युक्तम् । अथेतदेकगुणायः संसर्गे-
 सत्युपलभ्यत इति । उदाहरणमात्रेणैतत् अतः परं प्रपञ्चः,
 सार्धबोधा पार्थिवतैजसयोः प्रत्यक्षत्वात् पार्थिवोऽनुष्णा-
 ग्रीतः सार्धः, उष्णतैजसः प्रत्यक्षो, न चैतदेकगुणानामनु-
 ष्णाग्रीतस्यार्धेन वायुना संसर्गेणोपपद्यत इति, अथवा पार्थि-
 वाप्ययोर्द्रव्ययोर्भवस्थितगुणयोः प्रत्यक्षत्वात् चतुर्गुणं पा-
 र्थिवं द्रव्यं त्रिगुणमाप्यं प्रत्यक्षत्वेन तत्कारणमनुमीयते,
 तथाभूतमिति तस्य कार्यं सिद्धं कारणभावाद्वि कार्य-
 भाव इति, एवं तैजसवायव्ययोर्द्रव्ययोः प्रत्यक्षत्वाद्गुण-
 व्यवस्थायास्तत्कारणे द्रव्ये व्यवस्थानुमानमिति । इदं वि-
 वेकः पार्थिवव्ययोः प्रत्यक्षत्वात् पार्थिवं द्रव्यमवादिभिर्वि-
 द्युक्तं प्रत्यक्षतो गृह्यते आप्यस्य पराभ्यां तैजसस्य वायुना
 न चैकैकगुणं गृह्यत इति निरनुमानन्तु विष्टं ह्यपरं परे-
 ष्येत्येतदिति नापसिद्धमनुमापकं गृह्यत इति येनैतदेवं
 प्रतिपद्येमहि चक्षोः विष्टं ह्यपरम्यरेष्येति भूतसृष्टौ-
 वेदितव्यं न साम्प्रतमिति नियमकारणाभावाद्विष्टं इ-
 दं साम्प्रतमपरम्यरेष्येति विष्टमिति वायुना च विष्टं तैज-
 स इति । विष्टत्वं संयोगः स च द्वयोः समानो वायुना च
 विष्टत्वात् सार्धतैजसो न तु तैजसाविष्टत्वाद्वायुना वायु-
 रिति नियमकारणं नास्तीति । इदं तैजसेन सार्धेन
 वायव्यसार्धसाभिभवाद्गृह्यमिति न च तैजसं न सार्ध-

भा० विमर्श इति । तदेवं व्यापविदुः प्रवादः प्रतिविमर्शः
सर्वगुणानुपलब्धिरिति चेदि*तं समाधीयते ॥

सू० पूर्वपूर्वगुणोत्कर्षात्तत्प्रधानं ॥ ७० ॥

भा० तस्माच्च सर्वगुणोपलब्धिः प्राणादीनां पूर्वं पूर्वं ग-
त्यादेर्गुणोत्कर्षात्तत्प्रधानम् का प्रधानता विषयग्राह-
कत्वम्, को गुणोत्कर्षः अभिव्यक्तौ समर्थत्वम्, यथा वाद्या-
नां पार्थिवायतैजसानां द्रव्याणां चतुर्गुणनिगुणदिगुणानां
न सर्वगुणव्यञ्जकत्वम्, गन्धरसरूपोत्कर्षात्तु यथा-
क्रमं गन्धरसरूपव्यञ्जकत्वम्, एवं प्राणरसनचक्षुषां चतु-
र्गुणनिगुणदिगुणानां सर्वगुणग्राहकत्वम् । गन्धरसरूपोत्कर्-
षात्तु यथाक्रमं गन्धरसरूपग्राहकत्वं तस्माद् प्राणादिभिर्न
सर्वेषां गुणानामुपलब्धिरिति । यस्तु प्रतिजानीते गन्ध-
गुणत्वाद्ग्राह्यं गन्धग्राहकं एवं रसनादिव्यपीति तच्च
यथागुणयोगं प्राणादिभिर्गुणग्राहणं प्रसज्यत इति किं-
कृतं पुनर्यवस्थानम् किञ्चित् पार्थिवमिन्द्रियं न सर्वोपि
कानिचिदाप्यतैजसवायव्यानीन्द्रियाणि न सर्वोपि ॥

सू० तद्यवस्थानन्तु भूयस्त्वात् ॥ ७१ ॥

भा० अर्थनिवृत्तिसमर्थस्य प्रविभक्तस्य द्रव्यस्य संसर्गः पुरुष-

भा० संस्कारकारितोऽसंस्कृतम्, इदं वि. परकी भूयस्त्वन्मः
प्रकटो यथा विषयोभूयानित्युच्यते । यथा दृश्यमर्थकि-
यासमर्थानि पुरुषसंस्कारवशादिविषयमणिप्रकृतौ निद्र-
याणि निर्वर्त्यन्ते न सर्वं सर्वार्थम्, एवं दृश्यविषयग्रह-
णसमर्थानि घ्राणादीनि निर्वर्त्यन्ते न सर्वविषयग्रहण-
समर्थानीति । स्वगुणोपलभ्यो इन्द्रियाणि कस्यादि-
ति चेत् ॥

सू० सगुणानामिन्द्रियभावात् ॥ ७२ ॥

भा० खान् गन्धादीनोपलभ्यो घ्राणादीनि केन कारणे-
नेति चेत् स्वगुणैः सह घ्राणादीनामिन्द्रियभावात् घ्राणं स्वेन
गन्धेन समानार्थकारिणा सह वाङ्मं गन्धं गृह्णाति तस्य
स्वगन्धग्रहणं सहकारिवैकस्यात् न भवति, एवं श्रेयाणा-
मपि यदि पुनर्गन्धः सहकारी च स्यात् घ्राणस्य वाङ्म-
स्येत्यत आह ॥

सू० तेनैव तस्याग्रहणाच्च ॥ ७३ ॥

भा० न गुणोपलम्भिरिन्द्रियाणाम् । यो ज्ञूते यथा वाङ्म-
द्रव्यं चक्षुषा गृह्णाते तथा तेनैव चक्षुषा तदेव चक्षुर्ग-
ह्यतामिति तादृगिदम् तुल्योद्युभयत्र प्रतिपत्तिरित्यभाव-
इति ॥

* तेनैव इति कश्चित् पाठः ।

तृ० न शब्दगुणोपलब्धिः ॥ ७४ ॥

भा० स्वगुणोपलब्धौ न शब्दगुणोपलब्धिः न भवति स्व-
गुणोपलब्धिः स्वगुणः शब्दः ओचेति ॥

तृ० तदुपलब्धिरितरेतरद्रव्यगुणवैधर्मात् ॥ ७५ ॥

भा० न शब्देन गुणेन स्वगुणमाकाशमिन्द्रियं भवति न
शब्दः शब्दस्य व्यञ्जकः न च प्राणादीनां स्वगुणग्रहणं
प्रत्यक्षं नाप्यनुमीयते अनुमीयते तु ओचेति काशेन श-
ब्दस्य ग्रहणं शब्दगुणलक्षाकाशस्येति, परिशेषज्ञानमानं
वेदितव्यम्, आत्मा तावत् ओता न करणं मनसः ओचते
वधिरत्वाभावः पृथिव्यादीनां प्राणादिभावे सामर्थ्यं ओच-
भावे चासामर्थ्यम् अस्ति चेद् ओचमाकाशस्य शिष्यते परि-
शेषवादाकाशं ओचमिति ॥

इति वात्स्यायनीये न्यायभाष्ये तृतीयाध्यायस्याख्यमा-
श्रितिकम् ॥ * ॥

भा० परीक्षितानीन्द्रियाण्यर्थाश्च बुद्धेरिदानीं परीक्षाक्रमः
सा किमनित्या नित्यावेति कुतः संशयः ॥

तृ० कर्माकाशसाधर्म्यात् संशयः ॥ १ ॥

भा० असंशयवत्त्वज्ञानात् समानो धर्मो संशयवत्त्वज्ञाने ।

शेषोपपन्नापाद्यधर्मवत्त्वम् विपर्ययश्च यथास्मन्नित्यभि-
त्ययोक्त्या बुद्धौ नोपपद्यते तेन संशयः । अनुपपन्नरूपः
संशयः संशयः, सर्वशरीरिणां हि प्रत्यात्मवेदनीयाऽनित्या
बुद्धिः सुखादिवत् भवति च संवित्तिर्ज्ञास्वामि जा-
नानि अज्ञासिधमिति नोपपन्नापाद्यो अन्तरेण चै-
कात्म्यवृत्तिः, ततश्च चैकात्म्यवृत्तेरनित्या बुद्धिरित्येतत्
चिद्वत्, प्रमाणचिद्वत्त्वेदम् शास्त्रेऽप्युक्तम् इन्द्रियार्थ-
विकर्षोत्पन्नं पुनपुनानुपपत्तिर्ननु चो विद्वन्मिथ्येवमा-
दि, तस्मात् संशयप्रक्रियानुपपत्तिरिति । दृष्टिप्रवादे-
पास्तत्कार्यन्तु प्रकरणम् । एवं हि पश्यन्तः प्रवदन्ति
वाङ्मनः पुरुषस्यानःकरणभूता नित्या बुद्धिरिति साधनं
प्रचक्षते ॥

सू० विषयप्रत्यभिज्ञानात् ॥ २ ॥

भा० किं पुनरिदं प्रत्यभिज्ञानम् यं पूर्वमज्ञासिधमर्थं तमिमं
जानामीति ज्ञानयोः समानेऽर्थे प्रतिषन्धिज्ञानं प्रत्यभि-
ज्ञानम् एतच्चावस्थिताया बुद्धे रूपपन्नम्, नानात्वे तु बुद्धि-
भेदे वृत्त्युपपत्तिर्गुणं प्रत्यभिज्ञानानुपपत्तिः नान्यज्ञातम-
न्यः प्रत्यभिज्ञानातीति ॥

सू० साध्यसमवायिहेतुः ॥ ३ ॥

नाना वदन्ति नित्यं बुद्धेः साधनेवम्यत्यभिज्ञानमपीति
 किं कारणम् चेतनधर्मात् कारणेऽनुपपत्तिः पुरुषधर्माः
 स्वतन्त्रं ज्ञानं दर्शनमुपलब्धिर्विधेः प्रत्यक्षोऽध्यवसाय इति,
 चेतनो हि पूर्वज्ञातमर्थम्यत्यभिजानातीति तस्यैतस्माद्दे-
 शो नित्यत्वं युक्तमिति, कारणचेतन्याभ्युपगमे तु चेतन-
 स्वरूपं वचनीयं नानिर्दिष्टस्वरूपमात्मान्तरं ब्रह्ममस्मीति
 प्रतिपन्नम्, ज्ञानस्तेदुद्धेरन्तःकरणस्याभ्युपगम्यते, चेतन-
 स्तेदानीं किं स्वरूपं को धर्मः किन्तत्त्वम् ज्ञानेन च
 बुद्धौ वर्तमानेनायं चेतनः किं करोतीति, चेतयत इति
 चेत् न ज्ञानादर्थान्तरवचनम्। पुरुषचेतयते बुद्धिर्जाना-
 तीति नेदं ज्ञानादर्थान्तरमुच्यते चेतयते जानीते बुध्य-
 ते पश्यत्युपलत इत्येकोऽयमर्थ इति, बुद्धिर्ज्ञापयतीतिचेत्
 अज्ञा जानीते पुरुषो बुद्धिर्ज्ञापयतीति सत्यमेतत् एवज्ञा-
 भ्युपगमे ज्ञानं पुरुषस्येति सिद्धं भवति न बुद्धेरन्तःकरण-
 स्येति प्रतिपुरुषश्च ब्रह्मान्तरव्यवस्था प्रतिज्ञाने प्रतिषेध-
 हेतुवचनम्। अथ प्रतिजानीते कश्चित् पुरुषचेतयते
 कश्चिदुच्यते कश्चिदुपलभते कश्चित् पश्यतीति पुरुषान्तरा-
 धि खल्विमानि चेतनोवाधोपलब्ध्या द्रष्टेति नैकस्यैते धर्मा
 इति, अथ कः प्रतिषेधहेतुरिति, अर्थसाभेद इति चेत्
 समानमभिज्ञार्था एते ब्रह्मा इति तत्र व्यवस्थानुपपत्ति-
 रित्येवं चेन्नान्यथे समानं भवति पुरुषचेतयते बुद्धिर्जानीते
 इत्यन्यथार्थो न भिद्यते तत्रोभयोश्चेतनान्तरव्यवस्था

भा० इति च हि युगपद्व्यतिरेकमिति बोधनं बुद्धिजन एवाव्यते तस्य
 नित्यम् अस्तेतदेवं च तु भगवति विषयप्रत्यभिज्ञाना-
 नित्यत्वम् । इदं हि करणभेदे ज्ञातुरेकत्वात् प्रत्यभि-
 ज्ञानम् सद्यद्वृत्त्येतरं प्रत्यभिज्ञानादिति चक्षुर्वत् प्रदी-
 पवच्च प्रदीपान्तरद्वृत्त्य प्रदीपान्तरेण प्रत्यभिज्ञानमिति
 तस्माज्ज्ञातुरयं नित्यत्वे हेतुरिति । यच्च मन्यते बुद्धे-
 रवस्थिताया यथाविषयं वृत्तयो ज्ञानानि निश्चरन्ति वृ-
 त्तिस्य वृत्तिमतो नान्येति ॥

सू० न युगपदग्रहणात् ॥ ४ ॥

भा० वृत्तिवृत्तिमतोरन्यत्वे वृत्तिमतोऽवस्थानादृत्तीना-
 मवस्थानमिति ज्ञानीमानि विषयग्रहणानि तान्यवतिष्ठन्त
 इति युगपद्विषयाणां ग्रहणं प्रवर्ज्यत इति ॥

सू० अप्रत्यभिज्ञाने च विनाशप्रसङ्गः ॥ ५ ॥

भा० ज्ञतोने च प्रत्यभिज्ञाने वृत्तिमात्रज्यतोत इत्यन्तः
 कर्मण्य विनाशः प्रवर्ज्यते विषय्ये च ज्ञानात्ममिति ।
 अत्रिभू येककर्मः प्रमाथेयेन्द्रियैः संयुज्यत इति ॥

सू० ज्ञानवृत्तिरूपोऽयुगपद्व्यतिरेकः ॥ ६ ॥

भा० इन्द्रियार्थानां वृत्तिवृत्तिमतोर्नामात्मनिति एकमे-
व प्रादुर्भावतिरोभावयोरभाव इति ॥

सू० अप्रत्यभिज्ञानञ्च विषयान्तरव्यासङ्गात् ॥ ७ ॥

भा० अप्रत्यभिज्ञानमनुपलब्धिः, अनुपलब्धिश्च कस्यचिदर्थ-
स्य विषयान्तरव्यासक्तो मनस्युपपद्यते वृत्तिवृत्तिमतोर्नामा-
त्मात् एकत्वे नानर्थकोव्यासङ्ग इति । विभुत्वे चान्तःकरणस्य
पर्यायेणेन्द्रियैः संयोगः ॥

सू० न गत्यभावात् ॥ ८ ॥

भा० प्राप्तानीन्द्रियाण्यन्तःकरणेनेति प्राप्त्यर्थस्य गमनस्या-
भावः । तच्च क्रमवृत्तित्वाभावादयुगपद्गृहणानुपपत्तिरि-
ति गत्यभावाच्च प्रतिषिद्धं विभुमोऽन्तःकरणस्यायुगप-
द्गृहणं न लिङ्गान्तरेणानुमीयते । यथा चक्षुषो गतिः प्रति-
षिद्धा सन्निकृष्टविप्रकृतयोस्तुल्यकाक्षग्रहणात् पाणिचन्द्र-
मसोर्ध्ववधानप्रतीचातेनानुमीयत इति सोऽयं नाम्नः-
करणे विवादो न तस्य नित्यत्वे सिद्धं हि मनोऽन्तःकरणं
नित्यमेति, क तर्हि विवादः तस्य विभुत्वे तच्च प्रमाणतो-
ऽनुपलब्धेः प्रतिषिद्धमिति एकस्यान्तःकरणं नाम्ना चेता-

भा० ज्ञानात्मिकादृष्टत्वं चतुर्विधात् नान्यविज्ञानं ह्यविज्ञानं
 गन्धविज्ञानमेतच्च वृत्तिमतेरेकमेवमुपपन्नमिति । एतेन
 विषयान्तरव्यासङ्गः प्रत्यक्षः । विषयान्तरग्रहणस्य चो वि-
 षयान्तरव्यासङ्गः पुरुषस्य नानाकरणत्वेति केनचिदिन्द्रिये-
 ष सन्निधिः केनचिदसन्निधिरिति । अथन्तु व्यासङ्गोऽ-
 नुज्ञाप्रते मनस इति । एकमन्तःकरणं नाना वृत्तय इति
 सत्यभेदे वृत्तेरिदमुच्यते ॥

सू० स्फटिकान्यत्वाभिमानवत्तदन्यत्वाभिमानः ॥

॥ ६ ॥

भा० तस्यां वृत्तौ नानात्वाभिमानः यथा द्रव्यान्तरो-
 पक्षिते स्फटिके अन्यत्वाभिमानोनीषोलोचित इति । एवं
 विषयान्तररोपधावदिति ॥

सू० न हेत्वभावात् ॥ १० ॥

भा० स्फटिकान्यत्वाभिमानवदयं ज्ञानेषु नानात्वाभिमानो-
 नीषो न पुनर्गन्धव्यासङ्गाभिमानवदिति चेत्तर्नास्ति हेत्वभा-
 वादनुपपन्न इति । यमज्ञो हेत्वमस्य इति चेत् न ज्ञा-
 नानां कमेवोपपन्ननापाददर्शनात् । कमेव हीन्द्रियार्थेषु
 ज्ञानानुपपन्नान्तोऽप्यस्य मिति वृत्तते तस्याद्रव्यान्वत्वा-

भा० भिन्नान्वयस्य शरीरेषु बाह्यान्नाभिमान इति । स्फटिकान्ना-
न्नाभिमानवदित्येतदस्यमात्रं चणिकवाद्याह ॥

सू० स्फटिकेऽप्यपरापरोत्पत्तेः क्षणिकत्वाद्भक्तीनाम-
हेतुः ॥ ११ ॥

भा० स्फटिकस्याभेदेनावस्थितस्योपधानभेदान्नात्वाभिमा-
न इत्ययमविद्यमानहेतुः पक्षः, कस्मात् स्फटिकेऽप्यपरा-
परोत्पत्तेः, स्फटिकेऽप्यन्याव्यक्तय उत्पद्यन्ते अन्या नि-
रुध्यन्त इति, कथम् क्षणिकत्वाद्भक्तीनां क्षणस्याप्तोयान्
कालः, क्षणस्थितिकाः क्षणिकाः, कथं पुनर्गम्यते क्षणिका-
व्यक्तय इति, उपपत्त्यापचयप्रबन्धदर्शनाच्छरीरादिषु
पक्षिनिवृत्तस्याधाररसस्य शरीररुधिरादिभावेनोपच-
योऽपचयस्य प्रबन्धेन प्रवर्तते उपपत्त्याद्भक्तीनामुत्पादः
अपचयाद्भक्तिनिरोधः, एवं च सत्यवयवपरिणामभेदेन
वृद्धिः शरीरस्य कालान्तरे गृह्यते इति सोऽयं व्यक्तिमाने
वेदितव्य इति ॥

सू० नियमहेत्वभावाद्यथादर्शनमभ्यनुज्ञा ॥ १२ ॥

भा० प्रदायीनां रक्षासु व्यक्तिषूपचयापचयप्रबन्धः शरीर-
वदिति नायं नियमः, कस्मात् हेतुभावात्, नाचप्रत्यक्षम-
नुमानं वा प्रतिपादकमस्तीति, तस्माद्यथादर्शनमभ्यनुज्ञा

भा० यत्र यत्रोपपत्तिरप्यत्रोपपत्तिरिति दृश्यते तत्र तत्र विनाशकारण-
 परापरोत्पत्तिरप्यत्रोपपत्तिरिति दृश्यते तत्र तत्र विनाशकारण-
 यत्र प्रतीतिरिति दृश्यते तत्र तत्र विनाशकारण-
 यत्र प्रतीतिरिति दृश्यते तत्र तत्र विनाशकारण-
 तस्यादयुक्तं स्रष्टिकोऽप्यपरापरोत्पत्तिरिति दृश्यते तत्र तत्र विनाशकारण-
 कटुकिञ्चा सर्वद्रव्याणां कटुकिमानमापादयेत् तादृगे-
 तदिति । यस्याग्रेष्वनिरोधेनापूर्वात्पादस्मिरन्वयं द्रव्यस-
 न्मान्ने क्षणिकानां मन्यते तस्यैतत् ॥

इ० नेत्यपत्तिविनाशकारणोपलब्धेः ॥ १३ ॥

भा० उत्पत्तिकारणं तावदुपलभ्यते अवयवोपपत्त्यवस्थो-
 कादीनाम्, विनाशकारणोपलब्धे चटादीनामवयव-
 विभाजः । यद्येकमवयवमपि तावदवयवं निरुध्यते अनुपपत्तिर-
 वयवोपपत्तिरिति तस्याग्रेष्वनिरोधे निरन्वये वा पूर्वात्पादे न
 कारणमुपपत्तिरुपलभ्यते इति ॥

इ० क्षीरविनाशे कारणानुपलब्धिवद्ध्युत्पत्तिवच्च त-
 दुपपत्तिः ॥ १४ ॥

भा० यद्यनुपलब्धमात्रं क्षीरविनाशकारणं दध्युत्पत्ति-
 कारणञ्चाभ्यनुज्ञायते तदा स्रष्टिकोऽपरापरास्तु व्यक्तिषु
 विनाशकारणमुपपत्तिरिति दृश्यते तत्र तत्र विनाशकारण-
 यत्र प्रतीतिरिति दृश्यते तत्र तत्र विनाशकारण-

सू० विज्ञानोपपत्त्यानुपपत्तिः ॥ १५ ॥

भा० शीरविनाशसिद्धं शीरविनाशकारणं दधुत्यन्ति
सिद्धं दधुत्यन्तिकारणञ्च सञ्ज्ञतेऽतोऽनानुपपत्तिः । विप-
र्ययस्य स्रष्टिकादिषु द्रव्येषु अपरापरोत्पत्तौ व्यक्ती-
नां न सिद्धमसौत्यनुपपत्तिरेवेति, अत्र कश्चित् परि-
हारमाह ।

सू० न पयसः परिणामगुणान्तरप्रादुर्भावात् ॥
॥ १६ ॥

भा० पयसः परिणामो न विनाश इत्येक आह । परिणाम-
मयावस्थितस्य द्रव्यस्य पूर्वधर्मनिवृत्तौ धर्मान्तरोत्पत्ति-
रिति । गुणान्तरप्रादुर्भाव इत्यपर आह गुणान्तरप्रा-
दुर्भावस्य सतीद्रव्यस्य पूर्वगुणनिवृत्तौ गुणान्तरमुपपद्यत
इति स खल्वेकपक्षीभाव इव, अत्रतु प्रतिषेधः ॥

सू० व्यूहान्तराद्द्रव्यान्तरोत्पत्तिर्दर्शनं पूर्वद्रव्यनि-
वृत्तेरनुमानम् ॥ १७ ॥

भा० यद्यपूर्वगतवशादवयवव्यूहाद्द्रव्यान्तरेदधुत्यन्ते पृष्ठ-
तः

॥ अन्त्युत्पत्तिरिति कश्चित् मातुः ॥

भा. मा. पू. पयोद्वयोर्मात्रव्यभिचारेभ्यो निवर्तितव्य-
मीयते यथा नृदवयवानां मूत्राक्षराद्व्याप्तये व्याख्या-
मुत्पन्नायां पूर्वं नृदपिच्छद्रव्यं नृदवयवविभागेभ्यो निव-
र्तत इति नृदद्रव्यव्याख्यः पयोद्वयोर्मात्रव्यभिचारेभ्यो नि-
वर्तितव्यव्याख्यत्वादायक इति चत्वनुज्ञाय च
निष्कारणं श्रीरविनाथं दधुत्यादश्च प्रतिवेध उच्यते
इति ॥

सू० कचिद्दिनाशकारणानुपलब्धेः कचिन्नोपलब्धे-
रनेकान्तः ॥ १८ ॥

भा० चीरदधिवन्निष्कारणौ विनाशोत्पादौ स्फटिकादि-
व्यक्तीनामिति नायमेकान्त इति, कस्मात् हेत्वभावात्
नायहेतुरस्ति अकारणौ विनाशोत्पादौ स्फटिकादि-
व्यक्तीनां चीरदधिवत् न पुनर्विनाशकारणाभावात् कु-
लस्य विनाशः उत्पत्तिकारणाभावाद्योत्पत्तिः एवं स्फ-
टिकादिव्यक्तीनां विनाशोत्पत्तिकारणाभावादिनाशो-
त्पत्तिभाव इति निरधिष्ठानञ्च दृष्टान्तवचनम् गृह्य-
माणयोर्विनाशोत्पादयोः स्फटिकादिषु स्यादयमाशय-
वान् दृष्टान्तः चीरविनाशकारणानुपपन्नमिदं पक्षमि-
वचेति तौ तु न गृह्येते तस्मान्निरधिष्ठानोप्यं दृष्टान्त

इति, अथानुवाये च सादिकश्रोत्यादविनाशो योऽन-
 वाधकस्तस्मिन्नुपज्ञानादप्रतिषेधः । सुभावश्च निष्कारणो
 विनाशोत्यादौ स्फटिकादीनामित्यभ्यनुज्ञेयोऽयं बुद्धान्तः
 प्रतिषेद्धुमशक्यत्वात् शीरदधिवत्तुनिष्कारणो विनाशो-
 त्यादाविति शक्योऽयं प्रतिषेद्धुं कारणतो विनाशोत्प-
 न्तिदर्शनात् शीरदधोर्विनाशोत्पत्तौ पश्यता तत्कारण-
 मनुमेयम्, कार्यसिद्धं हि कारणमित्युपपन्नमनित्या बुद्धि-
 रिति । इदम् चिन्त्यते कस्येयं बुद्धिः आत्मोन्द्रियमनोऽ-
 र्थानां गुण इति प्रसिद्धोऽपि च खल्वयमर्थः परीक्षाशेषं
 प्रवर्त्तयामीति प्रक्रियते सोऽयं बुद्धौ सन्निकर्षोत्पत्तेः
 संग्रहः विज्ञेयस्याग्रहणादिति । तत्रायं विशेषः ॥

सू० नेन्द्रियार्थयोस्तद्विनाशेऽपि ज्ञानावस्थानात् ॥
 ॥ १६ ॥

भा० नेन्द्रियाणामर्थानां वा गुणो ज्ञानं तेषां विनाशे ज्ञा-
 नस्य भावात्, भवति खल्विदमिन्द्रियेऽर्थे च विनष्टे ज्ञानम-
 द्राक्षमिति न च ज्ञातरि विनष्टे ज्ञानमवितुमर्हति च-
 न्यत् खलु चैतदिन्द्रियार्थसन्निकर्षजं ज्ञानं यदिन्द्रियार्थ-
 विनाशे न भवति, इदमन्यदात्ममनःसन्निकर्षजं तस्य सु-
 त्तोभाव इति, सतिः खल्वियमद्राक्षमिति पूर्ववद्वि-
 पद्या न च विज्ञातरि नष्टे पूर्वोपसम्भेः स्वरूपं युक्तम्, न

भा० वाङ्मदृष्टमन्त्रः कर्तव्यः न च मनसि ज्ञातव्यं युगेनान्येनान्येन
 मन्त्रमिन्द्रियार्थयोश्चादत्तं प्रतिपादयितुम्, अथ तद्वि
 द्मनीगुणो ज्ञानम् ॥

सू० युगपज्ज्ञेयानुपलब्धेऽन मनसः ॥ २० ॥

भा० युगपज्ज्ञेयानुपलब्धिरन्तःकरणस्य लिङ्गम्, तत्र युग-
 पज्ज्ञेयानुपलब्ध्यानुमीयते अन्तःकरणं न तस्य गुणो ज्ञा-
 नम्, कस्य तर्हि, ज्ञस्य वशित्वात्, वशी ज्ञाता, वश्यं कर-
 णम्, ज्ञानगुणत्वे च करणभावनितृप्तिः प्राणादिसाध-
 नस्य च ज्ञातुर्गन्धादिज्ञानभावादनुमीयते अन्तःकरण-
 साधनस्य सुखादिज्ञानं कतिचेति तत्र यज्ज्ञानगुणं च
 आत्मा, यस्तु सुखाद्युपलब्धिसाधनमन्तःकरणं मनस्यदिति
 संज्ञाभेदमात्रस्यार्थभेदरति, युगपज्ज्ञेयानुपलब्धेऽप्योगिनः
 इति *वार्थः, योगी खलु अद्वैतं प्रादुर्भूताद्यां विकरण-
 धर्मा निर्मास्य सेन्द्रियाणि शरीरान्तराणि तेषु तेषु युग-
 पज्ज्ञेयानुपलभते, तथैतदिभौ ज्ञातव्यं पश्यते नापौ मन-
 सीति, विभुत्वे वा मनसो ज्ञानस्य नात्मगुणत्वप्रतिषेधः,
 विभु मनस्यन्तःकरणभूतमिति तस्य सर्वेन्द्रियैर्युगपत् संयो-
 नाद्युगपत् विमान्युत्पत्तेरिति ॥

सू० तदात्मगुणत्वेऽपि तुल्यम् ॥ २१ ॥

भा० निमुखात् । अनेकिये संयुक्त इति पुनरुक्त्यर्थोऽस्ति ।
अथ हति ॥

ख० इन्द्रियैर्मनसः सन्निकर्षाभावात् तदनुत्पत्तिः ॥
॥ २२ ॥

भा० गन्धाद्युपलब्धेरिन्द्रियार्थसन्निकर्षवद्विच्यमनःसन्निक-
र्षोऽपि कारणम् तस्य चाद्यौगपद्यमणुतात् मनसः, अद्यौ-
गपद्यादनुत्पत्तिं युगपज्ज्ञानानामात्मगुणत्वेऽपीति । यदि
पुनरात्मेन्द्रियार्थसन्निकर्षमात्राद्गन्धादिज्ञानमुत्पद्यते ॥

ख० नोत्पत्तिकारणानपदेशात् ॥ २३ ॥

भा० आत्मेन्द्रियसन्निकर्षमात्राद्गन्धादिज्ञानमुत्पद्यते इति
ना नोत्पत्तिकारणमपदिश्यते येनैतत् प्रतिपद्येमहीति ॥

ख० विनाशकारणानुपलब्धेऽवस्थाने तन्नित्यत्वप्र-
सङ्गः ॥ २४ ॥

भा० तदात्मगुणत्वेऽपि तुल्यमित्येतदनेन समुचीयते । द्विवि-
धो हि गुणनाशहेतुः, गुणानामाश्रयाभावो विरोधी

गुणः सित्यात्माज्ञानमेषां गुणः पूर्णः विरोधी च बुद्धे
मुणो न गृह्यते तस्मादात्मगुणत्वे सति बुद्धेर्नित्यत्वप्रसङ्गः ॥

सू० अनित्यत्वग्रहाद्बुद्धेर्बुद्धान्तरादिनाशः शब्दवत्
॥ २५ ॥

भा० अनित्या बुद्धिरिति सर्वशरीरिणां प्रत्यात्मवेदनीय-
मेतत् गृह्यते च बुद्धिसन्तानस्तत्र बुद्धेर्बुद्धान्तरं विरोधी
गुण इत्यनुमीयते, यथा शब्दसन्ताने शब्दः शब्दान्तर-
विरोधीति, असङ्ख्येषु ज्ञानकारितेषु संस्कारेषु सतिहे-
तुव्यात्मसमवेत्तेव्यात्ममनसोश्च सन्निकर्षं समाने सति-
हेतौ सति न कारणस्यायौगपद्यमस्तीति युगपत् सत्यः
प्रादुर्भवेद्युः यदि बुद्धिरात्मगुणः स्यादिति । तत्र कश्चित्
सन्निकर्षस्यायौगपद्यमुपपादयिष्यन्नाह ॥

सू० ज्ञानसमवेतात्मप्रदेशसन्निकर्षान्मनसः स्मृत्यु-
त्पत्तेर्न युगपदुत्पत्तिः ॥ २६ ॥

भा० ज्ञानसाधनः संस्कारो ज्ञानमित्युच्यते ज्ञानसंज्ञाते-
रात्मप्रदेशः पर्यायेण मनः सन्निकृत्यते आत्ममनःसन्नि-
कर्षार्थं सत्ययोऽपि पर्यायेण भवन्तीति ॥

सू० शरीरवृत्तिरित्यात्मनसः ॥ २७ ॥

भा० - इन्द्रियात्मनो मनसो संयोगो विपश्यमानकर्मप्रवृत्ति-
सहितो जीवनमिष्यते । तथास्य प्राक् प्रापसादेकः शरी-
रे वर्तमानस्य मनसः शरीराद्विर्ज्ञानसंज्ञातेरात्मप्रदे-
संयोगो नोपपद्यत इति ॥

सू० साध्यत्वादहेतुः ॥ २८ ॥

भा० - विपश्यमानकर्मप्रवृत्तिमात्रं जीवनम्, एवञ्च सति साध्य-
मन्तःशरीरवृत्तित्वं मनस इति ॥

सू० स्मरतः शरीरधारणोपपत्तेरप्रतिषेधः ॥ २९ ॥

भा० - सुसूक्ष्मया खल्वयं मनः प्रणिदधानः चिरादपि कश्चि-
दर्थं स्मरति - स्मरतश्च शरीरधारणं दृश्यते आत्मसगः
सन्निकर्षजस्य प्रयत्नो द्विविधः धारकः प्रेरकश्च, निःसृतं च
शरीराद्विर्भगसि धारकस्य प्रयत्नस्याभावाद्बुद्ध्यात्पतनं
स्यात् शरीरस्य स्मरत इति ॥

सू० न तदाशुगतिरित्यात्मनसः ॥ ३० ॥

भा० - आशुगतिरित्यात्मनसः त्रिभिः शरीरादात्मप्रदेशेन ज्ञान-
संज्ञातेन सन्निकर्षः प्रयत्नगतस्य च प्रयत्नोत्पादकमुभयं

भा० धुव्यत इति, उत्पद्यते वा शरीरं प्रवृत्तं प्रतीतमिदं शरीरं
मनसोऽतस्त्वनीपपद्यं शरीरमिति ॥

सू० न स्मरणकालानियमात् ॥ ३१ ॥

भा० किञ्चित् क्षिप्रं स्मर्यते किञ्चिच्चिरेण, यदा चिरेण
तदा सुसुषुप्त्या मनसि धार्यमाणे चिन्ताप्रवृत्ते सति कस्य-
चिदर्थस्य लिङ्गभूतस्य चिन्तनमाराधितं स्मृतिहेतुर्भवति
तच्चैतच्चिरनिश्चरिते मनसि नोपपद्यते इति, शरीरसंयो-
गानपेक्षयात्मनः संयोगो न स्मृतिहेतुः शरीरस्य भोगा-
द्यतनत्वात् उपभोगाद्यतनं पुरुषस्य ज्ञातुः शरीरं न ततो
निश्चरितस्य मनस आत्मसंयोगमात्रं ज्ञानसुखादीना-
मुत्पत्तौ कल्प्यते, कृत्तौ वा शरीरवैयर्थ्यमिति ॥

सू० आत्मप्रेरणयदृच्छाप्रवृत्तयः न संयोगविशेषः
॥ ३२ ॥

भा० आत्मप्रेरणेन वा मनसो वहिः शरीरात् संयोगविशे-
षः ज्ञातुः यदृच्छया वाक्यकृतया, ज्ञतया वा मनसः
वर्त्मना ज्ञानप्रपत्तिः, कथम् स्मर्यमानादृच्छातः स्मरण-
ज्ञानवर्त्मना, यदि तावदात्माऽमुद्यार्थस्य स्मृतिहेतुः

मनः संस्कारः, अतस्मिन्नात्मप्रदेहे प्रसवेतद्येन मनः संस्कारः
 भवति मनः प्रेरयति तदा सत्येवासावर्धः भवति न
 सत्यः । न चात्मप्रत्यक्षचात्मप्रदेहः संस्कारोवा तथा-
 नुपपन्नात्मप्रत्यक्षेण संवित्तिरिति, सुसूक्ष्मया चायं मनः
 प्रणिदधानश्चिरादपि कश्चिदर्थं स्मरति नाकस्मात्, शलक्ष
 मनसोनास्ति ज्ञानप्रतिषेधादिति, एतच्च ॥

सू० व्यासक्तमनसः पादव्यथनेन संयोगविशेषेण
 समानम् ॥ ३३ ॥

भा० यदा खल्वयं व्यासक्तमनः कचिद्देशे शर्करया कष्टकेन
 वा पादव्यथनमाप्नोति तदात्ममनःसंयोगविशेषएषितव्यः,
 दृष्टं हि दुःखं दुःखवेदनश्चेति तत्रायं समानः प्रति-
 षेधः, यदुच्छ्वासा तु विशेषो नाकस्मिकी क्रिया, नाकस्मिकः
 संयोग इति, कर्मादृष्टमुपभोगार्थं क्रियाहेतुरितिचेत्
 समानम्, कर्मादृष्टं पुरुषस्य पुरुषोपभोगार्थमसि क्रिया-
 हेतुर्वा दुःखं दुःखसंवेदनश्च सिध्यतीत्येवञ्चेन्नान्यथे समानं
 सतिहेतावपि संयोगविशेषो भवितुमर्हति । तच्च यदुक्त-
 मात्मप्रेरणयदुच्छ्वासाभिसं न संयोगविशेषइत्ययम-
 प्रतिषेध इति पूर्वसु प्रतिषेधो नामाःशरीरदृष्टित्वा-
 ज्ञानव इति, कः खल्विदानीं कारणयोगपक्षसद्भावे इव-
 परस्परपक्षहेतुमिति ॥

सू० प्रणिधानलिङ्गादिज्ञानानामयुगपद्भावाद्युग-
पदस्मरणम् ॥ ३४ ॥

भा० यथा खल्वात्ममनसोः सन्निकर्षः संस्कारश्च स्मृतिहेतु-
रेवं प्रणिधानं लिङ्गादिज्ञानानि तानि च न युगपद्भव-
न्ति तत्कृता स्मृतीनां युगपदनुत्पत्तिरिति ॥

सू० प्राति*भवत्तु प्रणिधानाद्यनपेक्षे स्मार्त्ते यौगपद्य-
प्रसङ्गः ॥ ३५ ॥

भा० यत् खल्विदं प्रातिभमिव ज्ञानं प्रणिधानाद्यनपेक्षं
स्मार्त्तमुत्पद्यते कदाचित्तस्य युगपदुत्पत्तिप्रसङ्गोहेतु-
भावात् सतः स्मृतिहेतोरसम्बेदनात् प्रातिभेन समाना-
भिमानः, वङ्गर्थविषये वै चिन्ताप्रबन्धे कस्यिदेवार्थः कस्य-
चित् स्मृतिहेतुः, तस्यानुचिन्तनात् तस्य स्मृतिर्भवति, न-
चायं स्मार्त्ता सर्व्वे स्मृतिहेतुं संवेदयते, एवं मे स्मृतिरुत्प-
न्नेत्यसंबेदनात्, प्रातिभमिवज्ञानमिदं स्मार्त्तमिति । प्रा-
तिभे कथमिति चेत् पुरुषकर्माविशेषादुपभोगवन्नियमः ।
प्रातिभमिदानीं ज्ञानं युगपत् कस्मात् नोत्पद्यते यथो-

भा० पभोगार्थं कर्म युगपदुपभोगं न करोति । एवं पुरुषक-
र्मविशेषः प्रतिभाहेतुर्न युगपदनेकं प्रातिभं ज्ञानमुत्पा-
दयति, हेत्वभावादयुक्तमेतदिति चेत् न करणस्य प्रत्यय-
पर्याये सामर्थ्यात्, उपभोगवन्नियमइत्यस्ति दृष्टान्तः,
हेतुर्नास्तीति चेन्नान्यमे न करणस्य प्रत्ययपर्याये साम-
र्थ्यात् नैकस्मिन् ज्ञेये युगपदनेकं ज्ञानमुत्पद्यते, नचाने-
कस्मिंस्तदिदं दृष्टेन प्रत्ययपर्यायेणानुमेयं करणसामर्थ्य-
मित्यभूतमिति न ज्ञातुर्विकरणधर्माणां देहनानाले
प्रत्यययोगपद्यादिति, अयञ्च द्वितीयः प्रतिषेधः अव-
स्थितशरीरस्य चानेकज्ञानसमवायादेकप्रदेशे युगपदने-
कार्यस्मरणं स्यात् कचिदेवावस्थितशरीरस्य ज्ञातुरिन्द्रि-
यार्थप्रबन्धेन ज्ञानमनेकमेकस्मिन्नात्मप्रदेशे समवैति तेन
यदा मनःसंयुज्यते तदा ज्ञातपूर्वस्थानेकस्य युगपत्
स्मरणं प्रसज्यते प्रदेशस्य संयोगपर्यायाभावादिति आत्म-
प्रदेशानामद्रव्यान्तरत्वादेकार्थसमवायस्याविशेषे स्मृतिर्यौ-
गपद्यप्रतिषेधानुपपत्तिः, शब्दसन्ताने तु श्रोत्राधिष्ठान-
प्रत्यासत्त्या शब्दश्रवणवत् संस्कारप्रत्यासत्त्या मनसः
स्मृत्युत्पत्तेर्न युगपदुत्पत्तिप्रसङ्गः, पूर्वएव तु प्रतिषेधो
नानेकज्ञानसमवायादेकप्रदेशे युगपत् स्मृतिप्रसङ्ग इति,
यत्पुरुषधर्मी ज्ञानमन्तःकरणस्येच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदुःखानि
धर्मा इति कस्यापि दर्शनं तत् प्रतिषिध्यते ॥

सू० अस्येच्छाद्वेषनिमित्तत्वादारम्भनिवृत्त्योः ॥ ३६ ॥

भा० अयं खलु जानीते तावत् इदं मे सुखसाधनमिदं मे
 दुःखसाधनमिति, ज्ञातं सुखसाधनमाप्नुमिच्छति दुःखसा-
 धनं हातुमिच्छति, प्राप्तुं* इच्छाप्रयुक्तस्यास्य सुखसाधना-
 वाप्तये समीहाविशेषआरम्भः, जिहासाप्रयुक्तस्य दुःखसाध-
 नपरिवर्जनं निवृत्तिरेव ज्ञानेच्छाप्रयत्नसुखदुःखानामे-
 केनाभिसम्बन्धः एककर्तृकत्वं ज्ञानेच्छाप्रवृत्तीनां समाना-
 श्रयत्वञ्च, तस्माज्ज्ञेच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदुःखानि धर्माः ना-
 चेतनस्त्विति, आरम्भनिवृत्त्येव प्रत्यगात्मनि दृष्टत्वात्पर-
 चानुमानं वेदितव्यमिति । अत्र भूतचैतनिक आह ॥

सू० तल्लिङ्गत्वादिच्छाद्वेषयोः पार्थिवाद्येषप्रतिषेधः
 ॥ ३७ ॥

भा० आरम्भनिवृत्तिलिङ्गाविच्छाद्वेषाविति यस्मादरम्भनि-
 वृत्ती तस्मैच्छाद्वेषौ तस्य ज्ञानमिति प्राप्तं पार्थिवाप्यतै-
 वसवायवीथानां शरीराणामारम्भनिवृत्तिदर्शनादिच्छा-
 द्वेषज्ञानैर्योग इति चैतन्यम् ॥

सू० परश्चादिधारम्भनिवृत्तिदर्शनात् ॥ ३८ ॥

भा० शरीरेचैतन्यनिवृत्तिरारम्भनिवृत्तिदर्शनादिच्छाद्वेष-

भा० ज्ञानैर्योग इति प्राप्तम् परम्यादेः करणस्यारम्भनिवृत्तिदर्शनाच्चैतन्यमिति । अथ शरीरस्तेष्वादिभिर्योगः परम्यादेस्तु करणस्यारम्भनिवृत्ती व्यभिचरतः न तर्ह्युभयं हेतुः पार्थिवाप्यतैजसवायवीयानां शरीराणामारम्भनिवृत्तिदर्शनादिच्छादेषज्ञानैर्योग इति । अयन्तर्ह्यन्योर्थः तस्मिन्नुत्पादिच्छादेषयोः पार्थिवाद्येष्वप्रतिषेधः पृथिव्यादीनां भूतानामारम्भस्तावत् त्रसस्यावरशरीरेषु तदवयवव्यूहलिङ्गः प्रवृत्तिविशेषः, लोष्टादिषु च लिङ्गाभावात् प्रवृत्तिविशेषाभावोनिवृत्तिः आरम्भनिवृत्तिलिङ्गाविच्छादेषाविति पार्थिवाप्येष्वणुषु तद्दर्शनादिच्छादेषयोस्तद्योगाज्ज्ञानयोग इति सिद्धं भूतचैतन्यमिति ॥

सू० कुम्भादिष्वनुपलब्धेरहेतुः ॥ ३९ ॥

भा० कुम्भादिमृदवयवानां व्यूहलिङ्गः प्रवृत्तिविशेष आरम्भः, शिकतादिषु प्रवृत्तिविशेषाभावोनिवृत्तिः, न च मृत्शिकतानामारम्भनिवृत्तिदर्शनादिच्छादेषप्रयत्नज्ञानैर्योगः, तस्मात् तस्मिन्नुत्पादिच्छादेषयोरित्यहेतुरिति ॥

सू० नियमानियमौ तु तद्विशेषकौ ॥ ४० ॥

भा० तयोरिच्छादेषयोरनियमानियमौ विशेषकौ भेदकौ शस्तेच्छादेषनिमित्ते प्रवृत्तिनिवृत्तौ न स्वाश्रये किन्त-

भा० हिं प्रयोज्याश्रये, तत्र प्रयुज्यमानेषु भूतेषु प्रवृत्तिनिवृत्ती
 स्तः न सर्वेषु इत्यनियमोपपत्तिः । यस्य तु *ज्ञानाद्भूता-
 नामिच्छाद्वेषनिमित्ते आरम्भनिवृत्ती स्वाश्रये तस्य नि-
 यमः स्यात् । यथा भूतानां गुणान्तरनिमित्ता प्रवृत्तिर्गुण-
 प्रतिबन्धाच्च निवृत्तिर्भूतमात्रे भवति नियमेन एवं भूत-
 मात्रे ज्ञानेच्छाद्वेषनिमित्ते प्रवृत्तिनिवृत्ती स्वाश्रये
 स्याताम् । तस्मात् प्रयोजकाश्रिताज्ञानेच्छाद्वेषप्रयत्नाः
 प्रयोज्याश्रये तु प्रवृत्तिनिवृत्ती इति सिद्धम् । एकश-
 रीरे तु ज्ञाद्वयवज्जलं निरनुमानम् । भूतचैतनिकस्यैकश-
 रीरे बह्वनि भूतानि ज्ञानेच्छाद्वेषप्रयत्नगुणानीति ज्ञाद्व-
 यवज्जलं प्राप्तम्, श्रामिति ब्रुवतः प्रमाणं नास्ति । यथा
 नानाशरीरेषु नाना ज्ञातारोबुद्ध्यादिगुणव्यवस्थानात्, एव-
 मेकशरीरेपि बुद्ध्यादिव्यवस्थानुमानं स्यात् ज्ञाद्वयवज्जल-
 स्तेति दृष्टस्यान्यगुणनिमित्तः प्रवृत्तिविशेषो भूतानाम्
 सोऽनुमानमन्यत्रापि दृष्टः करणलक्षणेभ्यः भूतेषु परश्चादिषू-
 पादानलक्षणेभ्यः च मृत्प्रभृतिष्वन्यगुणनिमित्तः प्रवृत्ति-
 विशेषः सोऽनुमानम् अन्यत्रापि च । त्रसस्यावरशरीरेषु त-
 दवयवव्यूहलिङ्गः प्रवृत्तिविशेषो भूतानामन्यगुणनिमित्त इति
 स च गुणः प्रयत्नसमानाश्रयः संस्कारो धर्माधर्मसमा-
 ख्यातः सर्वार्थः पुरुषार्थाराधनाय प्रयोजको भूतानां प्रय-

भा० त्ववेदिति । आत्मास्त्वहेतुभिरात्मनित्यत्वहेतुभिश्च भूत-
चैतन्यप्रतिषेधः कृतोवेदितव्यः, नेन्द्रियार्थयोस्तद्विनाशेपि
ज्ञानावस्थानादिति च समानः प्रतिषेध इति, क्रियामाचं
क्रियोपरममाचञ्च प्रवृत्तिनिवृत्ती इत्यभिप्रेत्योक्तान्तलि-
ङ्गत्वादिच्छादेषयोः पार्थिवाद्येष्वप्रतिषेधः, अन्यथात्मिमे
आरम्भनिवृत्ती आख्याते न च तथाविधे पृथिव्यादिषु दृ-
श्येते, तस्मादयुक्तं तल्लिङ्गत्वादिच्छादेषयोः पार्थिवाद्येष्व-
प्रतिषेध इति । भूतेन्द्रियमनसां समानः प्रतिषेधोमनस्त्व-
दाहरणमात्रम् ॥

सू० यथोक्तहेतुत्वात् पारतन्त्र्यादकृताभ्यागमाच्च न
मनसः ॥ ४१ ॥

भा० इच्छादेषप्रयत्नसुखदुःखज्ञानान्यात्मनोलिङ्गमित्यतः
प्रवृत्तिं यथोक्तं संगृह्यते तेन भूतेन्द्रियमनसाच्चैतन्य
प्रतिषेधः । पारतन्त्र्यात् परतन्त्राणि भूतेन्द्रियमनसि-
धारणप्रेरणव्यूहनक्रियासु प्रयत्नवशात् प्रवर्तन्ते चैत-
न्ये पुनः स्वतन्त्राणि स्युरिति । अकृताभ्यागमाच्च प्रवृत्ति-
र्वाङ्मुद्भिश्चरोरारम्भ इति चैतन्ये भूतेन्द्रियमनसां पर-
कृतं कर्म पुरुषेण भुज्यत इति स्यात् अचैतन्ये तु तत्साधनस्य
स्वकृतकर्मफलोपभोगः पुरुषस्येत्युपपद्यत इति, अथायं सि-
द्धेऽप संयत्तः ॥

सू० परिशेषाद्यथोक्तहेतूपपत्तेश्च ॥ ४२ ॥

भा० आत्मगुणोज्ञानमिति प्रकृतम्, परिशेषो नाम प्रसक्त-
प्रतिषेधेऽन्यत्राप्रसङ्गाच्छिष्यमाणेसम्प्रत्ययः, भूतेन्द्रियमन-
सां प्रतिषेधे द्रव्यान्तरं न प्रसज्यते शिष्यते चात्मा तस्य
गुणोज्ञानमिति ज्ञायते, यथोक्तहेतूपपत्तेश्चेति दर्श-
नस्यर्शनाभ्यामेकार्थग्रहणादित्येवमादीनामात्मप्रतिपत्तिहे-
तूनामप्रतिषेधादिति परिशेषज्ञापनार्थं प्रकृतस्थापना-
दिज्ञानार्थञ्च यथोक्तहेतूपपत्तिवचनमिति । अथवोप-
पत्तेश्चेति हेतुन्तरमेवेदम् नित्यः खल्वयमात्मा यस्मादे-
कस्मिन् शरीरे धर्मश्चरित्वा कायभेदात् स्वर्गे देवेषूपपद्यते
अधर्मश्चरित्वा देहभेदान्नरकेषूपपद्यत इति उपपत्तिः
शरीरान्तरप्राप्तलक्षणा, सा सति सत्ये नित्ये चाश्रयवती
बुद्धिप्रबन्धमात्रेण निरात्मके निराश्रया नोपपद्यत इति ।
एकसत्त्वाधिष्ठानस्थानेकशरीरयोगः संसार उपपद्यते ।
शरीरप्रबन्धोच्छेदश्चापवर्गानुक्तिरित्युपपद्यते, बुद्धिसन्नति-
मात्रे त्वेकसत्त्वानुपपत्तेर्न कश्चिद्दीर्घमध्वानं सन्भावति न
कश्चिच्छरीरप्रबन्धादिमुच्यत इति संसारापवर्गानुपपत्ति-
रिति बुद्धिसन्नतिमात्रे च सत्त्वभेदात् सर्वमिदं प्राणिव्यव-
हारजातमप्रतिसंहितमव्यावृत्तमपरिनिष्ठमञ्च स्यात्, ततः
स्मरणाभावान्नान्यदृष्टमन्यः स्मरतीति, स्मरणञ्च खलु
पूर्वज्ञातस्य समानेन ज्ञात्वा ग्रहणम् अज्ञासिषममुमर्थं

भा० ज्ञेयमिति, सोयमेको ज्ञाता पूर्वज्ञातमर्थं दृष्ट्वाति त-
च्चास्य ग्रहणं स्मरणमिति, तद्वुद्धिप्रबन्धभावे निरात्मके
नोपपद्यते ॥

सू० स्मरणत्वात्मनोऽज्ञस्वाभाव्यात् ॥ ४३ ॥

भा० उपपद्यत इति, आत्मन एव स्मरणं न बुद्धिसन्तति-
मात्रस्येति, तु शब्दोऽवधारणे, कथम् अज्ञस्वाभावत्वात् अद-
त्यस्य स्वाभावः स्वोद्यमः । अयं खलु ज्ञास्यति जानाति अ-
ज्ञासीदिति त्रिकालविषयेणानेकेन ज्ञानेन सम्बध्यते तच्चा-
स्य त्रिकालविषयं ज्ञानं प्रत्यात्मवेदनीयम् ज्ञास्यामि जा-
नामि अज्ञासिषमिति वर्तते तद्यथायं स्वोद्यमस्तस्य स्मरणं
न बुद्धिप्रबन्धभावे निरात्मकस्येति । स्मृतिहेतूनाम-
योगपद्याद्युपपदस्मरणमित्युक्तम्, अथ केभ्यः स्मृतिरुत्पद्यते
इति, स्मृतिः खलु ॥

सू० प्रणिधाननिबन्धाभ्यासलिङ्गलक्षणसादृश्यपरि-
ग्रहाश्रयाश्रितसम्बन्धानन्तर्यवियोगैककार्यवि-
रोधातिशयप्राप्तिव्यवधानमुखदुःखेच्छाद्वेषभ-
याऽर्थित्वक्रियारागधर्माधर्मनिमित्तेभ्यः ॥ ४४ ॥

भा० सुसूक्ष्मया मनसो धारणं प्रणिधानम्, सुसूक्ष्मतलिङ्ग-

भा० चिन्तनस्यार्थस्यतिकारणम्, निवन्धः स्वस्वेकग्रन्थोपपन्नो-
 ऽर्थानाम्, एक ग्रन्थोपपत्ताः स्वस्वार्थाग्रन्थोन्यस्यतिहेतवश्चानु-
 पूर्व्येतरथा वा भवन्तीति । धारणाशास्त्रकृते वा, प्रज्ञा
 तेषु वस्तुषु स्मर्त्तव्यानामुपनिःक्षेपोनिवन्ध इति, अभ्या-
 सस्तु समाने विषये ज्ञानानामभ्यावृत्तिरभ्यासजनितः
 संस्कारआत्मगुणोऽभ्यासशब्देनोच्यते स च स्यतिहेतुः
 समान इति, लिङ्गं पुनः संयोगिसमवायेकार्यसमवायिवि-
 रोधिचेति, संयोगी यथा धूमोऽग्नेः, गोर्विषाणं, पाणिः पा-
 दस्य, रूपं स्पर्शस्य, अभूतं भूतस्येति । लक्षणं पञ्चवयवस्य
 गोत्रस्य स्यतिहेतुः विदानामिदं गर्गाणामिदमिति, सा-
 दृश्यं चित्रगतं प्रतिरूपकं देवदत्तस्येत्येवमादि, परिग्रहात्
 खेन वा स्वामी स्वामिना वा स्वं स्मर्यते, आश्रयात् ग्रामण्या
 तदधीनं स्मरति । आश्रितात् तदधीनेन ग्रामण्यमिति,
 सम्बन्धात् अन्तेवासिना गुरुं स्मरति चत्विजा याज्यमिति,
 आनन्तर्यात् इतिकरणीयेष्वर्थेषु, वियोगात् घेन विप्रयु-
 ज्यते तद्वियोगप्रतिसम्बेदी भृशं स्मरति, एककार्यात्
 कर्त्तृन्तरदर्शनात् कर्त्तृन्तरे स्यतिः, विरोधात् विजिगी-
 षमाणयोरन्यतरदर्शनादन्यतरः स्मर्यते, अतिशयात् येना-
 तिशयः उत्पादितः, प्राप्तेः, यतो येन किञ्चित् प्राप्तमाप्तव्यं
 वा भवति तमभीक्ष्णं स्मरति, व्यवधानात् कोशादिभिर-
 सिप्रभृतीनि स्मर्यन्ते, सुखदुःखाभ्यां तद्वेतुः स्मर्यते, इच्छा-
 द्वेषाभ्यां यमिच्छति यच्च द्वेष्टि तं स्मरति, भयान् यतोवि-

भा० भेति, अर्थित्वात् येनार्थी भोजनेनाच्छादनेन वा, क्रिया-
या रथेन रथकारं स्मरति, रागात् यस्यां स्त्रियां रक्तो भ-
वति तामभोक्ष्णं स्मरति, धर्मात् जात्यन्तरस्मरणमिह चा-
धीतश्रुतावधारणमिति, अधर्मात् प्रागनुभूतदुःखसाधनं
स्मरति, न चैतेषु निमित्तेषु युगपत्संवेदनानि भवन्तीति
युगपदस्मरणमिति, निदर्शनञ्चेदं स्मृतिहेतूनां न परि-
सङ्ख्यानमिति, अनित्यायाश्च बुद्धावुत्पन्नापवर्गित्वात् का-
लान्तरावस्थानाच्चानित्यानां संशयः । किमुत्पन्नापवर्गिणी
बुद्धिः शब्दवत् आहोस्वित् कालान्तरावस्थायिनी कुम्भव-
दिति, उत्पन्नापवर्गिणीति पचः परिगृह्यते कस्मात् ॥

सू० कर्मानवस्थायिग्रहणात् ॥ ४५ ॥

भा० कर्मणोऽनवस्थायिनो ग्रहणादिति चिप्रस्येवोरापतनात्
क्रियासन्तानो गृह्यते प्रत्ययनियमाच्च बुद्धीनां क्रियास-
न्तानवदुद्भिः सन्तानोपपत्तिरिति अवस्थितग्रहणे च व्यव-
धीयमानस्य प्रत्यक्षनिवृत्तेः अवस्थिते च कुम्भे गृह्यमाणेन
सन्तानेनैव बुद्धिर्वर्तते प्रागव्यवधानात् तेन व्यवहिते प्र-
त्यक्षं ज्ञानं निवर्तते कालान्तरावस्थाने तु बुद्धेर्दृश्यव्यव-
धानेऽपि प्रत्यक्षमवतिष्ठेतेति, स्मृतिश्चालिङ्गं बुद्धवस्थाने

भा० संस्कारस्य बुद्धिजस्य सतिहेतुत्वात्, यस्य मन्येतावतिष्ठते
 बुद्धिः दृष्टाच्च बुद्धिविषये सतिः सा च बुद्ध्यावनित्यायां
 कारणाभावान्नस्यादिति, तदिदमलिङ्गं कस्मात् बुद्धिर्जाच्च
 संस्कारो गुणान्तरं सतिहेतुर्न बुद्धिरिति चेत्तत्रावाद-
 युक्तमिति चेत् ॥

सू० बुद्धवस्थानात् प्रत्यक्षत्वे स्मृत्यभावः ॥ ४६ ॥

भा० यावदवतिष्ठते बुद्धिस्तावदसौ बोद्धव्योऽर्थः प्रत्यक्षः,
 प्रत्यक्षे च सतिरनुपपन्नेति ॥

सू० अव्यक्तग्रहणमनवस्थायित्वात् विद्युत्सम्पाते रू-
 पाव्यक्तग्रहणवत् ॥ ४७ ॥

भा० यद्युत्पन्नाऽपवर्गिणी बुद्धिः प्राप्तमव्यक्तं बोद्धव्यस्य ग्र-
 हणम्, यथा विद्युत्सम्पाते वैद्युतस्य प्रकाशस्यानवस्थानाद-
 व्यक्तं रूपग्रहणमिति व्यक्तन्तु द्रव्याणां ग्रहणं तस्माद्युक्त-
 मिति चेत् ॥

सू० हेतूपादानात् प्रतिषेद्धव्याभ्यनुज्ञा ॥ ४८ ॥

भा० उत्पन्नापवर्गिणी बुद्धिरिति प्रतिषेद्धव्यन्तदेवाभ्यनु-
 ज्ञायते विद्युत्सम्पाते रूपाव्यक्तग्रहणवदिति यथाव्यक्तं

भा० ग्रहणं तत्रोत्पन्नापवर्गिणी बुद्धिरिति ग्रहणहेतुविकल्पाद्ग्रह-
णविकल्पो न बुद्धिविकल्पात्, यदिदं कचिदव्यक्तं ग्रहणमयं
विकल्पो ग्रहणहेतुविकल्पात्, यत्रानवस्थितो ग्रहणहेतु-
स्तत्राव्यक्तं ग्रहणम् यत्रावस्थितस्तत्र व्यक्तं न तु बुद्धेरवस्था-
नानवस्थानाभ्यामिति, कस्मात् अर्थग्रहणं हि बुद्धिः यत्तद-
र्थग्रहणमव्यक्तं व्यक्तं वा बुद्धिः सेति विशेषाग्रहणे च सामा-
न्यग्रहणमात्रमव्यक्तग्रहणम् तत्र विषयान्तरे बुद्धान्तरानु-
त्पत्तिर्निमित्ताभावात्, यत्र समानधर्मायुक्तश्च धर्मी गृह्यते
विशेषधर्मायुक्तश्च तद्व्यक्तं ग्रहणम्, यत्र तु विशेषेऽगृह्यमाणे
सामान्यग्रहणमात्रं तदव्यक्तं ग्रहणम्, समानधर्मायोगाच्च
विशिष्टधर्मायोगो विषयान्तरम् तत्र यद्ग्रहणं न भवति
तद्ग्रहणनिमित्ताभावात् न बुद्धेरनवस्थानादिति यथा-
विषयश्च ग्रहणं व्यक्तमेव प्रत्यर्थनियतत्वाच्च बुद्धीनाम्
सामान्यविषयश्च ग्रहणं स्वविषयं प्रत्यव्यक्तं विशेषविषय-
श्च ग्रहणं स्वविषयं प्रति व्यक्तम्, प्रत्यर्थनियता हि बुद्धयः,
तदिदमव्यक्तग्रहणं देशितं क विषये बुद्धानवस्थानकारितं
स्यादिति धर्माणस्तु धर्मभेदे बुद्धिनानालस्य भावाभावा-
भ्यां तदुपपत्तिः, धर्माणः खल्वर्थस्य समानाश्च धर्माविशि-
ष्टाश्च तेषु प्रत्यर्थनियता नानाबुद्धयस्ता उभयोऽयदा ध-
र्माणि वर्तन्ते तदा व्यक्तं ग्रहणम् धर्माणमभिप्रेत्य यदा तु
सामान्यग्रहणमात्रं तदाऽव्यक्तं ग्रहणमिति, एवं धर्माण-
मभिप्रेत्य व्यक्ताव्यक्तयोर्ग्रहणयोरुपपत्तिरिति, न वेदम-

भा० व्यक्तं ग्रहणं बुद्धेर्बोद्धव्यस्य वा ऽनवस्थायित्वादुपपद्यत इति
इदं हि न ॥

सू० प्रदीपार्चिःसन्तत्यभिव्यक्तग्रहणवत्तद्ग्रहणम् ॥
॥ ४६ ॥

भा० अनवस्थायित्वेऽपि बुद्धेस्तेषां द्रव्याणां ग्रहणं प्रतिप-
त्तव्यम्, कथम् प्रदीपार्चिःसन्तत्यभिव्यक्तग्रहणवत् प्रदी-
पार्चिषां सन्तत्या वर्त्तमानानां ग्रहणानवस्थानं ग्राह्यान-
वस्थानञ्च प्रत्यर्थनियतत्वात् बुद्धीनां यावन्ति प्रदीपार्ची-
षि तावन्त्ये बुद्धय इति दृश्यते चात्र व्यक्तं प्रदीपार्चिषां ग्रह-
णमिति, चेतना शरीरगुणः सति शरीरे भावादसति चा-
भावादिति ॥

सू० द्रव्ये स्वगुणपरगुणोपलब्धेः संशयः ॥ ५० ॥

भा० सांशयिकः सति भावः स्वगुणोऽसु द्रवत्वमुपलभ्यते
परगुणसंज्ञाता, तेनायं संशयः किं शरीरगुणस्येतना शरी-
रे दृश्यते अथ द्रव्यान्तरगुण इति न शरीरगुणस्येतना
कस्मात् ॥

सू० यावच्छरीरभावित्वाद्रूपादीनाम् ॥ ५१ ॥

भा० न रूपादिहीनं शरीरं गृह्यते चेतनाहीनन्तु गृह्यते ।
 यथोष्णताहीना आपः, तस्मान्न शरीरगुणश्चेतनेति, संस्का-
 रवदित्येव कारणानुच्छेदात् यथाविधे द्रव्ये संस्कार-
 स्तथाविधे एवोपरमो न तत्र कारणोच्छेदादत्यन्तं
 संस्कारानुपपत्तिर्भवति यथाविधे शरीरे चेतना गृह्यते
 तथाविधएवात्यन्तोपरमश्चेतनाया गृह्यते, तस्मात् संस्का-
 रवदित्यसमः समाधिः, अथापि शरीरस्यश्चेतनोत्पत्ति
 कारणं स्यात् द्रव्यान्तरस्य बोधयस्य वा, तत्र नियम-
 हेतुभावात् शरीरस्येन कदाचिच्चेतनोत्पद्यते कदाचिन्नेति
 नियमहेतुर्नास्तीति द्रव्यान्तरस्येन शरीर एव चेतनो-
 त्पद्यते न लोष्टादिषु इत्यत्र न नियमहेतुरस्तीति
 उभयस्य निमित्तत्वे शरीरसमानजातीये द्रव्ये चेतना नो-
 त्पद्यते शरीर एव चोत्पद्यते इति नियमहेतुर्नास्तीति,
 यच्च मन्येत सति श्लामादिगुणे द्रव्ये श्लामाद्युपरमो दृष्टः
 एवं चेतनोपरमः स्यादिति ॥

सू० न पाकजगुणान्तरोत्पत्तेः ॥ ५२ ॥

भा० नात्यन्तं रूपोपरमोद्रव्यस्य श्लामे रूपे निवृत्ते पाकजं
 गुणान्तरं रक्तं रूपमुत्पद्यते शरीरेतु चेतनामात्रोपरमोऽ-
 त्यन्तमिति, अथापि ॥

सू० प्रतिद्वन्द्विसिद्धेः पाकजानामप्रतिषधः ॥ ५३ ॥

भा० यावत्सु द्रव्येषु पूर्वगुणप्रतिद्वन्द्विसिद्धिस्तावत्सु पा-
कजोत्पत्तिर्दृश्यते पूर्वगुणैः सह पाकजानामवस्थानस्या-
यद्वहणात्, न च शरीरे चेतनाप्रतिद्वन्द्विसिद्धौ सहानवस्था-
यिगुणान्तरं गृह्यते येनानुमीयेत तेन चेतनाया विरोधः,
तस्मादप्रतिषिद्धा चेतना यावच्छरीरं वर्त्तते नतु वर्त्तते
तस्मान्नशरीरगुणस्येतना इति, इतश्च न शरीरगुण-
स्येतना ॥

सू० शरीरव्यापित्वात् ॥ ५४ ॥

भा० शरीरं शरीरावयवाश्च सर्वे चेतनोत्पत्त्या व्याप्ता-
इति न कचिदनुत्पत्तिस्त्रेतनायाः, शरीरवच्छरीराव-
यवास्त्रेतना इति प्राप्तं चेतनबहुत्वम्, तच्च यथा प्रतिश-
रीरं चेतनबहुत्वे सुखदुःखज्ञानानां व्यवस्थालिङ्गमेव-
मेकशरीरेऽपि स्यात् नतु भवति तस्मान्नशरीरगुणस्त्रेत-
नेति, यदुक्तं न कचिच्छरीरावयवे चेतनायाऽनुत्पत्ति-
रिति सा न ॥

सू० केशनखादिष्वनुपलब्धेः ॥ ५५ ॥

भा० केशेषु नखादिषु चानुत्पत्तिस्त्रेतनाया इति । अनुप-
पन्नं शरीरव्यापित्वमिति ॥

सू० त्वक्पर्यन्तत्वाच्छरीरस्य केशनखादिष्वप्रसङ्गः ॥
॥ ५६ ॥

भा० इन्द्रियाश्रयत्वं शरीरलक्षणं त्वक्पर्यन्तं जीवमनःसुख-
दुःखसंवित्प्रायतनभूतं शरीरम्, तस्मान्न केशादिषु चेत-
नोत्पद्यते । अर्थकारितस्तु शरीरोपनिबन्धः केशादो-
नामिति, इतश्च न शरीरगुणश्चेतना ॥

सू० शरीरगुणवैधर्म्यात् ॥ ५७ ॥

भा० द्विविधश्च शरीरगुणः अप्रत्यक्षश्च गूढत्वम् इन्द्रियग्रा-
ह्यश्च रूपादिः, विधान्तरन्तु चेतना प्रत्यक्षा संवेद्यत्वात्
नेन्द्रियग्राह्या मनोविषयत्वात्, तस्माद्रव्यान्तरगुणइति ॥

सू० न रूपादोनामितरेतरवैधर्म्यात् ॥ ५८ ॥

भा० यथेतरेतरविधर्माणोरूपादयो न शरीरगुणत्वं ज-
हति एवं रूपादिवैधर्म्याच्चेतना शरीरगुणत्वं न हा-
स्यतीति ॥

सू० ऐन्द्रियकत्वाद्व्यापादीनामप्रतिषेधः ॥ ५९ ॥

भा० अप्रत्यक्षत्वाच्चेति । यथेतरेतरविधर्माणो रूपादयो

भा० न दैविध्यमतिवर्त्तन्ते तथा रूपादिवैधर्म्याच्चेतना न दैवि-
 ध्यमतिवर्त्तते यदि शरीरगुणः स्यादिति, अतिवर्त्तते तु,
 तस्मान्न शरीरगुण इति । भूतेन्द्रियमनसां ज्ञानप्रति-
 षेधात् सिद्धे सत्यारम्भोविशेषज्ञापनार्थम् बह्वधा परी-
 क्ष्यमाणं तत्त्वं सुनिश्चिततरं भवतीति परीक्षिता बुद्धिः,
 मनस इदानीं परीक्षाक्रमः तत् किं प्रतिशरीरमेकमने-
 कमिति विचारे ॥

सू० ज्ञानायौगपद्यादेकं मनः ॥ ६० ॥

भा० अस्ति खलु वै ज्ञानायौगपद्यमेकैकस्येन्द्रियस्य यथावि-
 षयम् करणस्यैकप्रत्ययनिर्वृत्तौ सामर्थ्यान्न तदेकत्वे म-
 नमोलिङ्गम्, यत्तु खल्विदमिन्द्रियान्तराणां विषयान्त-
 रेण ज्ञानायौगपद्यमिति तल्लिङ्गं कस्मात् सम्भवति खलु
 वै बह्वेषु मनसु इन्द्रियमनःसंयोगयौगपद्यमिति ज्ञानयौ-
 गपद्यं स्यात् न तु भवति तस्मादिषये प्रत्ययपर्यायादेकं
 मनः ॥

सू० न युगपदनेकक्रियोपलब्धेः ॥ ६१ ॥

भा० अयं खल्वध्यापकोऽधीते प्रजति कमण्डलुं धारयति
 पन्थानं पश्यति शृणोत्यरण्यजान् शब्दान् विभ्यत् व्या-

भा० ललितकानि बुभुक्षते स्मरति च गन्तव्यं ख्यानीयमिति क्र-
मस्याग्रहणाद्युगपदेताः क्रियाः इति प्राप्तं मनसोबल्लव-
मिति ॥

सू० अलातचक्रदर्शनवत्तदुपलब्धिराशुसञ्चारात् ॥
॥ ६२ ॥

भा० आशुसञ्चारादलातस्य संभ्रमतोविद्यमानः क्रमो न
गृह्यते क्रमस्याग्रहणादविच्छेदबुद्ध्या चक्रवद्बुद्धिर्भवतीति
तथा बुद्धीनां क्रियाणाञ्चाशुवृत्तित्वाद्विद्यमानः क्रमो न
गृह्यते क्रमस्याग्रहणाद्युगपत्क्रियाभवन्तीत्यभिमानोभवति ।
किं पुनः क्रमस्याग्रहणाद्युगपत् क्रियाभिमानः अथ
युगपद्भावादेव युगपदनेकक्रियोपलब्धिरिति नात्रविशेषप्र-
तिपत्तेः कारणमुच्यते इति उक्तमिन्द्रियान्तराणां विषया-
न्तरेषु पर्यायेण बुद्धयो भवन्तीति तच्चाप्रत्याख्येयमात्मप्रत्य-
क्षत्वात् । अथापि दृष्टश्रुतानर्थान्श्चिन्तयतः क्रमेण बुद्धयो
वर्तन्ते न युगपदनेनानुमातव्यमिति वर्णपदवाक्यबुद्धीनां
तदर्थबुद्धीनाञ्चाशुवृत्तित्वात् क्रमस्याग्रहणम् कथम्
वाक्यस्थेषु खलु वर्णेषूच्चरत्सु प्रतिवर्णं तावत् अवर्णं भवति
श्रुतं वर्णमेकमनेकं वा पदभावेन स प्रतिसन्धत्ते प्रतिसन्धा-
य पदं व्यवस्यति पदव्यवसायेन सत्या पदार्थमप्रतिपद्यते
पदसमूहप्रतिसन्धानाच्च वाक्यं व्यवस्यति सम्बद्धांश्च पदा-

भा० र्थान् गृहीत्वा वाक्यार्थं प्रतिपद्यते न चासं क्रमेण वर्त्त-
मानानां बुद्धीनामाशुवृत्तित्वात् क्रमो गृह्यते तदेतदनु-
मानमतत्त्वं बुद्धिक्रियायौगपद्याभिमानस्येति न चास्ति मु-
क्तसंशया युगपदुत्पत्तिर्बुद्धीनां यथा मनसां बहुत्वमेकश-
रीरेऽनुमीयत इति ॥

सू० यथोक्तहेतुत्वाच्चाणु ॥ ६३ ॥

भा० अणु मन एकस्येति धर्मसमुच्चयोज्ञानायौगपद्यात्
महत्त्वे मनसः सर्वेन्द्रियसंयोगाद्युगपद्विषयग्रहणं स्यादिति
मनसः खलुभोः सेन्द्रियस्य शरीरे वृत्तिलाभो नान्यत्र श-
रीरात् ज्ञातुश्च पुरुषस्य शरीरायतना बुद्ध्यादयोविषयो-
पभोगोजिहासितहानमीक्षितावाप्तिश्च सर्वे च शरीराश्र-
या व्यवहाराः, तत्र खलु विप्रतिपत्तेः संशयः किमयम्पुरु-
षकर्मानिमित्तः शरीरसर्ग आहोस्वित् भूतमात्रादकर्ष-
निमित्तइति श्रूयते खल्वत्र विप्रतिपत्तिरिति तत्रेद-
न्तत्त्वम् ॥

सू० पूर्ववृत्तफलानुबन्धात्तदुत्पत्तिः ॥ ६४ ॥

भा० पूर्वशरीरे या प्रवृत्तिर्वागबुद्धिशरीरारम्भलक्षणा तत्
पूर्ववृत्तं कर्मात्तं तस्य फलं तज्जनितौ धर्माधर्मौ तत्फल
स्थानबन्धः आत्मसमवेतस्यावस्थानं तेन प्रयुक्तेभ्योभूतेभ्य-

भा० सद्योत्पत्तिः शरीरस्य न स्वतन्त्रेभ्य इति यदधिष्ठानोऽय-
मात्मा यमहमिति मन्यमानो यत्राभियुक्तो यत्रोपभोग-
द्वषाया विषयानुपलभमानो धर्माधर्मौ संस्करोति तदस्य
शरीरम्, तेन संस्कारेण धर्माधर्मलक्षणेन भूतसहितेन
पतितेऽस्मिन् शरीरे उत्तरं निष्पाद्यते निष्पन्नस्य चास्य
पूर्वशरीरवत् पुरुषार्थक्रिया पुरुषस्य च पूर्वशरीरवत्
प्रवृत्तिरिति कर्मापेक्षेभ्योभूतेभ्यः शरीरसर्गे सत्येतदु-
पपद्यत इति । दृष्टा च पुरुषगुणेन प्रयत्नेन प्रयुक्तेभ्यो-
भूतेभ्यः पुरुषार्थक्रियासमर्थानां द्रव्याणां रथप्रवृत्तीना-
मुत्पत्तिः तथानुमातव्यं शरीरमपि पुरुषार्थक्रियासम-
र्थमुत्पद्यमानं पुरुषस्य गुणान्तरापेक्षेभ्यो भूतेभ्योऽप्युत्पद्यते
इति । अत्र नास्तिक आह ॥

सू० भूतेभ्योमूर्त्युपादानवत् तदुपादानम् ॥ ६५ ॥

भा० यथा कर्मानिरपेक्षेभ्यो भूतेभ्योनिवृत्ता मूर्त्तयः सिक-
ताशर्करापाषाणैरिकाञ्चनप्रसृतयः पुरुषार्थकारित्वादु-
पादीयन्ते तथा कर्मानिरपेक्षेभ्यो भूतेभ्यः शरीरमुत्पन्नं
पुरुषार्थकारित्वादुपादीयत इति ॥

सू० न साध्यसमत्वात् ॥ ६६ ॥

भा० यथा शरीरोत्पत्तिरकर्मानिमित्ता साध्या तथा

भा० सिकताशर्करापाकाद्यैरिकाञ्चनप्रभेतीनामप्यकर्षणनिमित्तः
 सर्गः साध्यः साध्यसमत्वादसाधनमिति । भूतेभ्योमूर्त्यु-
 पादानवत् तदिति चानेन साम्यं ॥

सू० नेत्यप्तिनिमित्तत्वान्मातापित्रोः ॥ ६७ ॥

भा० विषमस्यायमुपन्यासः कस्मात् निर्वीजाः इमाः मूर्तयः
 उत्पद्यन्ते वीजपूर्विका तु शरीरोत्पत्तिः, मातापितृशब्देन
 लोहितरेतसो वीजभूते गृह्येते, तत्र सत्वस्य गर्भवासानुभव-
 नीयं कर्म पित्रोश्च पुत्रफलानुभवनीये कर्मणि मातुर्गर्भा-
 शये शरीरोत्पत्तिं भूतेभ्यः प्रदोजयन्तीत्युपपन्नं वीजानुवि-
 धानमिति ॥

सू० तथाहारस्य ॥ ६८ ॥

भा० उत्पत्तिनिमित्तत्वादिति प्रकृतम्, भुक्तं पीतमाहा-
 रस्तस्य पक्तिनिवृत्तं रसद्रव्यं मातृशरीरे चोपचीयते
 वीजे गर्भाशयस्थे वीजसमानपाकं मातृया चोपचयोवीजे
 या*वद्ब्रूहसमर्थः सञ्चय इति सञ्चितं चार्जुदमांसपेशीक-
 ललकण्डराग्रिःपाणिपादादिना च व्यूहेनेन्द्रियाधिष्ठान-
 भेदेन व्यूह्यते व्यूहे च गर्भनाद्यावतारितं रसद्रव्यमुपचीयते

* पाचनव्यूह इति त्रयित् पाठः ।

भा० यावत्प्रसवसमर्थमिति, न *चायमन्नपानस्य स्वास्यादिगतस्य
कल्प्यत इति एतस्मात् कारणात् कर्मानिमित्तत्वं शरीरस्य
विज्ञायत इति ॥

सू० प्राप्तौ चानियमात् ॥ ६६ ॥

भा० न सर्व्वे दम्यत्योः संयोगो गर्भाधानहेतुर्दृश्यते तत्रा-
सति कर्मणि न भवति सति च भवतीत्यनुपपन्नो निय-
माभाव इति, कर्मनिरपेक्षेषु भूतेषु शरीरोत्पत्तिहेतुषु
अनियमः स्यात् न ह्यत्र कारणाभाव इति, अथापि ॥

सू० शरीरोत्पत्तिनिमित्तवत् संयोगोत्पत्तिनिमित्तं
कर्म ॥ ७० ॥

भा० यथा खल्विदं शरीरं धातुप्राणसंवाहिनीनां नाडी-
नां शुक्रान्तानां धातुनाञ्च स्नाय्वस्थिशिरापेशीकललक-
ण्डराणाञ्च शिरोवाह्यदराणां सक्थ्याञ्च कोष्ठगानां
वातपित्तकफानाञ्च मुखकण्ठहृदयमाशयपक्वाशयाधः-
स्रोतसाञ्च परमदुःखसम्यादनोयेन सन्निवेशेन व्यूहनमशक्यं
पृथिव्यादिभिः कर्मनिरपेक्षैरुत्पादयितुमिति कर्मानि-

भा० मित्रा शरीरोत्पत्तिरिति विज्ञायते, एवञ्च प्रत्यात्म-
 नियतस्य निमित्तस्याभावान्निरतिशयैरात्मभिः संबन्धात्
 सर्वात्मनाञ्च समानैः पृथिव्यादिभिरुत्पादितं शरीरं
 पृथिव्यादिगतस्य च नियमहेतोरभावात् सर्वात्मनां सु-
 खदुःखसंवि*त्यायतनं समानं प्राप्तम्, यत्तु प्रत्यात्मं व्यव-
 तिष्ठते तत्र शरीरोत्पत्तिनिमित्तं कर्म व्यवस्थाहेतु-
 रिति विज्ञायते परिपच्यमानो हि प्रत्यात्मनियतः क-
 र्माश्रयो यस्मिन्नात्मनि वर्तते तस्यैवोपभोगायतनं शरी-
 रमुत्पाद्य व्यवस्थापयति । तदेवं शरीरोत्पत्तिनिमित्त-
 वत् संयोगनिमित्तं कर्म इति विज्ञायते । प्रत्यात्मव्यव-
 स्थानन्तु शरीरस्यात्मना संयोगं प्रचक्ष्महे इति ॥

सू० एतेनानियमः प्रत्युक्तः ॥ ७१ ॥

भा० योऽयमकर्मनिमित्ते शरीरसर्गे सत्यनियम इत्युच्य-
 ते अयं शरीरोत्पत्तिनिमित्तवत् संयोगोत्पत्तिनिमित्तं
 कर्मैत्यनेन प्रत्युक्तः, कस्तावदयं नियमः यथैकस्यात्मनः
 शरीरं तथा सर्वेषामिति नियमः, अन्यस्याऽन्यथेत्य-
 नियमो भेदोऽव्यावृत्तिर्विशेष इति । दृष्टा च जन्मव्या-
 वृत्तिरुच्चाभिजनोऽनिकृष्टाभिजनः इति, प्रशस्तं नि-

भा० निन्दितमिति, व्याधिबज्जलमरोगमिति, ममग्रं विकल-
मिति, पीडाबज्जलं सुखबज्जलमिति, पुरुषातिशयलक्ष-
णोपपन्नं विपरीतमिति, प्रशस्तलक्षणं निन्दितलक्ष-
णमिति, पद्विन्द्रियं मृद्विन्द्रियमिति; सूक्ष्मश्च भेदोऽपरि-
मेयः । सोऽयं जन्मभेदः प्रत्यात्मनियतात् कर्मभेदादुपप-
द्यते, असति कर्मभेदे प्रत्यात्मनियते निरतिशयिलादात्मनां
समानत्वाच्च पृथिव्यादीनां पृथिव्यादिगतस्य नियमहेतो-
रभावात् सर्वे सर्वात्मनां प्रसज्येत न त्विदमित्यभूतं ज-
न्म तस्मात् कर्मनिमित्ता शरीरोत्पत्तिरिति ॥

सू० उपपन्नश्च तद्वियोगः कर्मक्षयोपपत्तेः ॥ ७२ ॥

भा० कर्मनिमित्ते शरीरसर्गे तेन शरीरेणात्मनो वियोगः
उपपन्नः, कस्मात् कर्मक्षयोपपत्तेः उपपद्यते खलु कर्मक्षयः
सम्यग्दर्शनात् प्रक्षीणे मोहे वीतरागः पुनर्भवहेतुकर्म
कायवाङ्मनोभिर्न करोति इत्युत्तरस्यानुपपत्तयः पूर्वापत्ति-
तस्य विपाकप्रतिभवेदनात् प्रक्षयः । एवं प्रसवहेतोर-
भावात् पतिते ऽस्मिन् शरीरे पुनः शरीरान्तरानुपप-
त्तेरप्रतिसन्धिः, अकर्मनिमित्ते तु शरीरसर्गे भूतक्षयानु-
पपत्तेस्तद्वियोगानुपपत्तिरिति ॥

सू० तददृष्टकारितमिति चेत् पुनस्तत्प्रसङ्गोऽपवर्गे ॥

॥ ७३ ॥

भा० अदर्शनं खल्वदृष्टमित्युच्यते अदृष्टकारिता भूतेभ्यः शरीरोत्पत्तिः, न जातनुत्पन्ने शरीरे द्रष्टा निरायतनो दृश्यं पश्यति, तच्चाख्यं दृश्यं द्विविधम् विषयश्च नानात्वज्ञातव्यतात्मनोस्तदर्थः शरीरसर्गः तस्मिन्नवसिते चरितार्थानि भूतानि न शरीरमुत्पादयन्तीत्युपपन्नः शरीरवियोग इति । एवं चेन्नन्यसे पुनस्तत्प्रसङ्गोऽपवर्गे पुनः शरीरोत्पत्तिः प्रसज्यते इति, या चानुत्पन्ने शरीरे दर्शनानुत्पत्तिरदर्शनानभिमतता याचापवर्गे शरीरनिवृत्तौ दर्शनानुत्पत्तिरदर्शनभूता नैतयोरदर्शनयोः क्वचिद्विशेषइत्यदर्शनमस्थानिवृत्तेरपवर्गे पुनः शरीरोत्पत्तिप्रसङ्ग इति । चरितार्थाविशेष इति चेत् ॥

सू० न करणाकरणयोरारम्भदर्शनात् ॥ ७४ ॥

भा० चरितार्थानि भूतानि दर्शनावमानान्न शरीरान्तरमारभन्ते इत्ययं विशेष एवं चेदुच्यते करणाकरणयोरारम्भदर्शनात् चरितार्थानां भूतानां विषयोपलब्धिकरणात् पुनः पुनः शरीरारम्भो दृश्यते प्रकृतिपुरुषयोर्नानात्वदर्शनस्याकरणान्निरर्थकः शरीरारम्भः पुनः पुनर्दृश्यते । तस्मादकर्मनिमित्तायां भूतसृष्टौ न दर्शनार्थाशरीरोत्पत्तिर्युक्ता युक्तातु कर्मनिमित्ते सर्गे दर्शनार्थाशरीरोत्पत्तिः । कर्मविपाकसम्बेदनं दर्शनमिति तददृष्टकारितमिति चेत् कस्यचिदर्शनमदृष्टं नाम परमाणूनां

भा० गुणविशेषः क्रियाहेतुस्तेन प्रेरिताः परमाणवः सम्बू-
 र्छिताः शरीरमुत्पादयन्तीति तन्मनः समाविशति स्वगुणे-
 नादृष्टेन प्रेरिते समनस्के शरीरे द्रष्टृरुपलब्धिर्भवतीति
 एतस्मिन् वै दर्शने गुणानुच्छेदात् पुनस्तत्प्रसङ्गोऽपवर्गे
 अपवर्गे शरीरोत्पत्तिः परमाणुगुणस्यादृष्टस्यानुच्छेद्य-
 त्वादिति ॥

सू० मनःकर्मनिमित्तत्वाच्च संयोगानुच्छेदः ॥ ७५ ॥

भा० मनोगुणेनादृष्टेन समावेशिते मनसि संयोगानुच्छे-
 दो न स्यात् तच्च किङ्कृतं शरीरादपमर्षणं मनस इति ।
 कर्माशयक्षये तु कर्माशयान्तरादिपच्यमानादपमर्षणोप-
 पत्तिरिति । अदृष्टादेवापमर्षणमिति चेत् योदृष्टः शरी-
 रोपमर्षणहेतुः स एवापमर्षणहेतुरपीति नैकस्य जीवन-
 प्रायणहेतुत्वानुपपत्तेः, एवं च सति एकोऽदृष्टं जीवनप्रा-
 यणयोर्हेतुरिति प्राप्तम् नैतदुपपद्यते ॥

सू० नित्यत्वप्रसङ्गश्च प्रायणानुपपत्तेः ॥ ७६ ॥

भा० विपाकसंवेदनात् कर्माशयक्षये शरीरपातः प्राय-
 णम् कर्माशयान्तराच्च पुनर्जन्म । भूतमात्रात् कर्मानिर-
 पेक्षात् शरीरोत्पत्तौ कस्य क्षयात् शरीरपातः प्रायण-

भा० मिति । प्रायणानुपपत्तेः खलु वै नित्यत्वप्रसङ्गं विद्मः चा-
दृच्छिकेतु प्रायणे प्रायणभेदानुपपत्तिरिति, पुनस्तत्प्रस-
ङ्गोऽपवर्गे इत्येतत् समाधितुराह ॥

सू० अणुश्यामतानित्यत्ववदेतत् स्यात् ॥ ७७ ॥

भा० यथाऽणोः श्यामता नित्या अग्निसंयोगेन प्रतिवि*द्धा
न पुनरुत्पद्यते एवमदृष्टकारितं शरीरमपवर्गे पुनर्नात्प-
द्यते इति ॥

सू० नाकृताभ्यागमप्रसङ्गात् ॥ ७८ ॥

भा० नायमस्ति दृष्टान्तः कस्मात् अकृताभ्यागमप्रसङ्गात्
अकृतं प्रमाणतोऽनुपपन्नं तस्याभ्यागमोऽभ्युपपत्तिर्व्यवसायः
एतच्छ्रद्धधानेन प्रमाणतोऽनुपपन्नं मन्तव्यम् तस्मान्नायं
दृष्टान्तो न प्रत्यक्षं न चानुमानं किञ्चिदुच्यत इति । त-
दिदं दृष्टान्तस्य साध्यसमत्वमभिधीयत इति । अथवा ना-
कृताभ्यागमप्रसङ्गात् अणुश्यामतादृष्टान्तेनाकर्मानिमित्तां
शरीरोत्पत्तिं समादधानस्याकृताभ्यागमप्रसङ्गः अकृते-
सुःखदुःखहेतो कर्माणि पुरुषस्य सुखं दुःखमभ्यागच्छतीति
प्रसज्येत, अमिति ब्रूवतः प्रत्यक्षानुमानागमविरोधः प्रत्यक्ष-

भा० विरोधस्तावत् भिन्नमिदं सुखदुःखं प्रत्यात्मवेदनीयत्वात्
 प्रत्यक्षं सर्वशरीराणां को भेदः तीव्रमन्दच्चिरमाशु ना-
 नाप्रकारमेक प्रकारमिति एवमादिविशेषः, नचास्ति प्रत्या-
 त्मनियतः सुखदुःखहेतुविशेषः नचासति हेतुविशेषे फल-
 विशेषो दृश्यते कर्मनिमित्ते तु सुखदुःखयोगे कर्मणां ती-
 व्रमन्दतोपपत्तेः कर्मसञ्चयानाञ्चोत्कर्षापकर्षभावान्नाना-
 विधैकविधभावाच्च कर्मणां सुखदुःखभेदोपपत्तिः । सोऽयं
 हेतुभेदाभावाद्दृष्टः सुखदुःखभेदो न स्यादिति प्रत्यक्षवि-
 रोधः । तथानुमानविरोधः दृष्टं हि पुरुषगुणव्यवस्थानात्
 सुखदुःखव्यवस्थानम्, यः खलुचेतनावान् साधननिर्वर्त्तनीयं
 सुखं बुद्ध्या तदीप्सन् तदाप्तिमाधनावाप्तये प्रयतते स सुखेन
 युज्यते न विपरीतः यश्च साधननिर्वर्त्तनीयं दुःखं बुद्ध्या
 तज्जिहासुः साधनपरिवर्जनाय यतते स दुःखेन परित्य-
 ज्यते न विपरीतः अस्ति चेदं यत्नमन्तरेण चेतनानां
 सुखदुःखव्यवस्थानम् तेनापि चेतनगुणान्तरव्यवस्थानकृतेन
 भूतितव्यमित्यनुमानम् । तदेतदकर्मनिमित्ते सुखदुःख-
 योगे विरुद्धात् इति, तच्च गुणान्तरमसंवेद्यत्वाददृष्टं वि-
 पाककालानियमाच्चाव्यवस्थितम् बुद्ध्यादयस्तु संवेद्याश्चा-
 पवर्गिणश्चेति । अथागमविरोधः । ब्रह्म खल्विदमार्थमृषो-
 णामुपदेशजातमनुष्ठानपरिवर्जनाश्रयमुपदेशफलञ्च शरी-
 रिणां वर्णाश्रमविभागेनानुष्ठानलक्षणा प्रवृत्तिः परि-
 वर्जनलक्षणानिवृत्तिः, तच्चोभयमेतस्यां दृष्टौ नास्ति कर्म

भा० सुचरितं दुश्चरितं वा, कर्मनिमित्तः पुद्गलाणां सुख-
दुःखयोगः इति विरुद्ध्यते, सेयं पापिष्ठानां मिथ्यादृष्टिर-
कर्मनिमित्ता शरीरदृष्टिरकर्मनिमित्तः सुखदुःखयोगः
इति ॥

इति वात्स्यायनोये न्यायभाष्ये तृतीयाऽध्यायस्य द्वितीय-
माह्निकम् ॥ ० ॥

समाप्तश्चायं तृतीयोऽध्यायः ॥ १ ॥

भा० मनसोऽनन्तरं प्रवृत्तिः परीक्षितव्या तत्र खलु याव-
द्दुर्माधर्माश्रयशरीरादि परीक्षितम् पूर्वा सा प्रवृत्तेः
परोक्षा इत्याह ॥

सू० प्रवृत्तिर्यथोक्ता ॥ १ ॥

भा० तथा परीक्षितेति प्रवृत्त्यनन्तरास्तर्हि दोषाः परीक्ष्य-
न्तामित्यत आह ॥

सू० तथा दोषाः ॥ २ ॥

भा० परीक्षिता इति बुद्धिममानाश्रयत्वादात्मगुणाः,
प्रवृत्तिहेतुत्वात् पुनर्भवप्रतिमन्वानसामर्थ्याच्च संसारहे-
तवः, संसारस्यानादित्वादनादिना प्रबन्धेन प्रवर्तन्ते,
मिथ्याज्ञाननिवृत्तिस्तत्त्वज्ञानात् तन्निवृत्तौ रागद्वेष
प्रबन्धोच्छेदेऽपवर्ग इति प्रादुर्भावनिरोधधर्माका इत्येव-
माद्युक्तं दोषाणामिति प्रवर्तनालक्षणा दोषा इत्युक्तं
तथा चेमे मानेर्यासूयाविचिकित्साभ्रमरादयः ते कस्मा-
न्नापसङ्गायन्ते इत्यत आह ॥

सू० तत्त्रैराश्यं रागद्वेषमोहार्थान्तरभावात् ॥
॥ ३ ॥

भा० तेषां दोषाणां त्रयोराश्रयस्त्रयः पक्षाः, रागपक्षाः
कामोभ्रमः स्पृहा तृष्णा लोभ इति, द्वेषपक्षाः क्रोधः
ईर्ष्याऽसूया द्वेषोऽमर्ष इति, मोहपक्षाः मिथ्याज्ञानं
विचिकित्सा मानः प्रमाद इति त्रैराश्यान्नापसङ्गायन्ते
इति, लक्षणस्य तर्ह्यभेदात् त्रिलमनुपपन्नम्, नानुप-
पन्नं रागद्वेषमोहार्थान्तरभावात्, आसक्तिलक्षणे रागः,
अमर्षलक्षणे द्वेषः, मिथ्याप्रतिपत्तिलक्षणे मोह इति,
एतत् प्रत्यात्मवेदनीयं सर्वशरीरिणाम् विज्ञानात्ययं

भा० शरीरी रागमुत्पन्नम्, अस्तिमेऽध्यात्मं रागधर्म इति,
 विरागश्च विजानाति नास्तिमेऽध्यात्मं रागधर्म इति ।
 एवमितरथोरपीति । मानेर्याऽसुखाप्रसूतयस्तु त्रैराग्य-
 मनुपतिता इति नोपसङ्ख्यायन्ते ॥

सू० नैकप्रत्यनीकभावात् ॥ ४ ॥

भा० नार्थान्तरं रागादयः कस्मात् एकप्रत्यनीकभावात्
 न्तलज्ञानं मस्यङ्मतिरार्यप्रज्ञा मस्माध इत्येकमिदं प्रत्य-
 नीकं चयाणामिति ॥

सू० व्यभिचारादहेतुः ॥ ५ ॥

भा० एकप्रत्यनीकाः पृथिव्यां ग्यामादयोऽग्निसंयोगेनैके-
 न, एक्योनयश्च पाकजा इति, सति चार्थान्तरभावे ॥

सू० तेषां मोहः पापीयान्नामूढस्येतरोत्पत्तेः ॥ ६ ॥

भा० मोहः पापः पापतरोवा द्वावभिप्रेत्योक्तम्, कस्मात्
 नामूढस्येतरोत्पत्तेः अमूढस्य रागद्वेषौ नोत्पद्येते मूढस्य
 तु यथासङ्कल्पमुत्पत्तिः, विषयेषु रञ्जनीयाः सङ्कल्पाः
 रागहेतवः, कोपनीयाः सङ्कल्पा द्वेषहेतवः, उभये च

भा० मङ्गल्या न मिथ्याप्रतिपत्तिलक्षणत्वान्मोहादन्ये ताविमौ
मोहयोनी रागद्वेषाविति तत्त्वज्ञानाच्च मोहनिवृत्तौ रा-
गद्वेषानुत्पत्तिरित्येकप्रत्यनीकभावोपपत्तिः । एवञ्च कृत्वा
तत्त्वज्ञानाद्दुःखजन्मप्रवृत्तिदोषमिथ्याज्ञानानामुत्तरोत्तरा-
पाये तदनन्तराभा*वादपवर्ग इति व्याख्यातमिति ॥

सू० प्राप्तस्तर्हि निमित्तनैमित्तिकभावादर्थान्तरभा-
वोदोषेभ्यः ॥ ७ ॥

भा० अन्यद्वि निमित्तमन्यच्च नैमित्तिकमिति दोषनिमि-
त्तत्वादोषोमोह इति ॥

सू० न दोषलक्षणावरोधान्मोहस्य ॥ ८ ॥

भा० प्रवर्त्तनालक्षणा दोषा इत्यनेन दोषलक्षणेनावरू-
ध्यते दोषेषु मोह इति ॥

सू० निमित्तनैमित्तिकोपपत्तेश्च तुल्यजातीयानामप्र-
तिषेधः ॥ ९ ॥

भा० द्रव्याणां गुणानां वाऽनेकविधविकल्पो निमित्तनैमि-
त्तिकभावे तुल्यजातीयानां दृष्ट इति । दोषानन्तरं प्रेत्य

* पाषादिति वृत्तिकारसम्मतः पाठः

भा० भावस्तस्यासिद्धिः आत्मनोनित्यत्वात्, न खलु नित्यं किञ्चिज्जायते म्रियते इति जन्ममरणयोर्नित्यत्वादात्मनोऽनुपपत्तिः उभयञ्च प्रेत्यभाव इति तत्राद्यं सिद्धानुवादः ॥

सू० आत्मनित्यत्वे प्रेत्यभावसिद्धिः ॥ १० ॥

भा० नित्योऽयमात्मा प्रैति पूर्वशरीरं जहाति म्रियते इति । प्रेत्य च पूर्वशरीरं हित्वा भवति जायते शरीरान्तरमुपादत्ते इति । तच्चैतदुभयं पुनरुत्पत्तिः प्रेत्यभाव इत्यत्रोक्तं पूर्वशरीरं हित्वा शरीरान्तरोपादानं प्रेत्यभाव इति तच्चैतन्नित्यत्वे संभवतीति यस्य तु सत्वेत्यादः सत्त्वनिरोधः प्रेत्यभावस्तस्य कृतज्ञानमकृताभ्यागमस्य दोषः । उच्छेदहेतुवादे ऋष्युपदेशाश्चानर्थका इति, कथमुत्पत्तिरिति चेत् ॥

सू० व्यक्ताद्यक्तानां प्रत्यक्षप्रामाण्यात् ॥ ११ ॥

भा० केन प्रकारेण किञ्चिन्मर्मात् कारणाद्यक्तं शरीराद्युत्पद्यते इति, व्यक्ताद्भूतसमाख्यातात् पृथिव्यादितः परमसूक्ष्मान्नित्याद्यक्तं शरीरेन्द्रियविषयोपकरणाधारं प्रजातं द्रव्यमुत्पद्यते । व्यक्तञ्च खल्विन्द्रियग्राह्यं तस्मान्नान्यात् कारणमपि व्यक्तम्, किं सामान्यं रूपादिगुणयोगः,

भा० रूपादिगुणयुक्तेभ्यः पृथिव्यादिभ्योनित्येभ्यो रूपादिगुण-
युक्तं शरीराद्युत्पद्यते प्रत्यक्षप्रामाण्यात् । दृष्टोहि रूपा-
दिगुणयुक्तेभ्योऽमृत्प्रभृतिभ्यस्तथाभूतस्य द्रव्यस्योत्पादः, तेन
चादृष्टस्यानुमानमिति, रूपादीनामन्वयदर्शनात् प्रकृति-
विकारयोः पृथिव्यादीनामतीन्द्रियाणां कारणभावा-
ऽनुमीयते इति ॥

सू० न घटाद्वटानिष्यत्तेः ॥ १२ ॥

भा० इदमपि प्रत्यक्षम् न खलु व्यक्ताद्वटाद्व्यक्तो घट
उत्पद्यमानो दृश्यते इति व्यक्ताद्व्यक्तस्यानुत्पत्तिदर्शनान्न
व्यक्तं कारणमिति ॥

सू० व्यक्ताद्वटनिष्यत्तेरप्रतिषेधः ॥ १३ ॥

भा० न ब्रूमः सर्वं सर्वस्य कारणमिति किन्तु यदुत्पद्यते
व्यक्तं द्रव्यं तत् तथाभूतादेवोत्पद्यते इति । व्यक्तञ्च
तन्मृद्द्रव्यं कपालमंजकं यतो घट उत्पद्यते न चैतन्नि-
ज्जुवानः क्वचिदभ्यनुज्ञां लभ्युमर्हतीति । तदेतत् तत्त्वम्,
अतः परं प्रावादुकानां दृष्टयः प्रदर्श्यन्ते ॥

सू० अभावाद्भावोत्पत्तिर्नानुपमृद्यप्रादुर्भावात् ॥ १४ ॥

भा० अमतः सदुत्पद्यते इत्ययं पक्षः कस्मात् उपमृद्य वीज-

भा० मङ्कुर उत्पद्यते नानुपमृद्य नचेद्बीजोपमर्द्दोऽङ्कुराकारण-
मनुपमर्द्दोऽपि बीजस्याङ्कुरोत्पत्तिः स्यादिति, अत्राभिधी-
यते ॥

सू० व्याघातादप्रयोगः ॥ १५ ॥

भा० उपमृद्य प्रादुर्भावादित्ययुक्तः प्रयोगो व्याघातात् यदु-
पमृद्नाति न तदुपमृद्य प्रादुर्भवितुमर्हति विद्यमा-
नत्वात् यच्च प्रादुर्भवति न तेनाप्रादुर्भूतेनाविद्यमानेनो-
पमर्द्द इति ॥

सू० नातीतानागतयोः कारकशब्दप्रयोगात् ॥ १६ ॥

भा० अतीते चानागते चाविद्यमाने कारकशब्दाः प्रयुज्य-
न्ते पुत्रो जनियते जनियमाणं पुत्रमभिनन्दति पुत्रस्य
जनियमाणस्य नाम करोति। अभूत् कुम्भो भिन्नं कुम्भमनु-
शोचति। भिन्नस्य कुम्भस्य कपालानि, अजाताः पुत्राः पि-
तरन्तापयन्तीति बह्वलं भाक्ताः प्रयोगाः दृश्यन्ते, का पुन-
रियं भक्तिः आनन्तर्यभक्तिः आनन्तर्यसामर्थ्यादुपमृद्य
प्रादुर्भावार्थः प्रादुर्भविष्यन्नङ्कुर उपमृद्नातीति भाक्तं
कर्तृत्वमिति ॥

सू० न विनष्टेभ्योऽनिष्यत्तेः ॥ १७ ॥

भा० न विनष्टाद्बीजादङ्कुर उत्पद्यत इति तस्मान्नाभावा-
द्भावोत्पत्तिरिति ॥

सू० क्रमनिर्देशादप्रतिषेधः ॥ १८ ॥

भा० उपमर्दप्रादुर्भावयोः पौर्वापर्यनियमः क्रमः स खल्वभावाद्भावाद्युत्पत्तेर्हेतुर्निर्दिश्यते स च न प्रतिषिध्यत इति । व्याहृतव्यूहानामवयवानां पूर्वव्यूहनिवृत्तौ व्यूहान्तराद्द्रव्यनिष्पत्तिर्नाभावात् । वीजावयवाः कुतश्चिन्मिन्नात् प्रादुर्भूतक्रियाः पूर्वव्यूहं जहति व्यूहान्तरादपद्यन्ते व्यूहान्तरादङ्कुर उत्पद्यते । दृश्यन्ते खल्ववयवास्तत्संयोगाच्चाङ्कुरोत्पत्तिहेतवः । नचानिवृत्ते पूर्वव्यूहे वीजावयवानां शक्यं व्यूहान्तरेण भवितुमित्युपमर्दप्रादुर्भावयोः पौर्वापर्यनियमः क्रमः, तस्मान्नाभावाद्भावाद्युत्पत्तिरिति । न चान्यद्वीजावयवयोः अङ्कुरोत्पत्तिकारणमित्युपपद्यते वीजापादाननियम इति । अथापर आह ॥

सू० ईश्वरः कारणं पुरुषकर्माफल्यदर्शनात् ॥ १९ ॥

भा० पुरुषोऽयं समीहमानो नावश्यं समीहाफलमाप्नोति तेनानुमीयते पराधीनं पुरुषकर्मफलाराधनमिति यदधीनं स ईश्वरः तस्मादीश्वरः कारणमिति ॥

सू० न पुरुषकर्माभावे फलानिष्पत्तेः ॥ २० ॥

भा० ईश्वराधीना चेत् फलनिष्पत्तिः स्यादपि तर्हि पुरुषस्य समीहामन्तरेण फलं निष्पद्येतेति ॥

सू० तत्कारितत्वादहेतुः ॥ २१ ॥

भा० पुरुषकारमीश्वरोऽनुगृह्णाति फलाय पुरुषस्य यतमानस्त्वेश्वरः फलं सम्पादयतीति । यदा न सम्पादयति तदापुरुषकर्माफलभवतीति तस्मादीश्वरकारितत्वादहेतुः पुरुषकर्माभावे फलानिष्पत्तेरिति, गुणविशिष्टमात्मान्तरमीश्वरः तस्यात्मकत्वात् कल्पान्तरानुपपत्तिः । अधर्ममिथ्याज्ञानप्रमादहान्या धर्मज्ञानसमाधिसम्पदा च विशिष्टमात्मान्तरमीश्वरः, तस्य च धर्मसमाधिफलमणिमाद्यष्टविधमैश्वर्यम् सङ्कल्पानुविधायी चास्य धर्मः प्रत्यात्मवृत्तीन् धर्माधर्ममच्चयान् पृथिव्यादीनि च भूतानि प्रवर्त्तयति, एवञ्च स्वकृताभ्यागमस्थालोपेन निर्माणप्राकाम्यमीश्वरस्य स्वकृतकर्माफलं वेदितव्यम्, आप्तकल्पस्याथं यथा पिताऽपत्यानां तथा पितृभूत ईश्वरो-भूतानाम्, न चात्मकल्पादन्यः कल्पः सम्भवति न तावदस्य बुद्धिं विना कश्चिद्धर्मा लिङ्गभूतः शक्यः उपपादयितुम्, आगमाच्च द्रष्टा बोद्धा सर्वज्ञातेश्वर इति बुद्ध्यादिभिश्चात्मलिङ्गैर्निरूपाख्यमीश्वरं प्रत्यक्षानुमानागमविषयातीतं कः शक्त उपपादयितुम् । स्वकृताभ्यागमलोपेन च प्रवर्त्तमानस्यास्य यदुक्तं प्रतिषेधजातमकर्मानिमित्ते शरीरसर्गे तत् सर्वम्यसृज्यते इति । अपरं इदानीमाह ॥

सू० अनिमित्ततोभावेत्यत्तिः कण्टकतैक्ष्ण्यादिदर्शनात् ॥ २२ ॥

भा० अनिमित्ता शरीराद्युत्पत्तिः कण्टकतैक्ष्ण्यादिदर्शनात् कण्टकस्य तैक्ष्ण्यं पर्वतधातूनां चित्रता यावन्ः क्लृप्ता निनिमित्तञ्चोपादानं दृष्टं तथा शरीरसर्गाऽपीति ॥

सू० अनिमित्तनिमित्तत्वान्निमित्ततः ॥ २३ ॥

भा० अनिमित्ततोभावेत्यत्तिरित्युच्यते यतश्चोत्पद्यते तन्निमित्तमनिमित्तस्य निमित्तत्वान्निमित्ता भावेत्यत्तिरिति ॥

सू० निमित्तानिमित्तयोरर्थान्तरभावादप्रतिषेधः ॥
॥ २४ ॥

भा० अन्यद्भि निमित्तमन्यच्च निमित्तप्रत्याख्यानम्, न च प्रत्याख्यानमेव प्रत्याख्येयम्, यथानुदकः कमण्डलुरिति नोदकप्रतिषेधोदकम्भवतीति, स खल्वयं वादोऽकर्षनिमित्तः शरीरादिसर्ग इत्येतस्मान्न भिद्यते । अभेदात्तत्प्रतिषेधेनैव प्रतिषिद्धोवेदितव्य इति, अन्येऽनु*मन्यन्ते ॥

* अन्ये तु इति क्वचित् पाठः ।

सू० सर्वमनित्यमुत्पत्तिविनाशधर्मकत्वात् ॥ २५ ॥

भा० किमनित्यन्नम यस्य कदाचिद्भावस्तदनित्यम् उत्पत्तिधर्मकमनुत्पन्नं नास्ति विनाशधर्मकमविनष्टं नास्ति किं पुनः सर्वम्, भौतिकञ्च शरीरादि अभौतिकञ्च बुद्ध्यादि तदुभयमुत्पत्तिविनाशधर्मकं विज्ञायते तस्मात्तत्सर्वमनित्यमिति ॥

सू० नानित्यतानित्यत्वात् ॥ २६ ॥

भा० यदि तावत्सर्वस्यानित्यता नित्या, तन्नित्यत्वान्न सर्वमनित्यम्, अथानित्या तस्यामविद्यमानायां सर्वं नित्यमिति ॥

सू० तदनित्यत्वमग्नेर्दाह्यं विनाश्यानुविनाशवत् ॥
॥ २७ ॥

भा० तस्या अनित्यतायाअप्यनित्यत्वम् कथम् यथाग्निर्दाह्यं विनाश्यानुविनश्यति एवं सर्वस्यानित्यता सर्वं विनाश्यानुविनश्यतीति ॥

सू० नित्यस्याप्रत्याख्यानं यथोपलब्धिव्यवस्थानात् ॥
॥ २८ ॥

भा० अयं खलु वादेनित्यं प्रत्याचष्टे नित्यस्य च प्रत्याख्या-

भा० नमनुपपन्नम् कस्मात्, यथोपलब्धिव्यवस्थानात् यस्योत्पत्तिविनाशधर्मकत्वमुपलभ्यते प्रमाणतस्तदनित्यम्, यस्य नोपलभ्यते तद्विपरीतम्, न च परमसूक्ष्माणां भूतानामाकाशकालदिगात्मनसां तद्गुणानाञ्च केषाञ्चित् सामान्यविशेषसमवायानाञ्चोत्पत्तिविनाशधर्मकत्वं प्रमाणत उपलभ्यते तस्मान्नित्यान्येतानोति । अयमन्य एकान्तः ॥

सू० सर्व्वं नित्यम्यच्चभूतनित्यत्वात् ॥ २६ ॥

भा० भूतमात्रमिदं सर्व्वं तानि च नित्यानि भूतोच्छेदानुपपत्तेरिति ॥

सू० नोत्पत्तिविनाशकारणोपलब्धेः ॥ ३० ॥

भा० उत्पत्तिकारणञ्चोपलभ्यते विनाशकारणञ्च तत् सर्व्वनित्यत्वे व्याहन्यत इति ॥

सू० तल्लक्षणावरोधादप्रतिषेधः ॥ ३१ ॥

भा० यस्योत्पत्तिविनाशकारणमुपलभ्यत इति मन्यमे तद्गतलक्षणहीनमर्थान्तरं गृह्यते भूतलक्षणावरोधाद्भूतमात्रमिदमित्ययुक्तो ऽयं प्रतिषेध इति ॥

सू० नैतत्पत्तितत्कारणोपलब्धिः ॥ ३२ ॥

भा० कारणसमानगुणस्यात्पत्तिः कारणञ्चोपलभ्यते । न चैतदुभयं नित्यविषयं नचोत्पत्तितत्कारणोपलब्धिः शक्या प्रत्याख्यातुम्, नचाविषया काचिदुपलब्धिः उपलब्धिसामर्थ्यात् कारणेन समानगुणं कार्यमुत्पद्यत इत्यनुमोयते स खलूपलब्धेर्विषय इति । एवञ्च तल्लक्षणावरोधोपपत्तिरिति, उत्पत्तिविनाशकारणप्रयुक्तस्य ज्ञातुः प्रयत्नो दृष्ट इति, प्रसिद्धश्चावयवो तद्धर्मा उत्पत्तिविनाशधर्मा चावयवो सिद्ध इति । शब्दकर्मबुद्ध्यादीनां चाव्याप्तिः पञ्चभूतनित्यत्वान्नल्लक्षणावरोधाच्चेत्यनेन शब्दकर्मबुद्धिसुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नाश्च न व्याप्तास्तस्मादनेकान्तः, स्वप्नविषयाभिमानवन्निष्ठोपलब्धिरितिचेत् भूतोपलब्धौ तुल्यम् । यथा स्वप्ने विषयाभिमान एवमुत्पत्तिकारणाभिमान इति एवञ्चैतद्भूतोपलब्धौ तुल्यम्, द्युष्टयिव्याद्युपलब्धिरपि स्वप्नविषयाभिमानवत् प्रमज्यते, द्युष्टयिव्याद्यभावे सर्व्वव्यवहारविलोप इतिचेत् तदितरत्र समानम् उत्पत्तिविनाशकारणोपलब्धिर्विषयस्याप्यभावे सर्व्वव्यवहारविलोप इति सोऽयं नित्यानामतोन्द्रियत्वादविषयत्वाच्चेत्पत्तिविनाशयोः स्वप्नविषयाभिमानवदित्यहेतुरिति । अवस्थितस्योपादानस्य धर्ममात्रं निवर्त्तते धर्ममात्रमुपजायते स खलूत्पत्तिविनाशयोर्विषयः । यच्चोपजायते तत् प्राग-

भा० षुपजननादस्ति । यच्च निवर्त्तते तन्नितृत्तमयसीति ।
एवञ्च सर्वस्य नित्यत्वमिति ॥

सू० न व्यवस्थानुपपत्तेः ॥ ३३ ॥

भा० अयमुपजनः इयं निवृत्तिरिति व्यवस्था नोपपद्यते
उपजातनिवृत्तयोर्विद्यमानत्वात् अयं धर्म उपजातोऽयं
निवृत्तइति सङ्गावाविशेषादव्यवस्था । इदानीमुपजन
निवृत्ती नेदानीमिति कालव्यवस्था नोपपद्यते सर्वदा वि-
द्यमानत्वात् अस्य धर्मोपजननिवृत्ती नास्तीति व्यवस्था-
नुपपत्तिरुभयोरविशेषात् । अनागतोऽतीत इति कालव्य-
वस्थानुपपत्तिः वर्त्तमानस्य सङ्गावलक्षणत्वात् अविद्यमा-
नस्यात्मलाभउपजनोविद्यमानस्यात्महानं निवृत्तिरित्ये-
तस्मिन् सति नैते दोषाः तस्माद्यदुक्तं प्रागुपजननादस्ति
निवृत्तञ्चास्ति तदयुक्तमिति अयमन्य एकान्तः ॥

सू० सर्वं पृथग्भावलक्षणपृथक्तात् ॥ ३४ ॥

भा० सर्वं नाना न कश्चिदेकोभावोविद्यते कस्मात् भाव-
लक्षणपृथक्तात् भावस्य लक्षणमभिधानं येन लक्ष्यते भावः
स समाख्याशब्दः तस्य पृथग्विषयत्वात् सर्वोभावः समाख्या-
शब्दः समूहवाची कुम्भइति संज्ञाशब्देऽगन्धरसरूपस्यार्थस्य
बुध्नपार्श्वग्रीवादिसमूहे च वर्त्तते निदर्शनमात्रञ्चेदमिति

सू० नानेकलक्षणैरेकभावनिरूप्यते ॥ ३५ ॥

भा० अनेकविधलक्षणैरिति मध्यमपदलोपो समामः । गन्धादिभिश्च गुणैर्बुद्ध्यादिभिश्चावयवैः सम्बद्ध एकोभावो निरूप्यते गुणव्यतिरिक्तश्च द्रव्यमवयवातिरिक्तश्चावयवीति विभक्तन्यायश्चेतदुभयमिति । अथापि ॥

सू० लक्षणव्यवस्थानादेवाप्रतिषेधः ॥ ३६ ॥

भा० न कश्चिदेकोभाव इत्युक्तः प्रतिषेधः कस्मात् लक्षणव्यवस्थानादेव यदिह लक्षणं भावस्य संज्ञाशब्दभूतं तदेकस्मिन् व्यवस्थितम् यद्गुणमद्राचं तं स्पृशामि यमेवास्पर्शं तं पश्यामीति, नाणुसमूहे गृह्यत इति । अणुसमूहे चागृह्यमाणे यद्गृह्यते तदेकमेवेति । अथाप्येतदनूक्तं नास्त्येकोभावो यस्मात् समुदायः । एकानुपपत्तेर्नास्त्येव समूहः नास्त्येकोभावो यस्मात् समूहे भावशब्दप्रयोगः एकस्य चानुपपत्तेः समूहेनोपपद्यते । एकसमुच्चयोहि समूह इति व्याहृतत्वादनुपपन्नं नास्त्येकोभाव इति यस्य प्रतिषेधः प्रतिज्ञायते समूहे भावशब्दप्रयोगादिति हेतुं ब्रुवता स एवाभ्यनुजायते एकसमुच्चयोहि समूह इति समूहे भावशब्दप्रयोगादिति च समूहमाश्रित्य प्रत्येकं समूहप्रतिषेधो नास्त्ये-

भा० कोभाव इति सोऽयमुभयतोऽव्याघाताद्यत्किञ्चनवाद इति ।

अयमपर एकान्तः

सू० सर्वमभावोभावेऽधितरेतराभावसिद्धेः ॥ ३७ ॥

भा० यावद्भावजातं तत्सर्व्वमभावः कस्मात् भावेऽधितरेत-
राभावसिद्धेः अमन् गौरश्चात्मनानश्वोगैः । अमन्नाश्वोग-
वात्मनाऽगौरश्च इत्यसत्प्रत्ययस्य प्रतिषेधस्य च भावशब्दे
न सामानाधिकरण्यात् सर्व्वमभाव इति प्रतिज्ञावाक्ये पद-
योः प्रतिज्ञाहेत्वोश्च व्याघातादयुक्तम्, अनेकस्याशेषता
सर्व्वशब्दस्यार्थाभावप्रतिषेधश्चाभावशब्दस्यार्थः पूर्वं सोपाख्य-
मुत्तरं निरूपाख्यम् तत्र समुपाख्यायमानं कथं निरूपा-
ख्यमभावः स्यादिति न जालभावेनिरूपाख्योऽनेकतयाऽशेष-
तया शक्यः प्रतिज्ञातुमिति, सर्व्वमेतदभाव इति चेत् यदिदं
सर्व्वमिति मन्यसे तदभाव इति एवं चेदनिवृत्तोऽव्या-
घातः अनेकमशेषञ्चेति नाभावप्रत्ययेन शक्यं भवितुम्,
अस्ति चायं प्रत्ययः सर्व्वमिति तस्मान्नाभाव इति, प्रतिज्ञा-
हेत्वोश्च व्याघातः सर्व्वमभाव इति भावप्रतिषेधः प्रति-
ज्ञा भावेऽधितरेतराभावसिद्धेरिति हेतुः । भावेऽधितरे-
तराभावमनुज्ञायाश्रित्य चेतरेतराभावसिद्ध्या सर्व्वमभाव
इत्युच्यते यदि सर्व्वमभावोभावेऽधितरेतराभावसिद्धेरिति
नोपपद्यते अथ भावेऽधितरेतराभावसिद्धिः सर्व्वमभाव
इति नोपपद्यते सूत्रेण चाभिसम्बन्धः ॥

सू० न स्वभावसिद्धेर्भावानाम् ॥ ३८ ॥

भा० न सर्वमभावः कस्मात् स्वेन भावेन सद्भावात् भावानाम्, स्वेन धर्मेण भावाभवन्तीति प्रतिज्ञायते कश्च स्वेधर्मेभावानां द्रव्यगुणकर्मणां सदादिसामान्यम् द्रव्याणां क्रियावदित्येवमादिर्विशेषः, स्पर्शपर्यन्ताः पृथिव्यादिति च प्रत्येकज्ञानतोभेदः । सामान्यविशेषसमवायानाञ्च विशिष्टा धर्मा गृह्यन्ते सोऽयमभावस्य निरूपाख्यत्वात् सम्प्रत्यायकोऽर्थभेदो न स्यात्, अस्तित्वयन्तस्मान्न सर्वमभाव इति । अथवा न स्वभावसिद्धेर्भावानामिति । स्वरूपसिद्धेरिति गौरितिप्रयुज्यमाने शब्दे जातिविशिष्टं द्रव्यं गृह्यते नाभावमात्रम् यदि च सर्वमभावः गौरित्यभावः प्रतीयेत गोशब्देन चाभाव उच्येत, यस्मात्तु गोशब्दप्रयोगे द्रव्यविशेषः प्रतीयते नाभावस्तस्मादयुक्तमिति, अथवा न स्वभावसिद्धेरिति । असन् गौरश्चात्मनेति गवात्मना कस्मान्नोच्यते अवचनात् गवात्मना गौरस्तीति स्वभावसिद्धिः, अनश्चोऽश्व इति वा अगौर्गौरिति वा कस्मान्नोच्यते अवचनात् स्वेन रूपेण विद्यमानता द्रव्यस्येति विज्ञायते अव्यतिरेकप्रतिषेधे च भावानामसंयोगादिसम्बन्धो व्यतिरेकः, अत्राव्यतिरेकोऽभेदाख्यसम्बन्धः । प्रत्ययसामानाधिकरण्यम् यथा न सन्ति कुण्डे वदराणीति असन् गौरश्चात्मनामनश्चे गौरिति च गवाश्चयोरव्यतिरेकः प्रतिषि-

भा० ध्यते गवाश्वयोरेकत्वं नास्तीति । तस्मिन् प्रतिषिध्यमाने
भावेन गवा सामानाधिकरण्यममत्प्रत्ययस्यामन् गौरश्वा-
त्मनेति, यथा न मन्ति कुण्डे वदराणीति कुण्डे वदरमं-
योगे प्रतिषिध्यमाने मद्भिरमत्प्रत्ययस्य सामानाधिकरण्य-
मिति ॥

सू० न स्वभावसिद्धिरापेक्षिकत्वात् ॥ ३६ ॥

भा० अपेक्षाकृतमापेक्षिकम् द्रुखापेक्षाकृतं दीर्घं दीर्घापेक्षा-
कृतं द्रुखं, न खेनात्मनावस्थितं किञ्चित्, कस्मात् अपेक्षा-
सामर्थ्यात् तस्मान्न स्वभावसिद्धिर्भावानामिति ॥

सू० व्याहतत्वादयुक्तम् ॥ ४० ॥

भा० यदि द्रुखापेक्षाकृतं दीर्घं किमिदानीमपेक्ष्य द्रुख-
मिति गृह्यते, अथ दीर्घापेक्षाकृतं द्रुखं दीर्घमनापेक्षि-
कम्, एवमितरेतराश्रययोरेकाभावेऽन्यतराभावादुभया-
भाव इति अपेक्षाव्यवस्थानुपपन्ना, स्वभावसिद्धावसत्याम्
समयोः परिमण्डलयोर्वा द्रव्ययोरापेक्षिके दीर्घद्रुखत्वे
कस्मान्न भवतः । अपेक्षायामनपेक्षायाञ्च द्रव्ययोरभेदः,
यावती द्रव्ये अपेक्षमाणे तावती एवानपेक्षमाणे नान्य-
तरत्र भेदः आपेक्षिकत्वे तु सत्यन्यतरत्र विशेषोपजनः
स्यादिति, किमपेक्षसामर्थ्यमिति चेत् द्वयोर्ग्रहणेऽतिश-

भा० ययहणोपपत्तिः । द्वे द्रव्ये पश्यन्नेकत्र विद्यमानमतिशयं
गृह्णाति, तद्दीर्घमिति व्यवस्यति, यच्च हीनं गृह्णाति तद्ग-
ह्वमिति व्यवस्यतीति । एतच्चापेक्षामार्थमिति । अथेमे
सङ्ख्यैकान्ताः । सर्व्वमेकं सदविशेषात्, सर्व्वं द्वेधा नित्या-
नित्यभेदात्, सर्व्वं त्रैधा ज्ञाता ज्ञानं ज्ञेयमिति, सर्व्वं चतु-
र्द्धा प्रमाता प्रमाणं प्रमेयं प्रमिति रिति, एवं यथासम्भ-
वमन्येऽपीति । तत्र परीक्षा ॥

सू० सङ्ख्यैकान्तसिद्धिः कारणानुपपत्त्युपपत्तिभ्याम्
॥ ४१ ॥

भा० यदि साध्यसाधनयोरनानात्वमेकान्तो न सिद्ध्यति व्य-
तिरेकात्, अथ साध्यसाधनयोरभेदः एवमप्येकान्तो न
सिद्ध्यति साधनाभावात् नहि *तमन्तरेण कस्यचित् सि-
द्धिरिति ॥

सू० न कारणावयवभावात् ॥ ४२ ॥

भा० न सङ्ख्यैकान्तानामसिद्धिः, कस्मात् कारणस्यावयव-
भावात् अवयवः कश्चित्साधनभूत इत्यव्यतिरेकः, एवं द्वै-
तादीनामपीति ॥

सू० निरवयवत्वादहेतुः ॥ ४३ ॥

भा० कारणस्यावयवभावादित्यहेतुः, कस्मात् सर्वमेकमित्यनपवर्गेण प्रतिज्ञाय कस्यचिदेकत्वमुच्यते तत्र व्यप-
वृक्तोऽवयवः साधनभूतो नोपपद्यते एवं द्वैतादिष्वपीति ।
ते खल्विमे सङ्गीकान्ताः विशेषकारितस्वार्थविस्तारस्य
प्रत्याख्याने न वर्तन्ते प्रत्यक्षानुमानागमविरोधान्निस्था-
वादाः भवन्ति । अथाभ्यनुज्ञानेन वर्तन्ते समानधर्म-
कारितार्थसंग्रहोविशेषकारितस्वार्थभेद इति एवमेकान्तत्वं
जहतीति । ते खल्वेते तत्त्वज्ञानप्रविवेकार्थमेकान्ताः परी-
चिता इति । प्रेत्यभावानन्तरं फलं तस्मिन् ॥

सू० सद्यः कालान्तरे च फलनिष्पत्तेः संशयः ॥ ४४ ॥

भा० पचति दोग्धीति सद्यः फलमोदनपयसी, कृषति वप-
तीति कालान्तरे फलं शस्याधिगम इति । अस्ति चेयं
क्रिया अग्निहोत्रं जुहुयात् स्वर्गकाम इति, एतस्याः फले
संशयः ॥

सू० न सद्यः कालान्तरोपभोग्यत्वात् ॥ ४५ ॥

भा० स्वर्गः फलं श्रूयते तच्च भिन्नेऽस्मिन् देहभेदादुत्पद्यत-
इति, न सद्योग्रामादिकामानामारम्भफलमिति ॥

सू० कालान्तरेणानिष्पत्तिर्हेतुविनाशात् ॥ ४६ ॥

भा० ध्वस्तायां प्रवृत्तौ प्रवृत्तेः फलं न कारणमन्तरेणो-
त्पत्तुमर्हति, न खलु वै विनष्टात्कारणात् किञ्चिदुत्पद्यत-
इति ॥

सू० प्राङ्निष्पत्तेर्दृष्टफलवत्तत् स्यात् ॥ ४७ ॥

भा० यथा फलार्थिना वृक्षमूले मेकादिपरिकर्म क्रियते
तस्मिंश्च प्रध्वस्ते पृथिवीधातुरध्वातुना मङ्गृहीतः आन्तरेण
तेजसा पच्यमानोरमद्रव्यं निर्वर्त्तयति स द्रव्यभूतोरमो-
वृक्षानुगतः पाकविशिष्टोव्यूहविशेषेण सन्निविशमानः पर्णा-
दिफलं निर्वर्त्तयति । एवं परिषेकादि कर्म चार्थवत् न च
विनष्टात् फलनिष्पत्तिः, तथा प्रवृत्त्या संस्कारो धर्माधर्म-
लक्षणेज्यते स जातेनिमित्तान्तरानुगृहीतः कालान्तरे
फलं निष्पादयतीति । अकञ्चित्पूर्वकृतफलानुबन्धात्तदु-
त्पत्तिरिति तदिदं प्राङ्निष्पत्तेर्निष्पद्यमानम् ॥

सू० नास*न्नसन्नसदसदसत्सतोर्वैधर्म्यात् ॥ ४८ ॥

भा० प्राङ्निष्पत्तेर्निष्पत्तिधर्मकं नामत् उपादाननियमात्
कस्यचिदुत्पत्तये किञ्चिदुपादेयं न सव्यं सर्वस्येत्यसङ्गावे

* नासन्नसन्नसदसत् सदसतोर्वैधर्म्यादिति वृत्तिकारसम्मतः

पाठः ।

भा० नियमो नोपपद्यत इति, न सत् प्रागुत्पत्तेर्विद्यमानस्योत्प-
त्तिरनुपपन्नेति, न मदसत् मदमतोवैधर्म्यात् सदित्यर्थाभ्य-
नुज्ञा अमदित्यर्थप्रतिषेधः एतयोर्व्याघातोवैधर्म्यं व्या-
घातादव्यतिरेकानुपपत्तिरिति प्रागुत्पत्तेरुत्पत्तिधर्मक-
ममदित्यद्वा कस्मात् ॥

सू० *उत्पादव्ययदर्शनात् ॥ ४६ ॥

भा० यत्पुनरुक्तं प्रागुत्पत्तेः कार्यन्नामदुपादाननियमा-
दिति ॥

सू० बुद्धिसिद्धन्तु तदसत् ॥ ५० ॥

भा० इदमस्योत्पत्तये समर्थं न सर्वमिति प्रागुत्पत्तेर्नियत-
कारणं कार्यं बुद्ध्या सिद्धमुत्पत्तिनियमदर्शनात् तस्मादु-
पादाननियमस्योपपत्तिः सति तु कार्यं प्रागुत्पत्तेरुत्पत्ति-
रव नास्तीति ॥

सू० आश्रयव्यतिरेकाद्वृक्षफलोत्पत्तिवदित्यहेतुः ॥
॥ ५१ ॥

* प्रागुत्पत्तेरुत्पत्तिधर्मकमसदित्यद्वा उत्पादव्ययदर्शनादिति सूत्रं
वृत्तिकारसम्मतम् ।

भा० मूलभेकादि परिकर्म फलञ्चोभयं वृत्ताश्रयम्, कर्म चेह शरीरे फलञ्चामुत्रेत्याश्रयव्यतिरेकादहेतुरिति ॥

सू० प्रीतेरात्माश्रयत्वादप्रतिषेधः ॥ ५२ ॥

भा० प्रीतिरात्मप्रत्यक्षत्वादात्माश्रया तदाश्रयमेव कर्म धर्ममंजितम् धर्मस्यात्मगुणत्वात्। तस्मादाश्रयव्यतिरेकानुपपत्तिरिति ॥

सू० न पुत्रपशुस्त्रीपरिच्छदहिरण्यान्नादिफलनिर्देशात् ॥ ५३ ॥

भा० पुत्रादि फलं निर्दिश्यते न प्रीतिः ग्रामकामो यजेत पुत्रकामो यजेतेति। तत्र यदुक्तं प्रीतिः फलमित्येतदयुक्तमिति ॥

सू० तत्सम्बन्धात् फलनिष्पत्तेस्तेषु फलवदुपचारः ॥ ५४ ॥

भा० पुत्रादिसम्बन्धात् फलं प्रीतिलक्षणमुत्पद्यत इति पुत्रादिषु फलवदुपचारः यथाऽन्ने प्राणशब्देऽन्नं वै प्राणा इति ॥ फलानन्तरं दुःखमुद्दिष्टम्, उक्तञ्च बाधनालक्षणं दुःखमिति। तत् किमिदं प्रत्यात्मवेदनीयस्य सर्वजन्तुप्रत्य-

भा० चस्य सुखस्य प्रत्याख्यानम्, आहोस्त्रिदयः कल्प इति, अन्य-
इत्याह कथम् न वै सर्वलोकसाक्षिकं सुखं शक्यं प्रत्याख्या-
तुम्, अयन्तु जन्ममरणप्रबन्धानुभवंनिमित्ताद्दुःखान्निर्वि-
ण्यस्य दुःखस्त्रिहासतो दुःखसंज्ञाभावनोपदेशोदुःखहानार्थ
इति, कथा युक्त्या सर्वे खलु सत्त्विकायाः सर्वाण्युत्पत्ति-
स्थानानि सर्वः पुनर्भवोबाधनानुषक्तो दुःखसाहचर्या-
द्बाधनालक्षणं दुःखमित्युक्तम् ऋषिभिर्दुःखसंज्ञाभावन-
मुपदिश्यते अत्र च हेतुरूपादीयते ॥

सू० विविधबाधनायोगाद्दुःखमेव जन्मोत्पत्तिः ॥

॥ ५५ ॥

भा० जन्म जायत इति शरीरेन्द्रियबुद्धयः, शरीरादीनाञ्च
संस्थानविशिष्टानां प्रादुर्भावः उत्पत्तिः । विविधा च
बाधना हीना मध्यमेत्कृष्टा चेति । उत्कृष्टा नारकिणाम्,
तिरश्चान्तु मध्यमा, मनुष्याणान्तु हीना, देवानां हीनतरा
वीतरागाणाञ्च, एवं सर्वमुत्पत्तिस्थानं विविधबाधनानुषक्तं
पश्यतः सुखे तत्साधनेषु च शरीरेन्द्रियबुद्धिषु दुःखसंज्ञा
व्यतिष्ठते, दुःखसंज्ञाव्यवस्थानात् सर्वलोकेष्वनभिरति-
संज्ञा भवति, अनभिरतिसंज्ञामुपासीनस्य सर्वलोक-
विषया तृष्णा विच्छिद्यते, तृष्णाप्रहाणात् सर्वदुःखादि-
मुच्यत इति । यथा विषयोगात् पयोविषमिति बुध्यमा-

भा० नो नोपादत्ते, अनुपाददानो मरणदुःखं नाप्नोति,
दुःखोद्देशस्तु न सुखस्य प्रत्याख्यानम्, कस्मात् ॥

सू० न सुख^{*}स्यान्तरालनिष्पत्तेः ॥ ५६ ॥

भा० न खल्वयं दुःखोद्देशः सुखस्य प्रत्याख्यानम् । कस्मात्
सुखस्यान्तरालनिष्पत्तेः । निष्पद्यते खलु बाधनान्तरालेषु
सुखं प्रत्यात्मवेदनीयं शरीरिणाम्, तदशक्यं प्रत्याख्यातु-
मिति, अथापि ॥

सू० बाधनाऽनिवृत्तेर्वेदयतः पर्येषणदोषादप्रतिषेधः
॥ ५७ ॥

भा० सुखस्य दुःखोद्देशेनेतिप्रकरणात् पर्येषणं प्रार्थना-
विषयार्जनदृष्ट्यापर्येषणस्य दोषो यद्ययं वेदयमानः
प्रार्थयते तस्य प्रार्थितं न सम्पद्यते, सम्पद्य वा विपद्यते,
न्यूनं वा सम्पद्यते, बल प्रत्यनीकं वा सम्पद्यते इत्येतस्मात्
पर्येषणदोषान्नानाविधो मानसः सन्तापोभवति । एवं
वेदयतः पर्येषणदोषाद्बाधनाया अनिवृत्तिः । बाधना-
निवृत्तेर्दुःखसंज्ञाभावनमुद्दिश्यते, अनेन कारणेन दुःखं
जन्म न तु सुखस्याभावादिति । अथाप्येतदनुक्तम् । कामं
कामयमानस्य यदा कामः समृद्धति, अथैनमपरः कामः
क्षिप्रमेव प्रबाधते । अपि चेदुदनेमिं समन्ताद्भूमिमिमां

* सुखस्याप्यन्तरालनिष्पत्तेरिति वृत्तिकारसम्मतः पाठः

भा० लभते स गवायाम्, न स तेन धनेन धनैषी दृष्यति किन्तु
सुखं धनकाम इति ॥

सू० दुःखविकल्पे सुखाभिमानाच्च ॥ ५८ ॥

भा० दुःखसंज्ञाभावनोपदेशः कियते, अयं खलु सुख-
संवेदने व्यवस्थितः सुखं परमपुरुषार्थे मन्यते न सुखाद-
न्यन्निःश्रेयसमस्ति सुखे प्राप्ते चरितार्थः कृतकरणीयो भ-
वति । मिथ्यासंकल्पात् सुखे तत्साधनेषु च विषयेषु
संरज्यते संरक्तः सुखाय घटते घटमानस्याऽस्य जन्म-
जराव्याधिप्रायणानिष्टसंयोगेष्टवियोगप्रार्थितानुपपत्तिनि-
मित्तमनेकविधं यावदुःखमुत्पद्यते तं दुःखविकल्पं सुख-
मित्यभिमन्यते, सुखाङ्गभूतं दुःखम्, न दुःखमनापाद्य
शक्यं सुखमवाप्नुम्, तादर्थ्यात् सुखमेवेदमिति सुखसंज्ञा-
पक्षतप्रज्ञो जायस्व क्षियस्व स*न्भावतीति संसारं नातिव-
र्त्तते, तदस्याः सुखसंज्ञायाः प्रतिपक्षोदुःखसंज्ञाभावन-
मुपदिश्यते दुःखानुषङ्गादुःखं जन्मेति न सुखस्याभावात्
यद्येवं कस्मादुःखं जन्मेति नोच्यते सोऽयमेवं वाच्ये यदेवमा-
ह दुःखमेव जन्मेति तेन सुखाभावं ज्ञापयतीति । जन्मवि-
निग्रहार्थी यो वै खल्वयमेवशब्दः कथं न दुःखं जन्म ख-

* सम्भाषा चेतोति कश्चित् पाठः ।

भा० रूपतः किन्तु दुःखोपचारात्, एवं सुखमपीति, एतदनेनैव निवर्त्यते न तु दुःखमेव जग्येति । दुःखोद्देशानन्तरमपवर्गः स प्रत्याख्यायते ॥

सू० क्लेशानुबन्धान्नास्त्यपवर्गाभावः ॥ ५६ ॥

भा० क्लेशानुबन्धान्नास्त्यपवर्गः, जायमानो ह वै ब्राह्मणस्त्रिभिर्ऋणैर्ऋणवान् जायते ब्रह्मचर्येण ऋषिभ्यो यज्ञेन देवेभ्यः-प्रजया पितृभ्य इति, क्लेशानि तेषामनुबन्धः स्वकर्मभिः सम्बन्धः कर्मसम्बन्धवचनात् । जरामर्थं वा एतत् सत्रं यदग्निहोत्रं दर्शपूर्णमासौ चेति जरया ह एष तस्मात् सत्रादिमुच्यते मृत्युना ह चेति, क्लेशानुबन्धादपवर्गानुष्ठानकालोनास्त्यपवर्गाभावः । क्लेशानुबन्धान्नास्त्यपवर्गः, क्लेशानुबद्धश्च जायते नास्य क्लेशानुबन्धविच्छेदोऽगच्छति । प्रवृत्त्यनुबन्धान्नास्त्यपवर्गः । जन्मप्रवृत्त्ययं यावत् प्रायणं वाग्बुद्धिशरीरारम्भेणाविमुक्तोऽगच्छति तत्र यदुक्तं दुःखजन्मप्रवृत्तिदोषमिथ्याज्ञानानामुत्तरोत्तरापाये तदनन्तराभावादपवर्ग इति तदनुपपन्नमिति । अत्राभिधीयते, यत्तावद्वृणानुबन्धादिति ऋणैरिव ऋणैरिति ॥

सू० प्रधानशब्दानुपपत्तेर्गुणशब्देनानुवादेनिन्दाप्रशंसोपपत्तेः ॥ ६० ॥

भा० ऋणैरिति नायं प्रधानशब्दः यत्र खल्वेकः प्रत्यादेयं ददाति द्वितीयश्च प्रतिदेयं गृह्णाति तत्रास्य दृष्टत्वात् प्रधानमृणशब्दः, न चैतदिहोपपद्यते प्रधानशब्दानुपपत्तेर्गुणशब्देनायमनुवादः ऋणैरिव ऋणैरिति प्रयुक्तोपमश्चेतत् अग्निर्माणवक इति । अन्यत्र दृष्टश्चायमृणशब्द इह प्रयुज्यते यथाऽग्निशब्दो माणवके, कथं गुणशब्देनानुवादः, निन्दाप्रशंसोपपत्तेः कर्मलोपे ऋणोव ऋणादानान्निन्द्यते, कर्मानुष्ठाने च ऋणोव ऋणदानात् प्रशस्यते । जायमान इति गुणशब्दो विपर्ययेऽनधिकारात् । जायमानो ह वै ब्राह्मण इति चशब्दो गृहस्थः सम्यद्यमानो जायमान इति । यदायं गृहस्थो जायते तदा कर्मभिरधिक्रियते मातृतो जायमानस्यानधिकारात्, यदा तु मातृतो जायते कुमारो न तदा कर्मभिरधिक्रियते, अर्थिनः शक्तस्य चाधिकारात् । अर्थिनः कर्मभिरधिकारः कर्मविधौ कामसंयोगस्यतेः अग्निहोत्रं जुहुयात् स्वर्गकामः इत्येवमादि, शक्तस्य च प्रवृत्तिसम्भवात् शक्तस्य कर्मभिरधिकारः प्रवृत्तिसम्भवात्, शक्तः खलु विहिते कर्माणि प्रवर्तते नेतर इति, उभयाभावस्तु प्रधानशब्दार्थे मातृतो जायमाने कुमारे उभयमर्थिता शक्तिश्च न भवतीति । न भिद्यते च लौकिकाद्याद्यादौदिकं वाक्यम् प्रेक्षापूर्वकारिपुरुषप्रणीतत्वेन तत्र लौकिकस्तावदपरीचकोऽपि न जातमात्रं कुमारकमेवं ब्रूयादधीष्व यजस्व ब्रह्मचर्यं

भा० चरेति । कुत एवं स्वप्नरूपपञ्चानवद्यवादी उपदेशार्थेन प्रयुक्त उपदिशति । न खलु वै नर्तकोऽन्धेषु प्रवर्तते न गायनो वधिरेष्विति, उपदिष्टार्थविज्ञान*स्योपदेशविषयः यस्योपदिष्टमर्थं विजानाति तं प्रत्युपदेशः क्रियते न चैतदस्ति जायमानकुमारके इति गार्हस्थ्यलिङ्गञ्च मन्त्रब्राह्मणं कर्माभिवदति यच्च मन्त्रब्राह्मणं कर्माभिवदति तत्पत्नीसम्बन्धादिना गार्हस्थ्यलिङ्गेनोपपन्नम् । तस्माद्गृहस्थोऽयं जायमानोऽभिधीयत इति । अर्थित्वस्य चाविपरिणामे जरामर्थवादोपपत्तिः, यावच्चास्य फलेनार्थित्वं न विपरिणमते न निवर्तते तावदनेन कर्मानुष्ठेयमित्युपपद्यते जरामर्थवादसंप्रतीति, जरया ह वेत्यायुषस्तुरीयस्य चतुर्थस्य प्रव्रज्यायुक्तस्य वचनम्, जरया ह वा एष एतस्माद्विमुच्यत इति, आयुषस्तुरीयं चतुर्थं प्रव्रज्यायुक्तं जरेत्युच्यते तच्च हि प्रव्रज्या विधीयते अत्यन्तजरामयोगे जरया ह वेत्यनर्थकम् अशक्तो विमुच्यत इत्येतदपि नोपपद्यते स्वयमशक्तस्य वाङ्मां शक्तिमाह । अन्तेवासी वा जुहुयाद्ब्रह्मणा स परिकीतः क्षीरहोता वा जुहुयाद्ब्रह्मेण स परिकीत इति । अथापि विहितं वानूद्येत कामाद्वार्यः परिकल्पयेत विहितानुवचनं न्यायमिति ऋणवानिवास्तन्तो गृहस्थः कर्मासु प्रवर्तते इत्युपपन्नं वा-

भा० कस्य सामर्थ्यम्, फलस्य हि साधनानि प्रयत्नविषयो-
न फलम्, तानि सम्यन्त्रानि फलाय कल्पन्ते, विहि-
तञ्च जायमानं विधीयते च जायमानं तेन यः सम्बध्यते
सोऽयं जायमान इति । प्रत्यक्षविधानाभावादिति चेत्
न प्रतिषेधस्यापि प्रत्यक्षविधानाभावादिति । प्रत्यक्षतो-
विधीयते गार्हस्थ्यं ब्राह्मणेन, यदि चाश्रमान्तरमभवि-
स्यत् तदपि व्यधास्यत् प्रत्यक्षतः, प्रत्यक्षविधानाभावान्ना-
स्याश्रमान्तरमिति न प्रतिषेधस्य प्रत्यक्षविधानाभावात्
न प्रतिषेधोऽपि वै ब्राह्मणेन प्रत्यक्षतोविधीयते न सन्त्या-
श्रमान्तराणि एक एव गृहस्थाश्रम इति प्रतिषेधस्य
प्रत्यक्षतोऽश्रवणादयुक्तमेतदिति ॥

सू० अधिकाराच्च विधानं विद्यान्तरवत् ॥ ६१ ॥

भा० यथा शास्त्रान्तराणि स्वे स्वेऽधिकारे प्रत्यक्षतोविधा-
यकानि नार्थान्तराभावात्, एवमिदम् ब्राह्मणं गृहस्थ-
शास्त्रं स्वे स्वेऽधिकारे प्रत्यक्षतोविधायकं नाश्रमान्तरा-
णामभावादिति । ऋग्ब्राह्मणञ्चापवर्गाभिधाय्यभिधी-
यते । ऋचस्य ब्राह्मणानि चापवर्गाभिवादीनि भवन्ति ।
ऋचस्य तावत्, कर्मभिर्मृत्युमृषयो निषेदुः प्रजावन्तो द्र-
विणमिच्छमानाः, अथापरे ऋषयो मनोषिणः परं कर्म-
भ्योऽमृतत्वमानशुः, न कर्मणा न प्रजया धनेन, त्यागे-
नैके अमृतत्वमानशुः । परेण नाकं निहितं गुहायां

भा० विभ्राजते यद्यतयोविशन्ति, वेदाहमेतं पुरुषं महान्त-
मादित्यवर्णन्तमसः परस्तात् । तमेव विदित्वातिमृत्युमेति
नान्यः पन्था विद्यतेऽयमाय । अथ ब्राह्मणानि, त्रयो
धर्मस्कन्धाः यज्ञोऽध्ययनं दानमिति, प्रथमस्तपएव,
द्वितीयो ब्रह्मचार्याचार्यकुलवासी, तृतीयोऽत्यन्तमात्मा-
नमाचार्यकुलेऽवसादयन्, सर्व एवैते पुण्यलोका भवन्ति ।
ब्रह्मसंख्योऽमृतत्वमेति । एतमेव प्रब्राजिनो लोकमभी-
भून्तः प्रव्रजन्तीति अथो खल्वाहुः काममयएवायं पु-
रुष इति स यथाकामो भवति तथा क्रतुर्भवति तथा
तत्कर्म कुरुते यत्कर्म कुरुते तदभिसम्पद्यते इति कर्म-
भिः संसरणमुक्त्वा प्रकृतमन्यदुपदिशन्ति इति तु कामय-
मानो योऽकामो निष्काम आत्मकामो भवति न तस्य
प्राणा उत्क्रामन्ति इहैव समवलीयन्ते ब्रह्मैव सन् ब्रह्मा-
प्येतीति । तत्र यदुक्तमृणानुबन्धादपवर्गाभाव इत्येतद्युक्त-
मिति ये चत्वारः पथयो देवयाना इति च चातुराश्रम्य-
श्रुतेरैकाश्रम्यानुपपत्तिः, फलार्थिनस्येदं ब्राह्मणञ्चरामर्थ्यं
वा एतत् सत्रं यदग्निहोत्रं दर्शपूर्णमासौ चेति, कथम् ॥

सू० समारोपणादात्मन्यप्रतिषेधः ॥ ६२ ॥

भा० प्राजापत्यामिष्टिं निरूप्य तस्यां सार्ववेदसं ऊत्वा
आत्मन्यग्नीन् समारोप्य ब्राह्मणः प्रव्रजेदिति श्रूयते, तेन

* पौर्णति क्वचित् पाठः । † रोपादिति वृत्तिकारसम्मतः पाठः ।

भा० विजानीमः प्रजावित्तलोकैषणयाश्च व्युत्थायाय भिक्षाचर्यं
 चरन्तीति, एषणाभ्यश्च व्युत्थितस्य पात्रचयान्तानि कर्माणि
 नोपपद्यन्त इति नाविशेषेण कर्तुः प्रयोजकफलं भवती-
 ति । चातुराश्रम्यविधानाच्चेतिहासपुराणधर्मशास्त्रेवैका-
 श्रम्यानुपपत्तिः । तदप्रमाणमिति चेत् न प्रमाणेन खलु ब्रा-
 ह्मणेनेतिहासपुराणस्य प्रामाण्यमभ्यनुज्ञायते, ते वा खल्वेते
 अथर्वाङ्गिरस एतदितिहासपुराणमभ्यवदन् इतिहास-
 पुराणं पञ्चमं वेदानां वेद इति । तस्मादयुक्तमेतदप्रामा-
 ण्यमिति । अप्रामाण्ये च धर्मशास्त्रस्य प्राणभृतां व्यवहार-
 लोपास्त्रोकोच्छेदप्रसङ्गः । द्रष्टृप्रवक्तृसामान्याच्चाप्रामाण्या-
 नुपपत्तिः, य एव मन्त्रब्राह्मणस्य द्रष्टारः प्रवक्तारस्य ते ख-
 ल्वितिहासपुराणस्य धर्मशास्त्रस्य चेति । विषयव्यवस्थानाच्च
 यथाविषयं प्रामाण्यम् अन्योमन्त्रब्राह्मणस्य विषयोऽन्यच्चे-
 तिहासपुराणधर्मशास्त्राणामिति । यज्ञो मन्त्रब्राह्मणस्य,
 लोकवृत्तमितिहासपुराणस्य लोकव्यवहारव्यवस्थानं ध-
 र्मशास्त्रस्य विषयः । तत्रैकेन सर्वं व्यवस्थाप्यत इति, यथा-
 विषयमेतानि प्रमाणानोद्भियादिवदिति । यत्पुनरेतत् क्ले-
 शान्बन्धस्याविच्छेदादिति ॥

सू० सुषुप्तस्य स्वप्नादर्शने क्लेशाभावादपवर्गः ॥

॥ ६३ ॥

भा० यथा सुषुप्तस्य खलु स्वप्नादर्शने रागानुबन्धः सुख-

भा० दुःखानुबन्धस्य विच्छिद्यते तथा ऽपवर्गेऽपीति । एतच्च ब्रह्म-
विदोमुक्तस्यात्मनो रूपमुदाहरन्तीति । यदपि प्रवृत्त्यनु-
बन्धादिति ॥

सू० न प्रवृत्तिः प्रतिसन्धानाय हीनक्लेशस्य ॥ ६४ ॥

भा० प्रचीणेषु रागद्वेषमोहेषु प्रवृत्तिर्न प्रतिसन्धानाय,
पूर्वसन्धिसु पूर्वजन्मनिवृत्तौ पुनर्जन्म तच्चादृष्टकारितम्,
तस्यां प्रक्षोणायां पूर्वजन्माभावे जन्मान्तराभावोऽप्रतिस-
न्धानमपवर्गः । कर्मवैकल्यप्रसङ्ग इति चेत् न कर्मविपा-
कप्रतिसंवेदनस्याप्रत्याख्यानात् पूर्वजन्मनिवृत्तौ पुनर्जन्म
न भवतीत्युच्यते न तु कर्मविपाकप्रतिसंवेदनं प्रत्या-
ख्यायते । सर्वाणि पूर्वकर्माणि ह्यन्ते जन्मनि विपच्यन्त
इति ॥

सू० न क्लेशसन्ततेः स्वाभाविकत्वात् ॥ ६५ ॥

भा० नापपद्यते क्लेशानुबन्धविच्छेदः, कस्मात् क्लेशसन्ततेः
स्वाभाविकत्वात् अनादिरियं क्लेशसन्ततिः नचानादिः
शक्यः उच्छेत्तुमिति । अत्र कश्चित् परोक्षारमाह ॥

सू० प्रागुत्पत्तेरभावानित्यत्ववत्स्वाभाविकेऽप्यनित्य-
त्वम् ॥ ६६ ॥

मिति एवं साभाविकी क्लेशसक्तिरिति ॥

हृ० अणुश्यामताऽनित्यत्ववदा ॥ ६७ ॥

भा० अपरत्राह यथाऽनादिरणुश्यामता अथ चाश्रित-
योनादनित्या तथा क्लेशसक्तिरपीति, सतः खलु धर्मानि-
त्यत्वमनित्यत्वञ्च तत्त्वभावे भावे भाक्तमिति। अनादिरणु-
श्यामतेति हेत्वभावादयुक्तम्, अनुत्पत्तिधर्ममनित्यमिति
भाव हेतुरस्तीति। अयन्तु समाधिः ॥

हृ० न सङ्कल्पनिमित्तत्वाच्च रागादीनाम् ॥ ६८ ॥

भा० कर्षणनिमित्तत्वादितरेतरनिमित्तत्वाच्चेति समुच्चयः।
मिथ्यासङ्कल्पेभ्यो रक्षणोपकोपनीयमोहनीयेभ्यो रागद्वेष-
मोहा उत्पद्यन्ते कर्म च सत्त्वनिकायनिर्वर्तकं नेत्र-
— रानुद्वेषमोहान् निर्वर्तयति — मदमनात्
पृथगेति हि कश्चित्सत्त्वनिकायोरागवृत्तश्च कश्चिद्वेष-
वृत्तश्च कश्चिन्मोहवृत्तश्च इति। इतरेतरनिमित्ता य
रागादीनामुत्पत्तिः, मूढोरप्यति, मूढः लुप्यति, रजो
लुप्यति, लुपितो मुह्यति। एवेति कायपुरुषाणां तत्र
साक्षादुत्पत्तिः। कारणमुत्पत्तिः च साक्षात्पुनश्चेति

भा० रागादीनामत्यन्तमनुत्पत्तिरिति । अनादिश्च क्लेशसमा-
तिरित्युक्तम् । सर्व्वे इमे खल्वध्यात्मिका भावा अनादि-
ना प्रबन्धेन प्रवर्त्तन्ते शरीरादयः, न जातव्यं कश्चिदनुत्प-
न्नपूर्व्वः प्रथमत उत्पद्यते अन्यत्र तत्त्वज्ञानात्, नचैवं सत्यनु-
त्पत्तिधर्मकं किञ्चिद्व्ययधर्मकं प्रतिज्ञायत इति । कर्म च
सत्त्वनिकायनिर्वर्त्तकम् तत्त्वज्ञानकृतात् मिथ्यासङ्ख्यविधा-
ताच्च रागाद्युत्पत्तिनिमित्तं भवति सुखदुःखसम्बन्धिफ-
लान् भवतीति ॥

इति वात्स्यायनीये न्यायभाष्ये चतुर्थाध्यायस्याद्यमा-
ङ्गिकम् ॥ * ॥

भा० किन्तु खलु मो धावनो विषयास्त्वावसु प्रत्येकं ज्ञान-
मुत्पद्यते । अथ कश्चिदुत्पद्यत इति कस्याञ्च विशेषः, न ता-
वदेकैकञ्च चावद्विषयमुत्पद्यते ज्ञेयानामानन्यात्, नापि
कश्चिदुत्पद्यते, यत्र मोत्पद्यते तत्रानिवृत्तोमोहइति
मोहत्रेषप्रसङ्गः । न चात्रविषयेष तत्त्वज्ञानेनान्यविषयो-
मोहः ऋषः प्रतिषेद्धमिति । मिथ्याज्ञानं वै खलु मोहो-
न तत्त्वज्ञानस्यानुत्पत्तिमात्रं, तच्च मिथ्याज्ञानं यत्र विषये
प्रवर्त्तमानं संसारदीप्तं भवति स विषयस्तत्त्वतो ज्ञेय इति,

भा० किं पुनस्तन्मिथ्याज्ञानम् अनात्मन्यात्मग्रहः, अहमस्मीति मोक्षोऽहङ्कार इति । अनात्माहं खल्वहमस्मीति पश्यतो दृष्टिरहङ्कार इति, किं पुनस्तदर्थजातं तद्विषयोऽहङ्कारः शरीरेन्द्रियमनोवेदनावुद्भूयः, कथं तद्विषयोऽहङ्कारः संसारबीजं भवति । अयं खलु शरीराद्यर्थजातमहमस्मीति व्यवसितस्तदुच्छेदेनात्मोच्छेदं मन्यमानोऽनुच्छेदहृणापरिभुतः पुनः पुनस्तदुपादत्ते तदुपाददानो जन्ममरणाय यतते तेनावियोगास्त्रात्यन्तं दुःखादिमुच्यते इति । यस्तु दुःखं दुःखायतनं दुःखानुषक्तं सुखञ्च सर्वमिदं दुःखमिति पश्यति, स दुःखं परिजानाति परिज्ञातञ्च दुःखं प्रहीणं भवत्यनुपादानात् सविषास्रवत्, एवं दोषान् कर्म च दुःखहेतुरिति पश्यति, न वा प्रहीणेषु दोषेषु दुःखप्रबन्धोच्छेदेन ब्रह्मभवितुमिति दोषान् जहाति, प्रहीणेषु च दोषेषु न प्रवृत्तिः प्रतिसन्धानाद्येत्युक्तम्, प्रेत्यभावफलदुःखानि च शेषानि व्यवस्थापयति कर्म च दोषांश्च प्रहेयान् अपवर्गाऽधिगन्तव्यस्तस्याधिगमोपायस्तत्त्वज्ञानम्, एवं चतसृभिर्विधाभिः प्रमेयं विभक्तमासेवमानस्याभ्यस्यतो भावयतः सम्यग्दर्शनम् यथाभूतावबोधस्तत्त्वज्ञानमुत्पद्यते, एवं च ॥

सू० दोषनिमित्तानां तत्त्वज्ञानादहङ्कारनिवृत्तिः ॥

॥ १ ॥

भा० शरीरादि दुःखानां प्रमेयं दोषनिमित्तं तद्विषयत्वा-

भा० मिथ्याज्ञानस्य, तदिदं तत्त्वज्ञानं तद्विषयमुत्पन्नसहकारं
निवर्त्तयति, समानविषये तयोर्विरोधात्, एवं तत्त्वज्ञाना-
दुःखजन्मप्रवृत्तिदोषमिथ्याज्ञानानामुत्तरोत्तरापाये तद-
जन्मराभावादपवर्ग इति, स चायं मास्त्वार्यसङ्गोऽनूद्यते
नापूर्वाविधीयत इति । प्रसङ्गानामुपपूर्वा तु खलु ॥

सू० दोषनिमित्तं रूपादयो विषयाः सङ्कल्पकृताः ॥

॥ २ ॥

भा० कामविषया इन्द्रियार्था इति रूपादय उच्यन्ते ते
मिथ्यासङ्कल्प्यमाना रागद्वेषमोहान् प्रवर्त्तयन्ति, तान् पूर्व-
म्प्रसञ्ज्यते, तांश्च प्रसञ्ज्याणस्य रूपादिविषयो मिथ्यास-
ङ्कल्पो निवर्त्तते, तस्मिन्नावध्यात्मं शरीरादि प्रसञ्ज्यते,
तत्प्रसङ्गानादध्यात्मविषयोऽहङ्कारो निवर्त्तते, सोऽयमध्यात्मं
बहिः विविक्तचित्तो विहरन् मुक्त इत्युच्यते । अतः परं
काचित् संज्ञा हेया, काचिद्भावयितव्येत्युपदिश्यते, नार्थ-
निराकरणमर्थोपादानं वा कथमिति ॥

सू० तस्मिन्मन्त्रवयवव्याभिमानः ॥ ३ ॥

भा० तेषां दोषाणां निमित्तमन्त्रवयवव्याभिमानः सा च खलु
कीर्तिर्दोषपरिस्कारा मुदयस्य, मुदयसंज्ञा च स्त्रियाः । प-

भा० रिक्कारश्च निमित्तसंज्ञा अनुव्यञ्जनसंज्ञा च, निमित्तसंज्ञा दन्तोष्ठं चतुर्नासिकम्, अनुव्यञ्जनसंज्ञा इत्थं दन्तौ इत्यभो-
ष्टावृत्ति, सेयं संज्ञा कामं वर्द्धयति तदनुषक्तांश्च दोषान्
विवर्णनीयान्, वर्जनन्वयाः भेदेनावयवसंज्ञा केशलोम-
मांसशोणितास्त्रिस्त्याद्युगिराकफपित्तोच्चारादिसंज्ञा, ताम-
श्रुभसंज्ञेत्याचक्षते, तामस्य भावयतः कामरागः प्रक्षीयते,
सत्येव च द्विविधे विषये काचित् संज्ञा भावनीया काचित्
परिवर्जनीयेत्युपदिश्यते यथा विषममृक्तेऽन्नेऽन्नसंज्ञोपादा-
नाद्यु विषसंज्ञा प्रहाणायेति । अथेदानीमर्थं निराकरि-
ष्यताऽवयव्युपपाद्यते ॥

सू० विद्याऽविद्याद्वैविध्यात् संशयः ॥ ४ ॥

भा० सदसतोऽपलम्भादिद्या द्विविधा, सदसतोरनुपलम्भा-
दविद्यापि द्विविधा, उपलभ्यमानेऽवयविनि विद्याद्वैविध्यात्
संशयः, अनुपलभ्यमाने चाविद्याद्वैविध्यात् संशयः । सोऽय-
मवयवी यद्युपलभ्यते अथापि नोपलभ्यते न कथञ्चन
संशयान्मुच्यते इति ॥

सू० तदसंशयः पूर्वहेतुप्रसिद्धत्वात् ॥ ५ ॥

भा० तस्मिन्ननुपपन्नः संशयः, कस्मात् पूर्वोक्तहेतूनामप्रति-
वेधादसि द्रव्यान्तरारम्भ इति ॥

सू० दृष्ट्यनुपपत्तेरपि तर्हि न संशयः ॥ ६ ॥

भा० दृष्ट्यनुपपत्तेरपि तर्हि संशयानुपपत्तिर्नास्त्यवयवीति
तद्विभजते ॥

सू० कृतस्त्रैकदेशावृत्तित्वादवयवानामवयव्यभावः ॥
॥ ७ ॥

भा० एकैकोऽवयवो न तावत् कृत्स्नेऽवयविनि वर्त्तते तयोः
परिमाणभेदादवयवान्तरसम्बन्धाभावप्रसङ्गाच्च, नाप्यवय-
व्येकदेशेन, न ह्यस्यान्येऽवयवाः एकदेशभूताः सन्तीति ।
अथावयवेष्वेवावयवी वर्त्तते ॥

सू० तेषु चावृत्तेरवयव्यभावः ॥ ८ ॥

भा० न तावत् प्रत्यवयवं वर्त्तते तयोः परिमाणभेदात्
द्रव्यस्य चैकद्रव्यत्वप्रसङ्गात्, नाप्येकदेशैः सर्वेषु अन्याव-
यवाभावात्, तदेवं युक्तः संशयो नास्त्यवयवीति ॥

सू० पृथक् चावयवेभ्योऽवृत्तेः ॥ ९ ॥

भा० पृथक् चावयवेभ्यो धर्मिभ्यो धर्मस्याप्यवयवादिति स-
मानम् ॥

सू० नचावयववयवाः ॥ १० ॥

सू० एकस्मिन् भेदाभावाद्भेदशब्दप्रयोगानुपपत्तेर-
प्रश्नः ॥ ११ ॥

भा० किं प्रत्ययवयवं कृत्त्रोऽवयवी वर्त्तते अथैकदेशेनेति गो-
पपद्यते प्रश्नः, कस्मात् एकस्मिन् भेदाभावाद्भेदशब्दप्र-
योगानुपपत्तेः । कृत्त्रमित्यनेकस्याशेषाभिधानम्, एकदेश-
इति नामाले कस्यचिदभिधानम्, ताविमौ कृत्त्रैकदेशशब्दौ
भेदविषयौ नैकस्मिन्वयविन्युपपद्यते भेदाभावादिति, अ-
न्यावयवाभावाच्चैकदेशेन वर्त्तते इत्यहेतुः ॥

सू० अवयवान्तराभावेऽप्यवृत्तेरहेतुः ॥ १२ ॥

भा० अवयवान्तराभावादिति यद्यप्येकदेशोऽवयवान्तरभू-
तः स्यात् तथाप्यवयवेऽवयवान्तरं वर्त्तते नावयवोति, अन्या-
वयवभावेऽप्यवृत्तेरवयविनो नैकदेशेन वृत्तिरन्यावयवा-
भावादित्यहेतुः, वृत्तिः कथमिति चेत् एकस्थानेकत्राश्र-
याश्रितसम्बन्धलक्षणा प्राप्तिः, आश्रयाश्रितभावः कथमिति
चेत् यस्य यतोऽन्यत्रात्मलाभानुपपत्तिः स आश्रयः, न
कारणद्रव्येभ्योऽन्यत्र कार्यद्रव्यमात्मानं लभते, विपर्ययस्तु
कारणद्रव्येऽस्त्विति, नित्येषु कथमिति चेत् अनित्येषु दर्शनात्
चिद्वत् । नित्येषु द्रव्येषु कथमाश्रयाश्रयिभाव इतीति चेत्

भा० अनित्येषु द्रव्यगुणेषु दर्शनादाश्रयमितभावस्य नित्येषु सिद्धिरिति । तस्मादवयव्यभिमानः प्रतिषिद्धते निःशेष-
कामस्य नावयवी यथा रूपादिषु मिथ्यासङ्कल्पो न रूपा-
दय इति । सर्वाग्रहणमवयव्यसिद्धेरिति प्रत्यवस्थितोऽप्ये-
तदाह ॥

सू० केशसमूहे तैमिरिकोपलब्धिवत्तदुपलब्धिः ॥
॥ १३ ॥

भा० यथैकैकः केशस्तैमिरिकेण नोपलभ्यते, केशसमूहस्तु प-
लभ्यते, तथैकैकोऽणुर्नोपलभ्यते अणुसञ्चयस्तूपलभ्यते, तदि-
दमणुसमूहविषयं ग्रहणमिति ॥

सू० स्वविषयानतिक्रमेणैन्द्रियस्य पटुमन्दभावादि-
वयग्रहणस्य तथाभावो नाविषये प्रवृत्तिः ॥
॥ १४ ॥

भा० यथा विषयमिन्द्रियाणां पटुमन्दभावादिवयग्रहणा-
नां पटुमन्दभावो भवति, चक्षुः खलु प्रकृत्यमाणं नाविषय-
कमृच्छाति, निरुक्त्यमाणञ्च न स्वविषयात् प्रत्यवते, सोऽयं
तैमिरिकः कश्चिच्चक्षुर्विषयं केशं न गृह्णाति कश्चित् गृह्णाति
केशसमूहम्, उभयं ह्येतैमिरिकेण चक्षुषा गृह्यते, परमाणव-
स्त्वतीन्द्रियाः इन्द्रियाविषयभूता न केनचिदिन्द्रियेण गृह्यन्ते,

भा० समुदितास्तु गृह्यन्त इत्यविषये प्रवृत्तिरिन्द्रियस्य प्रसज्येत, न
 जालर्थान्तरमणुभ्यो गृह्यत इति, ते खल्विमे परमाणवः स-
 म्भिता गृह्यमाणा अतीन्द्रियत्वं जहति, विद्युक्तास्यागृह्यमाणा
 अतीन्द्रियत्वं जहति इति सोऽयं द्रव्यान्तरानुत्पत्तावतिम-
 हान् व्याघातः, इत्युपपद्यते द्रव्यान्तरम्, यत् ग्रहणस्य विषय
 इति, सञ्चयमात्रं विषय इति चेत् न सञ्चयस्य संयोगभावा-
 त्तस्य चातीन्द्रियस्याग्रहणादयुक्तम्, सञ्चयः खल्वनेकस्य
 संयोगः स च गृह्यमाणाश्रयो गृह्यते नातीन्द्रियाश्रयः ।
 भवति हीदमनेन संयुक्तमिति, तस्मादयुक्तमेतदिति । गृ-
 ह्यमाणस्य चेन्द्रियेण विषयस्यावरणाद्यनुपलब्धिकारणमु-
 पलभ्यते तस्मान्नेन्द्रियदौर्बल्यादनुपलब्धिरणूनाम् । यथा
 नेन्द्रियदौर्बल्याच्चक्षुषाऽनुपलब्धिर्गन्धादोनामिति ॥

सू० अवयवावयविप्रसङ्गश्चैवमाप्रलयात् ॥ १५ ॥

भा० यः खल्ववयविनोऽवयवेषु वृत्तिप्रतिषेधादभावः सोऽ-
 यमवयवस्यावयवेषु प्रसज्यमानः, सर्वप्रलयाय वा कल्पेत,
 निरवयवाद्वा परमाणुत्वं निवर्त्तत, उभयथा चोपलब्धि-
 विषयस्याभावः, तदभावादुपलब्ध्यभावः । उपलब्ध्याश्रय-
 स्त्वाद्यं वृत्तिप्रतिषेधः स आश्रयं व्याप्नन्नात्मघाताय कल्प्यत
 इति । अथापि ॥

सू० न प्रत्ययोऽणुसङ्गावात् ॥ १६ ॥

भा० अवयवविभागमाश्रित्य वृत्तिप्रतिषेधादभावः प्रस-
ज्यमानो निरवयवात् परमाणो निर्वर्तते न सर्वप्रत्ययाद्य
कस्यते । निरवयवं तु खलु परमाणोर्विभागैरत्यन्तर-
प्रसङ्गस्य यतो नात्पीयस्यनावस्थानात् खोटस्य खलु प्रवि-
भज्यमानावयवस्यात्यन्तरमत्यन्तममुत्तरेण भवति स
चायमत्यन्तरप्रसङ्गः यस्मात्तात्पर्यतरमस्ति यः परमोऽत्यन्तत्र
निवर्तते, यतश्च नात्पीयोऽस्ति तं परमाणुं प्रचक्ष्यते इति ॥

सू० परं वा चुटेः ॥ १७ ॥

भा० अवयवविभागस्यानवस्थानाद्ब्रूयाणामसंख्येयत्वात् चु-
टिनिवृत्तिरिति । अथेदानीमानुपसम्भिकः सर्वं ना-
स्तीति मन्यमान आह ॥

सू० आकाशव्यतिभेदात् तदनुपपत्तिः ॥ १८ ॥

भा० तस्याणोर्निरवयवस्यानुपपत्तिः, कस्मात् आकाशव्य-
तिभेदात् । अन्तर्वह्निश्चाणुराकाशेन समाविष्टौ व्यतिभिन्नः
व्यतिभेदात् सावयवः, सावयवत्वादनित्य इति ॥

सू० आकाशासर्वगतत्वं वा ॥ १९ ॥

भा० अथैतन्नेव्यते परमाणोरनर्गाख्याकाशमित्यसर्वगत-
त्वं प्रसज्यत इति ॥

सू० अन्तर्वहिश्च कार्यद्रव्यस्य कारणान्तरवचनाद्-
कार्यं तदभावः ॥ २० ॥

भा० अन्तरिति पिहितं कारणान्तरैः कारणमुच्यते, वहि-
रिति च व्यवधायकमव्यवहितं कारणमेवोच्यते, तदेतत्-
कार्यद्रव्यस्य संभवति नाणोरकार्यत्वात् अकार्यं हि पर-
माणवान्तर्वहिरित्यस्याभावः । यत्र चास्य भावोऽणुकार्यं
तत्र परमाणुः, यतो हि नाण्यतरमस्ति स परमाणुरिति ॥

सू० सर्वसंयोगशब्दविभवाच्च सर्वगतम् ॥ २१ ॥

भा० यत्र कश्चिदुत्पन्नाः शब्दा विभवन्त्याकाशे तदांशया-
भवन्ति मनोभिः परमाणुभिस्तत्कार्यैश्च संयोगा विभ-
वन्त्याकाशे नासंयुक्तमाकाशेन किञ्चिन्मूर्तद्रव्यमुपलभ्यते त-
स्मादासर्वगतमिति ॥

सू० अव्यूहाविष्टम्भविभुत्वानि चाकाशधर्माः ॥ २२ ॥

भा० संयताप्रतिघातिना द्रव्येण न व्यूह्यते यथा काष्ठे-
 नोदकम्, कस्मात् निरवयवत्वात् सर्पश्च प्रतिघाति द्रव्यं
 न विष्टभ्राति, नास्य क्रियाहेतुं गुणं प्रतिबभ्राति, कस्मात्
 अस्यर्शत्वात् विपर्यये हि विष्टम्भोदृष्ट इति । स भवान् स्पर्श-
 वति द्रव्ये दृष्टं धर्मं विपरीते नाशङ्कितुमर्हति । अण्व-
 वयवस्याणुतरत्वप्रसङ्गादणुकार्यप्रतिषेधः । सावयवत्वे चा-
 षोरणवयवोऽणुतरइतिप्रसज्यते, कस्मात् कार्यकारण-
 द्रव्ययोः परिमाणभेददर्शनात् । तस्मादण्ववयवस्याणुत-
 रत्वम्, यस्तु सावयवोऽणुकार्यं तदिति, तस्मादणुकार्य-
 मिदं प्रतिषिध्यत इति, कारणविभागाच्च कार्यस्थानित्यत्वं
 नाकाशव्यतिभेदात् लोष्टस्यावयवविभागादनित्यत्वं ना-
 काशसमावेशादिति ॥

सू० मूर्तिमताञ्च संस्थानोपपत्तेरवयवसङ्गावः ॥
 ॥ २३ ॥

भा० परिच्छिन्नाणां हि स्पर्शवतां संस्थानं त्रिकोणं चतु-
 रक्षं समं परिमण्डलमित्युपपद्यते, यत् तत्संस्थानं सोऽ-
 वयवसन्निवेशः, परिमण्डलास्त्राणवस्तस्मात् सावयवा-
 इति ॥

सू० संयोगोपपत्तश्च ॥ २४ ॥

भा० मध्ये सञ्चणुः पूर्वापराभ्यामणुभ्यां संयुक्तस्योर्व्यवधानं कुरुते व्यवधानेनानुमीयते, पूर्वभागेन पूर्वेणाणुना संयुज्यते, परभागेणापरेणाणुना संयुज्यते, यौ तौ पूर्वापरौ भागौ तावस्यावयवौ, एवं सर्व्वतः संयुज्यमानस्य सर्व्वतो-
भागा अवयवा इति, यत् तावन्मूर्त्तिमतां संस्थानोपपत्तेर-
वयवसङ्गाव इति, अत्रोक्तं किमुक्तम् विभागात्पतरप्रस-
ङ्गस्य यतो नात्पीयस्तत्र निवृत्तेरखवयवस्य चाणुतरत्व-
प्रसङ्गादणुकार्य्यप्रतिषेध इति । यत् पुनरेतत् संयो-
गोपपत्तेश्चेति स्पर्शवत्त्वाद्भवधानमाश्रयस्य चाव्याप्या भाग-
भक्तिः, उक्तञ्चात्र स्पर्शवानणुः स्पर्शवतोरण्वोः प्रतिघाता-
द्भवधायको न सावयवत्वात्, स्पर्शवत्त्वाच्च व्यवधाने सत्य-
णुसंयोगोनाश्रयं व्याप्नोतीति भागभक्तिर्भवति । भाग-
वानिवायमिति, उक्तञ्चात्र विभागेऽपतरप्रसङ्गस्य यतो
नात्पीयस्तत्रावस्थानात् तदवयवस्य चाणुतरत्वप्रसङ्गाद-
णुकार्य्यप्रतिषेध इति । मूर्त्तिमताश्च संस्थानोपपत्तेः सं-
योगोपपत्तेश्च परमाणूनां सावयवत्वमिति हेतोः ॥

सू० अनवस्थाकारित्वादनवस्थानुपपत्तेश्चाप्रतिषेधः

॥ २५ ॥

भा० यावन्मूर्त्तिमद्यावच्च संयुज्यते तत्सर्व्वं सावयवमित्यन-

भा० वस्त्राकारिणादिभ्यो हेतुः, या अनवस्था नोपपद्यते सत्यान-
 वस्थायां सत्यौ हेतुः स्याताम् । तस्मादप्रतिषेधोऽयं निर-
 वयवस्येति । विभागस्य च विभज्यमानहानेर्नोपपद्यते
 तस्मात् प्रलयाज्जता नोपपद्यत इति । अनवस्थायाश्च प्रत्य-
 धिकरणं द्रव्यावयवानामानन्त्यात् परिमाणभेदानां गुरु-
 त्वस्य चायद्वयम्, समानपरिमाणत्वं चावयवावयविनोः पर-
 माणवयवविभागादूर्ध्वमिति । यदिदं भवान् बुद्धीराश्रित्य
 बुद्धिविषयाः सन्तीति मन्यते । मिथ्याबुद्ध्य एताः । यदि
 हि तत्त्वबुद्ध्यः सुबुद्ध्या विवेचने क्रियमाणे याथाक्यं बुद्धि-
 विषयाणामुपलभ्येत ॥

सू० बुद्ध्या विवेचनात्तु भावानां याथाक्यानुपलब्धि-
 स्तन्वपकर्षणे पटसद्भावानुपलब्धिवत् तदनु-
 पलब्धिः ॥ २६ ॥

भा० यथायं तन्तुरयं तन्तुरिति प्रत्येकं तन्तुषु विविच्य-
 मानेषु नार्थान्तरं किञ्चिदुपलभ्यते यत्पटबुद्धेर्विषयः
 स्यात् याथाक्यानुपलम्भेरसति विषये पटबुद्धिर्भवतीति मि-
 थ्याबुद्धिर्भवति एवं सर्वमेति ॥

सू० व्यावृत्तत्वादहेतुः ॥ २७ ॥

भा० यदि बुद्ध्या विवेचनं भावानाम्, न सर्वभावानां या-
यात्मानुपलब्धिः । अथ सर्वभावानां यायात्मानुपलब्धि-
र्न बुद्ध्या विवेचनं भावानां यायात्मानुपलब्धिरेति व्याह-
न्यते, तदुक्तमवयवावयविप्रसङ्गस्यैवमाप्रलयादिति ॥

सू० तदाश्रयत्वादपृथग्ग्रहणम् ॥ २८ ॥

भा० कार्यद्रव्यं कारणद्रव्याश्रितं तत् कारणेभ्यः पृथङ्
नोपलभ्यते विपर्यये पृथग्ग्रहणात्, यत्राश्रयाश्रितभावो
नास्ति तत्र पृथग्ग्रहणमिति बुद्ध्या विवेचनात् तु भावानां
पृथग्ग्रहणमतीन्द्रियेष्वणुषु यदिन्द्रियेण गृह्यते तदेतया
बुद्ध्या विविच्यमानमन्यदिति ॥

सू० प्रमाणतश्चाऽर्थप्रतिपत्तेः ॥ २९ ॥

भा० बुद्ध्या विवेचनाद्भावानां यायात्मानुपलब्धिः । यदस्ति
यथा च तत् सर्वम्प्रमाणत उपलब्ध्या सिद्ध्यति । या च
प्रमाणत उपलब्धिरुद्बुद्ध्या विवेचनं भावानाम्, तेन सर्व-
शालाणि सर्वकर्माणि सर्वे च शरीरिणां व्यवहाराः
व्याप्ताः । परीक्षमाणो हि बुद्ध्याध्यवस्यति इदमस्तीदं ना-
स्तीति तत्र न सर्वभावानुपपत्तिः ॥

सू० प्रमाणानुपपत्त्युपपत्तिभ्याम् ॥ ३० ॥

भा० एवञ्च सति सर्वज्ञासीति नोपपद्यते, कस्मात् प्रमा-
णाद्युपपत्त्युपपत्तिभ्याम्, अहि सर्वज्ञासीति प्रमाणमुपप-
द्यते सर्वं नासीत्येतद्वाच्यते । अथ प्रमाणं नोपपद्यते सर्वं
नासीत्यस्य कथं सिद्धिः, अथ प्रमाणमन्तरेण सिद्धिः,
सर्वमसीत्यस्य कथं न सिद्धिः ॥

सू० स्वप्नविषयाभिमानवदयं प्रमाणप्रमेयाभिमानः
॥ ३१ ॥

भा० यथा स्वप्ने न विषयाः सन्त्यथ चाभिमानो भवति,
एवं न प्रमाणानि प्रमेयाणि च सन्ति, अथ च प्रमाण-
प्रमेयाभिमानो भवति ॥

सू० मायागन्धर्व्वनगरमृगतृष्णिकावहा ॥ ३२ ॥

सू० हेतुभावादसिद्धिः ॥ ३३ ॥

भा० स्वप्नान्ते विषयाभिमानवत् प्रमाणप्रमेयाभिमानो न
पुनर्जायमानो विषयोपपत्तिवदित्यत्र हेतुर्जायते हेतु-
भावादसिद्धिः । स्वप्नान्ते जायमानो विषयोपपत्तिवदित्यत्र

॥० चापिहेत्वभावः । प्रतिबोधेऽनुपलम्भादिति चेत् प्रतिबोध-
विषयोपलम्भादप्रतिषेधः, यदि प्रतिबोधेऽनुपलम्भात् स्वप्ने
विषया न सन्तीति तर्हि य इमे प्रतिबुद्धेन विषया उपलभ्यन्ते
उपलम्भात्सन्तीति विपर्यये हि हेतुसामर्थ्यम्, उपलम्भाभा-
वे सत्यनुपलम्भादभावः सिद्ध्यति, उभयथा त्वभावे नानुप-
लम्भस्य सामर्थ्यमस्ति, यथा प्रदीपस्याभावादूपस्यादर्शनमि-
ति, तत्र भावेनाभावः समर्थत इति, स्वप्नान्तविकल्पे च हे-
तुवचनम् स्वप्नविषयाभिमानवदिति ब्रुवता स्वप्नान्तवि-
कल्पे हेतुर्वाच्यः, कश्चित् स्वप्नेभयोपसंहितः, कश्चित् प्र-
मोदोपसंहितः, कश्चिदुभयविपरीतः, कदाचित् स्वप्नमेव
न पश्यतीति, निमित्तवतस्तु स्वप्नविषयाभिमानस्य निमि-
त्तविकल्पादिकल्पोपपत्तिः ॥

सू० स्मृतिसङ्कल्पवच्च स्वप्नविषयाभिमानः ॥ ३४ ॥

भा० पूर्वोपलम्भविषयो यथा स्मृतिश्च सङ्कल्पश्च पूर्वोपल-
म्भविषयो न तस्य प्रत्याख्यानाय कल्पते । तथा स्वप्ने विषय-
ग्रहणं पूर्वोपलम्भविषयं न तस्य प्रत्याख्यानाय कल्पते ।
एवं दृष्टविषयश्च स्वप्नान्तो जागरितान्तेन चः सुप्तः स्वप्नं
पश्यति स एव जाग्रत् स्वप्नदर्शनानि प्रतिसन्धत्ते इदम-
द्राक्षमिति । तत्र जाग्रदुद्विष्टवृत्तिवशात् स्वप्नविषयाभि-
मानोमिथ्येतिव्यवसायः, सति च प्रतिसन्धाने या जाग्रतो

भा० बुद्धिदृष्टिस्तद्वशादयं व्यवसायः स्वप्नविषयाभिमानोमि-
थेति । उभयाविशेषेतु साधनानर्थक्यम्, यस्य स्वप्ना-
न्तजागरितान्तयोः विशेषस्तस्य स्वप्नविषयाभिमानवदि-
ति साधनमनर्थकम्, तदाश्रयप्रत्याख्यानात् । अंतस्मिंस्त-
दिति च व्यवसायः प्रधानाश्रयोः, अपुरुषे स्थाणौ पुरुष-
इति व्यवसायः स प्रधानाश्रयो न खलु पुरुषेऽनुपलब्धे
पुरुष इत्यपुरुषे व्यवसायो भवति, एवं स्वप्नविषयस्य व्यव-
सायो हस्तिनमद्राक्षं पर्वतमद्राक्षमिति प्रधानाश्रयो
भवितुमर्हति । एवञ्च सति ॥

सू० मिथ्योपलब्धिविनाशस्तत्त्वज्ञानात् स्वप्नविष-
याभिमानप्रणाशवत् प्रतिबोधे ॥ ३५ ॥

भा० स्थाणौ पुरुषोऽयमिति व्यवसायो मिथ्योपलब्धिरत-
स्मिंस्तदिति ज्ञानम्, स्थाणौ स्थाणुरिति व्यवसायस्तत्त्वज्ञा-
नम्, तत्त्वज्ञानेन च मिथ्योपलब्धिर्निवर्त्यते नार्थः स्थाणु-
पुरुषसामान्यलक्षणः, यथा प्रतिबोधे या ज्ञानदृष्टिस्तथा
स्वप्नविषयाभिमानो निवर्त्यते नार्थो विषयसामान्यलक्षणः,
तथा मायागन्धर्व्वनगरमृगहृष्णिकानामपि या बुद्धयो-
ऽतस्मिंस्तदिति व्यवसायास्तत्राप्यनेनैव कल्पेन मिथ्योप-
लब्धिविनाशस्तत्त्वज्ञानान्नार्थप्रतिषेध इति । उपादान-

भा० वच्च मायादिषु मिथ्याज्ञानम् । प्रज्ञापनीयसरूपञ्च द्र-
व्यमुपादाय साधनवान् परस्मिन् मिथ्याव्यवसायं करोति
सा माया । नीहारप्रभृतीनां नगरस्वरूपसन्निवेशे दू-
राक्षरबुद्धिरुत्पद्यते, विपर्यय तदभावात्, सूर्यमरी-
चिषु भौमेनोद्भवा संसृष्टेषु स्यन्दमानेषूदकबुद्धिर्भवति,
सामान्यग्रहणात् अन्निकस्यस्य, विपर्यये तदभावात्,
क्वचित् कदाचित्कस्यचित्च भावान्नानिमित्तं मिथ्या-
ज्ञानम् । दृष्टञ्च बुद्धिर्देतं मायाप्रयोक्तुः परस्मिन् च दूरा-
न्निकस्ययोगन्मूर्धन्यनगरमृगदृष्टिणाकासु, सुप्तप्रतिबुद्धयोश्च
स्वप्नविषये, तदेतत्सर्वस्याभावे निरूपाख्यतायां निरात्मक-
त्वेनोपपद्यत इति ॥

सू० बुद्धेश्चैवं निमित्तसङ्गावोपलम्भात् ॥ ३६ ॥

भा० मिथ्याबुद्धेश्चार्थवदप्रतिषेधः कस्मात् निमित्तोपल-
म्भात् सङ्गावोपलम्भाच्च, उपलभ्यते मिथ्याबुद्धिनिमित्तम्,
मिथ्याबुद्धिश्च प्रत्यात्ममुत्पन्ना गृह्यते संवेद्यत्वात्, तस्मात्
मिथ्याबुद्धिरप्यस्तीति ॥

सू० तत्त्वप्रधानभेदाच्च मिथ्याबुद्धेर्द्विविधोपपत्तिः ॥

॥ ३७ ॥

भा० तत्त्वं स्थाणुरिति प्रधानं पुरुष इति । तत्त्वप्रधानयो-

भा० रलोपाद्भेदात् स्थाणौ पुरुष इति मिथ्याबुद्धिरुत्पद्यते
 सामान्यग्रहणात्, एवं पताकायां वलाकेति, लोष्ठे कपोत-
 इति, न तु समाने विषये मिथ्याबुद्धीनां समावेशः, सामा-
 न्यग्रहणाव्यवस्थानात् । यस्य तु निरात्मकं निरुपाख्यं सर्व्वं
 तस्य समावेशः प्रसज्यते, गन्धादौ च प्रमेये गन्धादि-
 बुद्ध्यो मिथ्याभिमतस्तत्त्वप्रधानयोः सामान्यग्रहणस्य
 चाभावात् तत्त्वबुद्ध्य एव भवन्ति । तस्मादयुक्तमेतत्
 प्रमाणप्रमेयबुद्ध्यो मिथ्येति, दोषनिमित्तानां तत्त्वज्ञा-
 नादहङ्कारनिवृत्तिरित्युक्तम् अथ कथं तत्त्वज्ञानमुत्प-
 द्यत इति ॥

सू० समाधिविशेषाभ्यासात् ॥ ३८ ॥

भा० स तु प्रत्याहृतस्तेन्द्रियेभ्यो मनसो धारकेण प्रयत्नेन
 धार्यमाणस्यात्मना संयोगस्तत्त्वबुभुत्साविशिष्टः, सति हि
 तस्मिन्निन्द्रियार्थेषु बुद्ध्यो नोत्पद्यन्ते, तदभ्यासवशात् तत्त्वबु-
 द्धिरुत्पद्यते, यदुक्तं सति हि तस्मिन्निन्द्रियार्थेषु बुद्ध्यो
 नोत्पद्यन्त इत्येतत् ॥

सू० नार्थविशेषप्रावल्यात् ॥ ३९ ॥

भा० अनिच्छतोऽपि बुद्ध्युत्पत्तेर्नैतद्युक्तम्, कस्मात् अर्थविशे-

भा० वप्रावल्यात् अबुभुत्समानस्यापि बुद्धुत्पत्तिर्दृष्टा । यथा
स्नयित्तुशब्दप्रभृतिषु । तत्र समाधिविशेषो नोपपद्यते ॥

सू० * सुदादिभिः प्रवर्त्तनाच्च ॥ ४० ॥

भा० क्षुत्पिपासाभ्यां शीतोष्णाभ्यां व्याधिभिश्चानिच्छतो-
ऽपि बुद्धयः प्रवर्त्तन्ते । तस्मादैकाग्रानुपपत्तिरिति । अ-
स्वेतत् समाधिव्युत्थाननिमित्तं समाधिप्रत्यनीकञ्च सति
त्वेतस्मिन् ॥

सू० पूर्वकृतफलानुबन्धात् तदुत्पत्तिः ॥ ४१ ॥

भा० पूर्वकृतो जन्मान्तरोपचितस्तत्त्वज्ञानहेतुधर्मप्रविवे-
कः फलानुबन्धो योगाभ्याससामर्थ्यम्, निष्फले हि
अभ्यासेनाभ्यास आद्रियेरन् । दृष्टं हि लौकिकेषु कर्म-
स्वभाससामर्थ्यम् प्रत्यनीकपरिहारार्थञ्च ॥

सू० अरण्यगुहापुलिनादिषु योगाभ्यासोपदेशः ॥
॥ ४२ ॥

भा० योगाभ्यासजनितो धर्मो जन्मान्तरेऽप्यनुवर्त्तते प्रचय-
काष्ठागते तत्त्वज्ञानहेतौ धर्मे प्रकृष्टायां समाधिभावनायां

भा० तत्त्वज्ञानमुत्पद्यत इति, दृष्टस्य समाधिर्नार्थविशेषप्राव-
 ल्याभिभवः । नाहमेतदश्रीषं नाहमेतदज्ञासिषमन्यत्र
 मे मनोऽभूदित्याह लौकिक इति । यद्यर्थविशेषप्राव-
 ल्यादनिच्छतोऽपि बुद्ध्युत्पत्तिरनुज्ञायते ॥

सू० अपवर्गेऽप्येवं प्रसङ्गः ॥ ४३ ॥

भा० मुक्तस्यापि वाङ्मार्थसामर्थ्याद्बुद्ध्य उत्पत्तेरिति ॥

सू० न निष्पन्नावश्यभावित्वात् ॥ ४४ ॥

भा० कर्मावशान्निष्यन्न शरीरे चेष्टेन्द्रियार्थाश्रये निमित्त-
 भावादवश्यंभावी बुद्धीनामुत्पादः न च प्रवलोऽपि सन्
 वाङ्मोऽर्थ आत्मनो बुद्ध्युत्पादे समर्थो भवति । तस्मिन्द्विषेण
 संयोगाद्बुद्ध्युत्पादे सामर्थ्यं दृष्टमिति ॥

सू० तदभावश्चापवर्गे ॥ ४५ ॥

भा० तस्य बुद्धिनिमित्ताश्रयस्य शरीरेन्द्रियस्य धर्माधर्मा-
 भावादभावोऽपवर्गे तत्र यदुक्तमपवर्गेऽप्येवं प्रसङ्ग इति तद-
 युक्तम् । तस्मात् सर्वदुःखविमोक्षोऽपवर्गः यस्मात् सर्वदुः-
 खवोजं सर्वदुःखाद्यतनं चापवर्गे विच्छिद्यते, तस्मात् सर्व-

भा० ण दुःखेन विमुक्तिरपवर्गो न निर्वीजं निरायतनञ्च दुःख-
मुत्पद्यत इति ॥

सू० तदर्थं यमनियमाभ्यामात्मसंस्कारो योगाच्चा-
ध्यात्मविध्युपायैः ॥ ४६ ॥

भा० तस्यापवर्गस्याधिगमाय यमनियमाभ्यामात्मसंस्का-
रः । यमः समानमाश्रमिणां धर्मासाधनम्, नियमस्तु
विशिष्टम्, आत्मसंस्कारः पुनरधर्माहानं धर्मापचयश्च,
योगशास्त्राच्चाध्यात्मविधिः प्रतिपत्तव्यः । स पुनस्तपःप्रा-
णायामः प्रत्याहारो ध्यानं धारणेति इन्द्रियविषयेषु प्रस-
ङ्गानाभ्यासो रागद्वेषप्रहाणार्थः । उपायस्तु योगाचार-
विधानमिति ॥

सू० ज्ञानग्रहणाभ्यासस्तद्विद्यैश्च सह संवादः ॥ ४७ ॥

भा० तदर्थमिति प्रकृतम्, ज्ञायतेऽनेनेति ज्ञानमात्मविद्या-
शास्त्रन्तस्य ग्रहणमध्ययनधारणे अभ्यासः सततक्रियुः अध्ययन-
श्रवणचिन्तनानि तद्विद्यैश्च सह सम्वाद इति प्रज्ञापरि-
पाकार्थम्, परिपाकस्तु संशयच्छेदनमविज्ञातार्थावबोधोऽ-
ध्यवसिताभ्युज्जानमिति । समाय वादः सम्वादः । तद्विद्यैश्च
सह सम्वाद इत्यविभक्तार्थं वचनं विभज्यते ॥

सू० तं शिष्यगुरुसब्रह्मचारिविशिष्टश्रेयार्थिभिरन-
सूयिभिरभ्युपेयात् ॥ ४८ ॥

भा० एतन्निगदेनैव नीतार्थमिति यदिदं मन्येत पक्षप्रतिप-
क्षपरिग्रहः प्रतिकूलः परस्वेति ॥

सू० प्रतिपक्षहीनमपि वा प्रयोजनार्थमर्थित्वे ॥ ४९ ॥

भा० तमुपेयादिति वर्तते परतः प्रज्ञामुपादित्समानस्तत्त्व-
बुभुक्षाप्रकाशनेन स्वपक्षमनवस्थापयन् स्वदर्शनम् परि-
शोधयेदिति । अन्योऽन्यप्रत्यनोकानि च प्रावादुकानां द-
र्शनानि स्वपक्षरागेण चैके न्यायमतिवर्तन्ते तत्र ॥

सू० तत्वाध्यवसायसंरक्षणार्थं जल्पवितण्डे बीज-
प्ररोहसंरक्षणार्थं कण्टकशाखावरणवत् ॥
॥ ५० ॥

भा० अनुत्पन्नतत्त्वज्ञानानामप्रहीणदोषाणां तदर्थं घट-
मानानामेतदिति । विद्यानिर्वेदादिभिश्च परेणाविज्ञाय-
मानस्य, ताभ्यां विगृह्य कथनम् । विगृह्येति विजिगीष-

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय । नमो विष्णवे नमो
श्री कृष्णाय नमः ॥

इति वाक्यमयी न्यायभाष्ये चतुर्थोऽध्यायस्य द्वितीयमा-
ह्निकम् ॥ ० ॥

समाप्तश्चायं चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

भा० साधनवैधर्म्याभां प्रत्यवस्थानस्य विकल्पाज्जातिवज्ज-
त्वमिति संक्षेपेणोक्तं तद्विस्तरेण विभज्यते, ताः खल्विमाः
जातयः स्थापनादेता प्रयुक्ते चतुर्विंशतिः प्रतिषेधहेतवः ॥

हृ० साधर्म्यवैधर्म्यात्कर्षापकर्षवर्त्यावर्त्यविकल्प-
ताव्यभ्रात्यभ्राप्तिप्रसङ्गभातादृष्टान्तानुत्पत्तिसंशय
प्रकारहेत्वर्थमपत्यविशेषे। पपत्युपलब्ध्यनुपल-
ब्धिनित्यानित्यकार्यसमाः ॥ १ ॥

भा. वाचस्पत्यैः प्रत्यवस्थानमविशिष्टमाह व्यापनाहृतः
वाचस्पत्यैः अविज्ञेयं तथ तथोदाहरित्यामः । यत्र वि-
मर्शनेन तथोदाहि निर्दिष्टाः । तद्वत्तथा ॥

४. साधनार्थे धन्याभ्यामुपसंहारे तत्रार्थविधौ-
 भाष्ये साधनार्थे धन्यासौ । २ ।



साधर्म्येणैव प्रत्यवस्थानमिति चेन्न साधर्म्यसमः प्रतिषेधः । निदर्शनम्, क्रियावागात्मा द्रव्यस्य क्रियाहेतुगुणयोगात्, द्रव्यं लोष्टः क्रियाहेतुगुणयुक्तः क्रियावान् तथा चात्मा तस्मात् क्रियावानिति, एवमुपसंहरे परः साधर्म्येणैव प्रत्यवतिष्ठते निष्क्रिय आत्मा विभुनो द्रव्यस्य निष्क्रियत्वात् विभु चाकाशं निष्क्रियञ्च तथा चात्मा तस्मान्निष्क्रिय इति, न चास्ति विशेषहेतुः । क्रियावत्साधर्म्यात् क्रियावता भवितव्यम् न पुनरक्रियसाधर्म्यानिष्क्रियेणेति विशेषहेतुभावात् साधर्म्यसमः प्रतिषेधो भवति, अथ वैधर्म्यसमः । क्रियाहेतुगुणयुक्तो लोष्टः परिच्छिन्नो दृष्टो न च तथात्मा तस्मान्न लोष्टवत् क्रियावानिति । न चास्ति विशेषहेतुः । क्रियावत्साधर्म्यात् क्रियावता भवितव्यम् न पुनः क्रियावद्वैधर्म्यादक्रियेणेति । विशेषहेतुभावाद्वैधर्म्यसमः । वैधर्म्येण उपसंहारे निष्क्रियः आत्मा विभुत्वात् क्रियावद्द्रव्यमविभु दृष्टम्, यथा लोष्टः न च तथात्मा तस्मान्निष्क्रिय इति वैधर्म्येण प्रत्यवस्थानम् निष्क्रियं द्रव्यमाकाशं क्रियाहेतुगुणरहितं दृष्टम् न तथात्मा तस्मान्न निष्क्रिय इति न चास्ति विशेषहेतुः, क्रियावद्वैधर्म्यानिष्क्रियेण भवितव्यं न पुनरक्रियवैधर्म्यात् क्रियावतेति । विशेषहेतुभावाद्वैधर्म्यसमः, क्रियावान् लोष्टः क्रियाहेतुगुणयुक्तो दृष्टस्तथा चात्मा तस्मात् क्रि-



सू० गोत्वाप्तासिद्धिवत्तत्सिद्धिः ॥ ३ ॥

भा० साधर्म्यमात्रेण वैधर्म्यमात्रेण च साध्यसाधने प्रतिज्ञा-
यमाने स्यादव्यवस्था, सा तु धर्माविशेषे नोपपद्यते गोसाध-
र्म्यात् गोत्वाप्तातिविशेषाद्गोः सिद्धति न तु साक्षा-
दिसम्बन्धात्, अस्यादिवैधर्म्याद्गोत्वादेव न गोः सिद्धति
न गुणादिभेदात् तच्चैतत्कृतव्यवस्थानमवयवप्रकरणे प्रमा-
णानामभिसम्बन्धाच्चैकार्यकारित्वं समानं वाक्य इति हेत्वा-
भासाश्रया खल्वियमव्यवस्थेति ॥

सू० साध्यदृष्टान्तयोर्धर्मविकल्पादुभयसाध्यत्वाच्चो-
त्कर्षापकर्षवर्ण्यावर्ण्यविकल्पसाध्यसमाः ॥ ४ ॥

भा० दृष्टान्तधर्मं साध्येन समासञ्जमुत्कर्षसमः । यदि क्रि-
याहेतुगुणयोगाच्चोद्यवत् क्रियावानेवात्मा लोद्यवदेव स्पर्श-
वाक्पि प्राप्नोति, अथ न स्पर्शवान् लोद्यवत् क्रिया-

भा० वानपि न प्राप्नोति विपर्यये वा विशेषो वक्तव्य इति
 साध्ये धर्माभावं दृष्टान्तात् प्रसजतोऽपकर्षसमः, लोष्टः खलु
 क्रियावानविभुर्दृष्टः काममात्मापि क्रियावानविभुरस्तु
 विपर्यये वा विशेषो वक्तव्य इति । ख्यापनीयो वर्णो
 विपर्ययादवर्णः । तावेतौ साध्यदृष्टान्तधर्मा विपर्ययस्य
 तौ वर्णावर्णसमौ भवतः, साधनधर्मयुक्ते दृष्टान्ते
 धर्मान्तरविकल्पात् साध्यधर्मविकल्पं प्रसजतो विकल्प-
 समः । क्रियाहेतुगुणयुक्तं किञ्चिद्भूय यथा लोष्टः
 किञ्चिन्नघ्नं यथा वायुः, एवं क्रियाहेतुगुणयुक्तं कि-
 ञ्चित् क्रियावत् स्यात् यथा लोष्टः किञ्चिदक्रियम् यथा-
 त्मा विशेषो वा वाच्य इति हेत्वाद्यवयवसामर्थ्ययोगी धर्मः
 साध्यः । तं दृष्टान्ते प्रसजतः साध्यसमः । यदि यथा
 लोष्टस्तथात्मा प्राप्तस्त्विह यथात्मा तथा लोष्ट इति सा-
 ध्यस्यायमात्मा क्रियावानिति कामं लोष्टोऽपि साध्यः । अथ
 नैवं न तर्हि यथा लोष्टस्तथात्मा एतेषामुत्तरम् ॥

सू० किञ्चित्साधर्म्यादुपसंहारसिद्धेर्वैधर्म्यादप्रति-
 षेधः ॥ ५ ॥

भा० अलभ्यः सिद्धस्य निऋतः सिद्धश्च किञ्चित्साध-
 र्म्यादुपमानं यथा गोस्तथा गवय इति । तच्च न लभ्यो गो-
 गवययोर्धर्मविकल्पस्योदयितुम् । एवं साधके धर्मे दृष्टा-

भा० न्तादिसामर्थ्ययुक्ते न लभ्यः साध्यदृष्टान्तयोर्धर्मविकल्पा-
द्वैधर्म्यात् प्रतिषेधो वक्तुमिति ॥

सू० साध्यातिदेशाच्च दृष्टान्तोपपत्तेः ॥ ६ ॥

भा० यत्र लौकिकपरीक्षकाणां बुद्धिसाम्यं तेनाविपरीतो-
ऽर्थोऽतिदिश्यते प्रज्ञापनार्थमेवं साध्यातिदेशादृष्टान्त उप-
पद्यमाने साध्यत्वमनुपपन्नमिति ॥

सू० प्राप्य साध्यमप्राप्य वा हेतोः प्राप्या अविशिष्ट-
त्वादप्राप्या असाधकत्वाच्च प्राप्यप्राप्तिसमौ ॥
॥ ७ ॥

भा० हेतुः प्राप्य वा साध्यं साधयेदप्राप्य वा, न तावत्प्राप्य,
प्राप्यामविशिष्टत्वादसाधकः । द्वयोर्विद्यमानयोः प्राप्तौ
सत्यां किं कस्य साधकं साध्यं वा । अप्राप्य साधकं न भवति
नाप्राप्तः प्रदीपः प्रकाशयतीति प्राप्या प्रत्यवस्थानं
प्राप्तिसमः । अप्राप्या प्रत्यवस्थानमप्राप्तिसमः । अनयो-
रुत्तरम् ॥

सू० घटादिनिष्पत्तिदर्शनात् पीडने चाभिचाराद-
प्रतिषेधः ॥ ८ ॥

भा० । उभयथा । खल्वयुक्तः प्रतिषेधः, कर्तृकरणाधिकर-
णानि प्राप्य मृदं घटादिकार्यं निष्पादयन्ति अभिचा-
राच्चपीडने सति दृष्टमप्राप्य साधकत्वमिति ॥

सू० । दृष्टान्तस्य करणानपदेशात् प्रत्यवस्थानाच्च प्र-
तिदृष्टान्तेन प्रसङ्गप्रतिदृष्टान्तसमौ ॥ ६ ॥

भा० । साधनस्यापि साधनं वक्तव्यमिति प्रसङ्गे प्रत्यवस्थानं
प्रसङ्गसमः प्रतिषेधः, क्रियाहेतुगुणयोगी क्रियावान् लोष्ट
इति हेतुर्नापदिश्यते न च हेतुमन्तरेण सिद्धिरस्तीति
प्रतिदृष्टान्तेन प्रत्यवस्थानं प्रतिदृष्टान्तसमः । क्रियावा-
नात्मा क्रियाहेतुगुणयोगात् लोष्टवदित्युक्ते प्रतिदृष्टान्त
उपादीयते क्रियाहेतुगुणयुक्तमाकाशं निष्क्रियमिति
कः पुनराकाशस्य क्रियाहेतुगुणो वायुना संयोगः संस्का-
रापेक्षः वायुवनस्पतिसंयोगवदिति, अग्नयोत्तरम् ॥

सू० । प्रदीपादानप्रसङ्गनिवृत्तिवत्तद्विनिवृत्तिः ॥ १० ॥

भा० । इदं तावदयं पृष्टो वक्तुमर्हति अथ के प्रदीपमुपा-

भा० ददते किमर्थं वेति दिदृक्षमाणदृश्यदर्शनार्थमिति । अथ प्रदीपं दिदृक्षमाणाः प्रदीपान्तरं कस्मान्नोपाददते, अन्तरेणापि प्रदीपान्तरं दृश्यते प्रदीपः, तत्र प्रदीपदर्शनार्थं प्रदीपोपादानं निरर्थकम् अथ दृष्टान्तः किमर्थमुच्यत इति । अप्रज्ञातस्य ज्ञापनार्थमिति, अथ दृष्टान्ते कारणपदेशः, किमर्थं दृश्यते यदि प्रज्ञापनार्थम् प्रज्ञातो-दृष्टान्तः, स खलु लौकिकपरीक्षकाणां यस्मिन्नर्थे बुद्धिसाम्यं स दृष्टान्त इति तत्प्रज्ञानार्थः कारणपदेशो निरर्थक इति प्रसङ्गसमस्योत्तरम् । अथ प्रतिदृष्टान्तसमस्योत्तरम् ॥

सू० प्रतिदृष्टान्तहेतुत्वे च नाहेतुर्दृष्टान्तः ॥ ११ ॥

भा० प्रतिदृष्टान्तं ब्रुवता न विशेषहेतुरपदिश्यते अनेन प्रकारेण प्रतिदृष्टान्तः साधकः न दृष्टान्त इति एवं प्रतिदृष्टान्तहेतुत्वेनाहेतुर्दृष्टान्त इत्युपपद्यते स च कथमहेतुर्न-स्याद्यद्यप्रतिषिद्धः साधकः स्यादिति ॥

सू० प्रागुत्पत्तेः कारणाभावादनुत्पत्तिसमः ॥ १२ ॥

भा० अनित्यः शब्दः प्रथमानन्तरीयकत्वात् घटवदि-

भा० त्वुक्ते अपर आह प्रागुत्पत्तेरनुत्पत्ते शब्दे प्रयत्नानन्तरीय-
कत्वमनित्यत्वकारणं नास्ति तदभावान्नित्यत्वं प्राप्तं नित्य-
स्य चोत्पत्तिर्नास्ति अनुत्पत्त्या प्रत्यवस्थानमनुत्पत्तिममः
अस्योत्तरम् ॥

सू० तथाभावादुत्पन्नस्य कारणोपपत्तेर्न कारणप्रति-
षेधः ॥ १३ ॥

भा० तथाभावादुत्पन्नस्येति उत्पन्नः खल्वयं शब्द इति
भवति प्रागुत्पत्तेः शब्द एव नास्ति उत्पन्नस्य शब्दभा-
वात् शब्दस्य मतः प्रयत्नानन्तरीयकत्वमनित्यकारणमु-
पपद्यते कारणोपपत्तेरयुक्तोऽयं दोषः प्रागुत्पत्तेः कार-
णाभावादिति ॥

सू० सामान्यदृष्टान्तयोरैन्द्रियकत्वे समाने नित्या-
नित्यसाधर्म्यात् संशयसमः ॥ १४ ॥

भा० अनित्यः शब्दः प्रयत्नानन्तरीयकत्वात् घटवदित्यु-
क्ते हेतौ संशयेन प्रत्यवतिष्ठते सति प्रयत्नानन्तरीयकत्वे

भा० अख्येवाख्य नित्येन सामान्येन साधर्म्यमैन्द्रियकत्वमस्ति च घटेनानित्येन । अतो नित्यानित्यसाधर्म्यादनित्यतः संशय- इति । अस्योत्तरम् ॥

सू० साधर्म्यात्संशये न संशयोवैधर्म्यादुभयथा वा संशयो ऽत्यन्तसंशयप्रसङ्गे *नित्यत्वान्नाभ्युपग- माच्च सामान्यस्याप्रतिषेधः ॥ १५ ॥

भा० विशेषाद्वैधर्म्यादवधार्यमाणेऽर्थे पुरुष इति न स्था- णुपुरुषसाधर्म्यात् संशयोऽवकाशं लभते । एवं वैधर्म्या- द्विशेषात्प्रयत्नानन्तरीयकत्वादवधार्यमाणे शब्दस्थानित्यत्वे नित्यानित्यसाधर्म्यात् संशयोऽवकाशं न लभते, यदि वै लभेत ततः स्थाणुपुरुषसाधर्म्यानुच्चेदादत्यन्तं संशयः स्थात् गृह्यमाणे च विशेषे नित्यसाधर्म्यं संशयहेतुरिति नाभ्युपगम्यते न हि गृह्यमाणे पुरुषस्य विशेषे स्थाणुपुरुष- साधर्म्यं संशयहेतुर्भवति ॥

सू० उभयसाधर्म्यात् प्रक्रियासिद्धेः प्रकरणसमः ॥
॥ १६ ॥

भा० उभयेन नित्येन चानित्येन साधर्म्यात् पक्षप्रतिपक्षयोः प्रवृत्तिः प्रक्रिया, अनित्यः शब्दः प्रयत्नानन्तरीयकत्वाद्- टवदित्येकः पक्षं प्रवर्त्तयति । द्वितीयस्य नित्यसाधर्म्यात्

* नित्यत्वानभ्युपगमादिति कचिन् पाठः ।

भा० एवञ्च सति प्रयत्नानन्तरीयकत्वादिति हेतुरनित्यसाधर्म्य-
 णोच्यमानेन हेतौ तदिदं प्रकरणानतिवृत्त्या प्रत्यव-
 स्थानं प्रकरणसमः, समानश्चेतद्वैधर्म्येऽपि उभयवैधर्म्यात्
 प्रक्रियासिद्धेः प्रकरणसम इति । अस्योत्तरम् ॥

सू० प्रतिपक्षात् प्रकरणसिद्धेः प्रतिषेधानुपपत्तिः प्र-
 तिपक्षोपपत्तेः ॥ १७ ॥

भा० उभयसाधर्म्यात् प्रक्रियासिद्धिं ब्रुवता प्रतिपक्षात्
 प्रक्रियासिद्धिरुक्ता भवति यद्युभयसाधर्म्यं तत्रैकतरः प्रति-
 पक्ष इत्येवं सत्युपपन्नः प्रतिपक्षो भवति प्रतिपक्षोपपत्तेरनु-
 पपन्नः प्रतिषेधो यतः प्रतिपक्षोपपत्तिः प्रतिषेधोपपत्ति-
 रिति विप्रतिषिद्धमिति तत्त्वानवधारणाच्च प्रक्रियासिद्धि-
 र्विपर्यये प्रकरणावसानात् तत्त्वावधारणे ह्यवसितं प्रक-
 रणं भवतीति ॥

सू० चैकाल्यासिद्धेर्हेतोरहेतुसमः ॥ १८ ॥

भा० हेतुः साधनं तत्साध्यात् पूर्वम् पश्चात् सह वा भवेत्
 यदि पूर्वं साधनमसति साध्ये कस्य साधनम् । अथ पश्चात्
 असति साधने कस्येदं साध्यम् । अथ युगपत्साध्यसाधने द्वयो-
 र्विद्यमानयोः किं कस्य साधनं किं कस्य साध्यमिति हे-

भा० तुना न विशिष्यते अहेतुना साधर्म्यात् प्रत्यवस्थानम-
हेतुसमः । अस्योत्तरम् ॥

सू० न हेतुतः साध्यसिद्धेस्त्रैकाल्यासिद्धिः ॥ १९ ॥

भा० न त्रैकाल्यासिद्धिः कस्मात् हेतुतः साध्यसिद्धेः ।
निर्वर्त्तनीयस्य निर्वृत्तिः विज्ञेयस्य विज्ञानम् उभयं कार-
णतोद्गृह्यते सोऽयं महान् प्रत्यक्षविषय उदाहरणमिति ।
यत्तु खलूक्तमसति साध्ये कस्य साधनमिति यत्तु निर्वर्त्तते
यच्च विज्ञायते तस्येति ॥

सू० प्रतिषेधानुपपत्तेः* प्रतिषेहव्याप्रतिषेधः ॥ २० ॥

भा० पूर्वं पञ्चाद्युपपत्त्या प्रतिषेध इति नोपपद्यते प्रतिषे-
धानुपपत्तेः स्थापनाहेतुः सिद्ध इति ॥

सू० अर्थापत्तितः प्रतिपक्षसिद्धेरर्थापत्तिसमः ॥ २१ ॥

भा० अनित्यः शब्दः प्रयत्नानन्तरीयकत्वाद्दृष्टवदिति स्था-
पिते पक्षे अर्थापत्त्या प्रतिपक्षं साधयतोऽर्थापत्तिसमः,
यदि प्रयत्नानन्तरीयकत्वादनित्यसाधर्म्यादनित्यः शब्दः

* पक्षेति क्वचित् पाठः ।

भा० इत्यर्थादापद्यते नित्यसाधर्म्यान्नित्य इति अस्ति तस्य
नित्येन साधर्म्यमस्य शत्वमिति । अस्योत्तरम् ॥

सू० अनुक्तस्यार्थापत्तेः पक्षहानेरुपपत्तिरनुक्तत्वा-
दनैकान्तिकत्वाच्चार्यापत्तेः ॥ २२ ॥

भा० अनुपपाद्य सामर्थ्यमनुक्तमर्थादापद्यत इति ब्रुवतः
पक्षहानेरुपपत्तिरनुक्तत्वात् अनित्यपक्षमिद्धावर्थादापन्नम-
नित्यपक्षस्य हानिरिति, अनैकान्तिकत्वाच्चार्यापत्तेः उ-
भयपक्षमपि चेयमर्थापत्तिः, यदि नित्यसाधर्म्यादस्य-
शत्वादाकाशवच्च नित्यः शब्दः अर्थादापन्नमनित्यसाध-
र्म्यात् प्रयत्नानन्तरीयत्वादनित्य इति, न चेयं विपर्यय-
मात्रादेकान्तेनार्थापत्तिः, न खलु वै घनस्य घाटः पतन-
मित्यर्थादापद्यते द्रवाणामपां पतनाभाव इति ॥

सू० एकधर्मीपपत्तेरविशेषे सर्वविशेषप्रसङ्गात् स-
द्भावोपपत्तेरविशेषसमः ॥ २३ ॥

भा० एको धर्मः प्रयत्नानन्तरीयकत्वं शब्दघटयोरुपपद्यत-
इत्यविशेषे उभयोरनित्यत्वे सर्वस्याविशेषः प्रसज्यते
कथम् सद्भावोपपत्तेः एको धर्मः सद्भावः सर्वस्योपपद्यते

भा० सङ्गावोपपत्तेः सर्वाविशेषप्रसङ्गात् प्रत्यवस्थानमविशेषसमः ।
अस्योत्तरम् ॥

सू० क्वचिद्धर्मानुपपत्तेः क्वचिच्चोपपत्तेः प्रतिषेधा-
भावः ॥ २४ ॥

भा० यथा साध्यदृष्टान्तयोरेकधर्मास्य प्रयत्नानन्तरी-
यकत्वस्योपपत्तेरनित्यत्वधर्मान्तरमविशेषेण, एवं सर्वभा-
वानां सङ्गावोपपत्तिनिमित्तं धर्मान्तरमस्ति येनाविशेषः
स्यात् अथ मतमनित्यत्वमेव धर्मान्तरं सङ्गावोपपत्तिनि-
मित्तं भावानां सर्वत्र स्यादित्येवं खलु वै कल्प्यमाने अनि-
त्याः सर्वे भावाः सङ्गावोपपत्तेरिति पक्षः प्राप्नोति तत्र प्रति-
ज्ञार्थव्यतिरिक्तमन्यदुदाहरणं नास्ति अनुदाहरणस्य हेतु-
नांस्तीति प्रतिज्ञैकदेशस्य च उदाहरणत्वमनुपपन्नं न हि
साध्यमुदाहरणं भवति ततश्च नित्यानित्यभावादनित्य-
त्वानुपपत्तिः तस्मात् सङ्गावोपपत्तेः सर्वाविशेषप्रसङ्ग इति
निरभिधेयमेतदाक्यमिति सर्वभावानां सङ्गावोपपत्तेर-
नित्यत्वमिति ब्रुवताऽनुज्ञातं शब्दस्यानित्यत्वं तत्रानुपपन्नः
प्रतिषेध इति ॥

सू० उभयकारणोपपत्तेरुपपत्तिसमः ॥ २५ ॥

भा० यद्यनित्यत्वकारणमुपपद्यते शब्दस्येत्यनित्यः शब्दे-

भा० नित्यत्वकारणमप्युपपद्यते ऽस्यास्यर्शत्वमिति नित्यत्वमप्युप-
पद्यते उभयस्थानित्यत्वस्य नित्यत्वस्य च कारणोपपत्त्या
प्रत्यवस्थानमुपपत्तिसमः । अस्योत्तरम् ॥

सू० उपपत्तिकारणाभ्यनुज्ञानादप्रतिषेधः ॥ २६ ॥

भा० उभयकारणोपपत्तेरिति ब्रुवता नानित्यत्वकारणोप-
पत्तेरनित्यत्वं प्रतिषिध्यते यदि प्रतिषिध्यते नोभय-
कारणोपपत्तिः स्यात् उभयकारणोपपत्तिवचनादनित्य-
त्वकारणोपपत्तिरभ्यनुज्ञायते अभ्यनुज्ञानादनुपपन्नः प्रति-
षेधः, व्याघातात् प्रतिषेध इति चेत् समानोव्याघातः
एकस्य नित्यत्वानित्यत्वप्रसङ्गं व्याहतम् ब्रुवतोक्तः प्रतिषेध
इति चेत् स्वपक्षपरपक्षयोः समानो व्याघातः स च नैक-
तरस्य साधक इति ॥

सू० निर्दिष्टकारणाभावेऽप्युपलम्भादुपलब्धिसमः ॥
॥ २७ ॥

भा० निर्दिष्टप्रत्यक्षानन्तरीयकत्वस्थानित्यत्वकारणस्याभावेऽ-
पि वायुनोदनाद्वज्रशस्त्राभङ्गजस्य शब्दस्थानित्यत्वमुप-
लभ्यते निर्दिष्टस्य साधनस्याभावेऽपि साध्यधर्मीपलब्ध्या-
प्रत्यवस्थानमुपलब्धिसमः । अस्योत्तरम् ॥

सू० कारणान्तरादपि तद्वर्त्मानुपपत्तेरप्रतिषेधः ॥ २८ ॥

भा० . प्रयत्नानन्तरीयकत्वादिति ब्रुवता कारणत उत्पत्ति-
रभिधीयते न कार्यस्य कारणनियमः यदि च कार-
णान्तरादप्युपपद्यमानस्य शब्दस्य तदनित्यत्वमुपपद्यते कि-
मत्र प्रतिषिध्यत इति न प्रागुच्चारणादविद्यमानस्य शब्द-
स्यानुपलब्धिः कस्मात् आवरणाद्यनुपलब्धेः, यथा विद्य-
मानस्योदकादेरर्थस्यावरणादेरनुपलब्धिः नैवं शब्दस्या-
ग्रहणकारणेनावरणादिनानुपलब्धिः गृह्येत चैतदस्याग्र-
हणकारणमुदकादिवन्न गृह्यते, तस्मादुदकादिविपरीतः
शब्दोऽनुपलभ्यमान इति ॥

सू० तदनुपलब्धेरनुपलम्भादभावसिद्धौ तद्विपरीतो-
पपत्तेरनुपलब्धिसमः ॥ २९ ॥

भा० . तेषामावरणादीनामनुपलब्धिर्नोपलभ्यते अनुपलम्भा-
न्नास्तीत्यभावोऽस्याः सिद्ध्यति, अभावसिद्धौ हेत्वभावात्त-
द्विपरीतमस्त्वमावरणादीनामवधार्यते तद्विपरीतो-
पपत्तेर्यत् प्रतिज्ञातं न प्रागुच्चारणादविद्यमानस्य शब्द-
स्यानुपलब्धिरित्येतन्न सिद्ध्यति सोऽयं हेतुरावरणाद्यनुप-
लब्धेरित्यावरणादिषु चावरणाद्यनुपलब्धौ च समया-

भा० नुपलब्ध्या प्रत्यवस्थितो ऽनुपलब्धिसमो भवति । अस्यो-
त्तरम् ॥

सू० अनुपलम्भात्मकत्वादनुपलब्धेरहेतुः ॥ ३० ॥

भा० आवरणाद्यनुपलब्धिर्नास्त्यनुपलम्भादित्यहेतुः कस्मात्
अनुपलम्भात्मकत्वादनुपलब्धेः, उपलम्भाभावमात्रत्वादनु-
पलब्धेः, यदस्ति तदुपलब्धेर्विषयः उपलब्ध्या तदस्तीति
प्रतिज्ञायते, यन्नास्ति तदनुपलब्धेर्विषयः अनुपलम्भमानं
नास्तीति प्रतिज्ञायते । सोऽयमावरणाद्यनुपलब्धेरनुप-
लम्भाभावो ऽनुपलब्धौ स्वविषये प्रवर्त्तमानो न स्वविषयं
प्रतिषेधति । अप्रतिषिद्धा चावरणाद्यनुपलब्धिर्हेतुत्वाय
कल्प्यते, आवरणादीनि तु विद्यमानत्वादुपलब्धेर्विषया-
स्तृषामुपलब्ध्या भवितव्यम्, यत्तानि नोपलम्भन्ते तदुप-
लब्धेः स्वविषयप्रतिपादिकाया अभावादनुपलम्भादनुप-
लब्धेर्विषयो गम्यते न सन्त्यावरणादीनि शब्दस्याग्रहण-
कारणानीति अनुपलम्भादनुपलब्धिः सिद्ध्यति, विषयः
स तस्येति ॥

सू० ज्ञानविकल्पानाञ्च भावाभावसंवेदनादध्या-
त्मम् ॥ ३१ ॥

भा० अहेतुरिति वर्त्तते । शारीरे शरीरिणां ज्ञानविकल्पानां भावाभावौ संवेदनीयौ, अस्ति मे संशयज्ञानं नास्ति मे संशयज्ञानमिति, एवंप्रत्यक्षानुमानागमस्मृतिज्ञानेषु सेय-मावरणाद्यनुपलब्धिरूपलब्ध्यभावः स्वसम्बन्धो नास्ति मे श-ब्दस्यावरणाद्यनुपलब्धिरिति नोपलभ्यन्ते शब्दस्याग्रहण-कारणान्यावरणादीनीति, तत्र यदुक्तं तदनुपलब्धेरनुप-लम्भादभावसिद्धिरिति एतन्नोपपद्यते ॥

सू० साधर्म्यात्तुल्यधर्मीपपत्तेः सर्वानित्यत्वप्रसङ्गा-दनित्यसमः ॥ ३२ ॥

भा० अनित्येन घटेन साधर्म्यादनित्यः शब्द इति ब्रुव-तोऽस्ति घटेनानित्येन सर्वभावानां साधर्म्यमिति सर्व-स्थानित्यत्वमनिष्टं सम्यद्यते, सोऽयमनित्यत्वेन प्रत्यवस्था-नादनित्यसम इति । अष्टोत्तरम् ॥

सू० साधर्म्यादसिद्धेः प्रतिषेधासिद्धिः प्रतिषेध्यसा-धर्म्याच्च ॥ ३३ ॥

भा० प्रतिज्ञाद्यवयवयुक्तं वाक्यं पचनिर्वर्त्तकं प्रतिपचलक्षणं प्रतिषेधस्तस्य पक्षेण प्रतिषेधेन साधर्म्यं प्रतिज्ञादियोगः तद्यद्यनित्यसाधर्म्यादनित्यत्वस्यासिद्धिः साधर्म्यादसिद्धिः प्रतिषेधस्याप्यसिद्धिः प्रतिषेधेन साधर्म्यादिति ॥

सू० दृष्टान्ते च साध्यसाधनभावेन प्रज्ञातस्य धर्मस्य हेतुत्वात्तस्य चोभयथाभावान्नाविशेषः ॥ ३४ ॥

भा० दृष्टान्ते यः खलु धर्मः साध्यसाधनभावेन प्रज्ञायते स हेतुत्वेनाभिधीयते स चोभयथा भवति, केनचित् समानः कुतश्चिद्विशिष्टः, सामान्यात् साधर्म्यम् विशेषाच्च वैधर्म्यम् एवं साधर्म्यविशेषो हेतुः नाविशेषेण साधर्म्यमात्रं वैधर्म्यमात्रं वा, साधर्म्यमात्रं वैधर्म्यमात्रं चाश्रित्य भवानाह । साधर्म्यात्तुल्यधर्मोपपत्तेः सर्वानित्यत्वप्रसङ्गादनित्यसम इति एतदयुक्तमिति अविशेषसमप्रतिषेधे च यदुक्तं तदपि वेदितव्यम् ॥

सू० नित्यमनित्यभावादनित्ये नित्यत्वोपपत्तेर्नित्यसमः ॥ ३५ ॥

भा० अनित्यः शब्द इति प्रतिज्ञायते तदनित्यत्वं किं शब्दे नित्यमथानित्यम्, यदि तावत् सदा भवति धर्मस्य सदाभावाद्धर्मिणोऽपि सदाभाव इति नित्यः शब्द इति । अथ न सर्वदा भवति अनित्यत्वस्याभावान्नित्यः शब्दः । एवं नित्यत्वेन प्रत्यवस्थानान्नित्यसमः । अस्योत्तरम् ॥

सू० प्रतिषेध्ये नित्यमनित्यभावादनित्ये नित्यत्वोपपत्तेः प्रतिषेधाभावः ॥ ३६ ॥

भा० प्रतिषेधे शब्दे नित्यमनित्यत्वस्य भावादित्युच्यमाने-
ऽनुज्ञातं शब्दस्यानित्यत्वम्, अनित्यत्वोपपत्तेश्च नानित्यः
शब्द इति प्रतिषेधो नोपपद्यते, अथ नाभ्युपगम्यते नित्य-
मनित्यत्वस्य भावादिति हेतुर्न भवतीति हेतुभावात्प्रति-
षेधानुपपत्तिरिति, उत्पन्नस्य निरोधादभावः शब्दस्यानि-
त्यत्वं तत्र परिप्रश्नानुपपत्तिः, सोऽयं प्रश्नः तदा नित्यत्वं
किं शब्दे सर्वदा भवति अथ नेत्यनुपपन्नः, कस्मात्
उत्पन्नस्य योनिरोधादभावः शब्दस्य तदनित्यत्वम्, एवञ्च
सत्यधिकरणाध्यविभागो व्याघातान्नास्तीति नित्यानित्य-
विरोधाच्च नित्यत्वमनित्यत्वं चैकस्य धर्माणां धर्मो विरुध्येते
न सम्भवतः, तत्र यदुक्तम् नित्यमनित्यत्वस्य भावान्नित्य एव
तदवर्त्तमानार्थमुक्तमिति ॥

सू० प्रयत्नकार्यानेकत्वात्कार्यसमः ॥ ३७ ॥

भा० प्रयत्नानन्तरीयकत्वादनित्यः शब्द इति, यस्य प्रय-
त्नानन्तरमात्मलाभस्तत् खल्वभूत्वा भवति यथा घटा-
दिकार्यमनित्यमिति च भूत्वा न भवतीत्येतद्विज्ञायते ।
एवमवस्थिते प्रयत्नकार्यानेकत्वादिति प्रतिषेध उच्यते ।
प्रयत्नानन्तरमात्मलाभश्च दृष्टो घटादीनाम् व्यवधाना-
पोहाच्चाभिव्यक्तिर्व्यवहितानाम्, तत् किं प्रयत्नानन्तर-
मात्मलाभः शब्दस्य आहोऽभिव्यक्तिरिति विशेषोनास्ति,
कार्याविशेषेण प्रत्यवस्थानं कार्यसमः । अस्योत्तरम् ॥

सू० कार्यान्त्यत्वे प्रयत्नाहेतुत्वमनुपलब्धिकारणोप-
पत्तेः ॥ ३८ ॥

भा० सति कार्यान्त्यत्वे अनुपलब्धिकारणोपपत्तेः प्रयत्नस्या-
हेतुत्वं शब्दस्याभिव्यक्त्यै, यत्र प्रयत्नानन्तरमभिव्यक्तिस्तत्रा-
नुपलब्धिः कारणं व्यवधानमुपपद्यते । व्यवधानापोहाच्च
प्रयत्नानन्तरभाविनोऽर्थस्योपलब्धिलक्षणाभिव्यक्तिर्भवतीति
नतु शब्दस्यानुपलब्धिकारणं किञ्चिदुपपद्यते, यस्य प्र-
यत्नानन्तरमपोहाच्छब्दस्योपलब्धिलक्षणाभिव्यक्तिर्भवतीति
तस्मादुत्पद्यते शब्दो नाभिव्यजत इति हेतोश्चेदनैकान्ति-
कत्वमुपपाद्यते अनैकान्तिकत्वादसाधकः स्यात् इति, यदि
चानैकान्तिकत्वादसाधकम् ॥

सू० प्रतिषेधेऽपि समानो दोषः ॥ ३९ ॥

भा० प्रतिषेधोऽप्यनैकान्तिकः किञ्चित् प्रतिषेधति कि-
ञ्चिन्नेति अनैकान्तिकत्वादसाधक इति, अथ वा शब्दस्या-
नित्यत्वपक्षे प्रयत्नानन्तरमुत्पादोनाभिव्यक्तिरिति विशेष-
हेत्वभावः, नित्यत्वपक्षेऽपि प्रयत्नानन्तरमभिव्यक्तिर्नात्पाद-
इति विशेषहेत्वभावः, सोऽयमुभयपक्षममो विशेषहेत्वभाव-
इत्युभयमप्यनैकान्तिकमिति ॥

सू० सर्व्वचैवम् ॥ ४० ॥

भा० सर्वेषु साधर्म्यप्रभृतिषु प्रतिषेधहेतुषु यत्र विशेषो
दृश्यते तत्रोभयोः पक्षयोः समः प्रसज्यत इति ॥

सू० . प्रतिषेधविप्रतिषेधे प्रतिषेधदोषवद्दोषः ॥ ४१ ॥

भा० दोषऽयं प्रतिषेधेऽपि समानो दोषोऽनैकान्तिकत्वमा-
पाद्यते सोऽयं प्रतिषेधस्य प्रतिषेधेऽपि समानः, तत्रानित्यः
शब्दः प्रयत्नानन्तरीयकत्वादिति साधनवादिनः स्या-
पना प्रथमः पक्षः, प्रयत्नकार्यानेकत्वात् कार्यसम इति
दूषणवादिनः प्रतिषेधहेतुना द्वितीयः पक्षः, स च प्रतिषेध
इत्युच्यते, तस्मिन् प्रतिषेधविप्रतिषेधेऽपि समानो दोषोऽनै-
कान्तिकत्वम् चतुर्थः पक्षः ॥

सू० प्रतिषेधं सदोषमभ्युपेत्य प्रतिषेधविप्रतिषेधे
*समानो दोषप्रसङ्गोमतानुज्ञा ॥ ४२ ॥

भा० प्रतिषेधं द्वितीयं पक्षं सदोषमभ्युपेत्य तदुद्धारमनुक्त्वा
अनुज्ञाय प्रतिषेधविप्रतिषेधे द्वितीये पक्षे समानमनैकान्ति-
कत्वमिति समानं दूषणं प्रसजतोदूषणवादिनो मतानु-
ज्ञा प्रसज्यत इति पञ्चमः पक्षः ॥

सू० स्वपक्षलक्षणापेक्षोपपत्त्युपसंहारे हेतुनिर्देशे
परपक्षदोषाभ्युपगमात्समानोदोष इति ॥ ४३ ॥

भा० स्थापनापक्षे प्रयत्नकार्यानेकत्वादिति दोषः स्थाप-
 नाहेतुवादिनः स्वपक्षलक्षणे भवति, कस्मात् स्वपक्षमु-
 त्यक्त्वात्, सोऽयं स्वपक्षलक्षणं दोषमपेक्षमाणोऽनुद्धृत्यानुज्ञाय
 प्रतिषेधेऽपि समानो दोष इत्युपपद्यमानं दोषं परपक्ष-
 उपसंहरति इत्थं वानैकान्तिकः प्रतिषेध इति हेतुं
 निर्दिशति तत्र स्वपक्षलक्षणापेक्षयापपद्यमानदोषोपसं-
 हारे हेतुनिर्दिशे च सत्यनेन परपक्षोऽभ्युपगतो भवति,
 कथं कृत्वा यः परेण प्रयत्नकार्यानेकत्वादित्यादिनाऽने-
 कान्तिकदोष उक्तस्तमनुद्धृत्य प्रतिषेधेऽपि समानो दोषो
 भवति यथा परस्य प्रतिषेधं सदोषमभ्युपेत्य प्रतिषेधेऽपि
 समानं दोषं प्रसजतः परपक्षाभ्युपगमात् समानो दोषो
 भवति, यथा परस्य प्रतिषेधं सदोषमभ्युपेत्य प्रतिषेधेऽपि
 समानं दोषं प्रसजतो मतानुज्ञा प्रसज्यत इति, स खल्वयं
 षष्ठः पक्षः, तत्र खलु स्थापनाहेतुवादिनः प्रथमतोयपञ्च-
 मपक्षाः, प्रतिषेधहेतुवादिनो द्वितीयचतुर्थषष्ठपक्षाः, तेषां
 साध्वसाधुतायां मीमांस्यमानायां चतुर्थषष्ठयोरविशेषात्
 पुनरुक्तदोषप्रसङ्गः । चतुर्थपक्षे समानदोषत्वं परस्त्वेत्यते
 प्रतिषेधविप्रतिषेधे प्रतिषेधदोषवद्दोष इति, षष्ठेऽपि पर-
 पक्षाभ्युपगमात् समानो दोष इति समानदोषत्वमेवे-
 च्यते, नार्थविशेषः कश्चिदस्ति समानस्तृतीयपञ्चमयोः
 पुनरुक्तदोषप्रसङ्गः, तृतीयपक्षेऽपि प्रतिषेधेऽपि समानो दोष-
 इति समानत्वमभ्युपगम्यते, पञ्चमपक्षेऽपि प्रतिषेधप्रतिषेधे

भा० समानो दोषप्रमङ्गोऽभ्युपगम्यते नार्थविशेषः कश्चिदुच्यत-
इति, तत्र पञ्चमषट्पचयोरर्थाविशेषात् पुनरुक्तदोषः,
द्वितीयचतुर्थयोर्मतानुज्ञा, प्रथमद्वितीययोर्विशेषहेत्वभाव-
इति, षट्पत्त्यामुभयोरभिद्धिः, कदा षट्पची यदा
प्रतिषेधेऽपि समानो दोष इत्येवं प्रवर्तते तदोभयोः पच-
योरभिद्धिः, यदा तु कार्यान्त्यत्वे प्रयत्नाहेतुत्वमनुपलम्भि-
कारणोपपत्तेरित्यनेन द्वितीयपचो युज्यते तदा विशेष-
हेतुवचनात् प्रयत्नानन्तरमात्मलाभः शब्दस्य नाभिव्यक्ति-
रिति सिद्धिः प्रथमपचो न षट्पची प्रवर्तत इति ॥

इति वात्स्यायनीये न्यायभाष्ये पञ्चमाध्यायस्याद्यमाह-
कम् ॥ • ॥

भा० विप्रतिपत्त्यप्रतिपत्त्योर्विकल्पान्निग्रहस्थानवज्जत्वमिति
सङ्क्षेपेणोक्तं तदिदानीं विभजनीयम् निग्रहस्थानानि खलु
पराजयवस्तुन्यपराधाधिकरणानि प्रायेण प्रतिज्ञाद्यव-
यवाश्रयाणि तत्त्ववादिनमतत्त्ववादिनश्चाभिसंज्ञवन्ते तेषां
विभागः ॥

सू० प्रतिज्ञाहानिः प्रतिज्ञान्तरं प्रतिज्ञाविरोधः प्रति-
ज्ञासन्ध्यासो हेत्वन्तरमर्थान्तरं निरर्थकमविज्ञा-

सू० तार्थमपार्थक्यमप्राप्तकालं न्यूनमधिकं पुनरुक्तम-
ननुभाषणमज्ञानमप्रतिभा विक्षेपो मतानुज्ञा
पर्यनुयोज्योपेक्षणं निरनुयोज्यानुयोगोऽपसि-
द्धान्तो हेत्वाभासाश्च निग्रहस्थानानि ॥ १ ॥

भा० तानीमानि द्वाविंशतिधा विभज्य लक्ष्यन्ते ॥

सू० प्रतिदृष्टान्तधर्माभ्यनुज्ञा स्वदृष्टान्ते प्रतिज्ञाहा-
निः ॥ २ ॥

भा० साध्यधर्मप्रत्ययोकेन धर्मेण प्रत्यवस्थिते प्रतिदृष्टान्त-
धर्मे स्वदृष्टान्तेऽभ्यनुजानन् प्रतिज्ञां जहातीति प्रतिज्ञा-
हानिः, निदर्शनम् ऐन्द्रियकत्वादित्यः शब्दो घटवदिति
कृते अपर आह दृष्टमैन्द्रियकत्वं सामान्ये नित्ये कस्मान्न
तथा शब्द इति प्रत्यवस्थिते इदमाह यद्यैन्द्रियकं सा-
मान्यं नित्यं कामं घटो नित्योऽस्त्विति स खल्वयं साधकस्य
दृष्टान्तस्य नित्यत्वं प्रमञ्जयन्निगमनान्तमेव पक्षं जहाति
पक्षं जहत् प्रतिज्ञां जहातीत्युच्यते प्रतिज्ञाश्रयत्वात् पक्ष-
स्येति ॥

सू० प्रतिज्ञातार्थप्रतिषेधे धर्मविकल्पान्तदर्थनिर्देशः
प्रतिज्ञान्तरम् ॥ ३ ॥

भा० प्रतिज्ञातार्थोऽनित्यः शब्द ऐन्द्रियकत्वात् घटवदित्युक्ते योऽस्य प्रतिषेधः प्रतिदृष्टान्तेन हेतुव्यभिचारः सामान्यमैन्द्रियकं नित्यमिति तस्मिंश्च प्रतिज्ञातार्थप्रतिषेधे धर्माविकल्पादिति दृष्टान्तप्रतिदृष्टान्तयोः साधर्म्ययोगे धर्मभेदात् सामान्यमैन्द्रियकं सर्वगतम् ऐन्द्रियकस्त्वसर्वगतो घट इति धर्माविकल्पात् तदर्थं निर्देश इति साध्यसिद्ध्यर्थम्, कथम् यथा घटोऽसर्वगत एवं शब्दोऽप्यसर्वगतो घटवदेवानित्य इति, तत्रानित्यः शब्द इति पूर्वा प्रतिज्ञा, असर्वगत इति द्वितीया प्रतिज्ञा प्रतिज्ञान्तरम्, तत्कथं निग्रहस्थानमिति, न प्रतिज्ञायाः साधनं प्रतिज्ञान्तरं, किन्तु हेतुदृष्टान्तौ साधनं प्रतिज्ञायाः, तदेतदसाधनोपादानमनर्थकमिति आनर्थक्यान्निग्रहस्थानमिति ॥

सू० प्रतिज्ञाहेत्वोर्विरोधः प्रतिज्ञाविरोधः ॥ ४ ॥

भा० गुणव्यतिरिक्तं द्रव्यमिति प्रतिज्ञा, रूपादितोऽर्थान्तरस्थानुपलब्धेरिति हेतुः, सोऽयं प्रतिज्ञाहेत्वोर्विरोधः, कथम् यदि गुणव्यतिरिक्तं द्रव्यं रूपादिभ्योऽर्थान्तरस्थानुपलब्धिर्नोपपद्यते, अथ रूपादिभ्योऽर्थान्तरस्थानुपलब्धिः, गुणव्यतिरिक्तं द्रव्यमिति नोपपद्यते, गुणव्यतिरिक्तञ्च द्रव्यं रूपादिभ्यश्चार्थान्तरस्थानुपलब्धिरिति विरुध्यते व्याहन्यते न सम्भवतीति ॥

सू० पक्षप्रतिषेधे *प्रतिज्ञातार्थापनयनं प्रतिज्ञास-
च्यासः ॥ ५ ॥

भा० अनित्यः शब्दः ऐन्द्रियकत्वादित्युक्ते परोब्रूयात् सा-
मान्यमैन्द्रियकं न च अनित्यमेवं शब्दोऽप्यैन्द्रियको न चा-
नित्य इति, एवमप्रतिषिद्धे पक्षे यदि ब्रूयात् कः पुनराह
अनित्यः शब्द इति, सोऽयं प्रतिज्ञातार्थनिष्ठवः प्रतिज्ञा-
सच्यास इति ॥

सू० अविशेषोक्ते हेतौ प्रतिषिद्धे विशेषमिच्छतोहे-
त्वन्तरम् ॥ ६ ॥

भा० निदर्शनम् एकप्रकृतोदं व्यक्तमिति प्रतिज्ञा, कस्मा-
द्धेतोः, एकप्रकृतीनां विकाराणां परिमाणात्, मृत्यु-
र्व्वकाणां शरावादीनां दृष्टं परिमाणम्, यावान् प्रकृते-
र्व्यूहो भवति तावान् विकार इति, दृष्टञ्च प्रतिवि-
कारं परिमाणम्, अस्ति चेदपरिमाणं प्रतिव्यक्तम्, त-
देकप्रकृतीनां विकाराणां परिमाणात्पश्यामो व्यक्तमि-
दमेकप्रकृतीति । अस्य व्यभिचारेण प्रत्यवस्थानम्, नाना-
प्रकृतीनामेकप्रकृतीनाञ्च विकाराणां दृष्टं परिमाणमिति,
एवं प्रत्यवस्थिते आह एकप्रकृतिसमन्वये सति शरावादि-
विकाराणां परिमाणदर्शनात् सुखदुःखमोहसमन्वितं
हीदं व्यक्तं परिमितं गृह्यते तत्र प्रकृत्यन्तररूपसमन्व-

भा० याभावे सत्येकप्रकृतित्वमिति, तदिदमविशेषोक्तो हेतौ प्र-
तिषिद्धे विशेषं ब्रूवतो हेत्वन्तरम्भवति, सति च हेत्वन्तर-
भावे पूर्वस्य हेतोरसाधकत्वान्निगृहस्थानम्, हेत्वन्तरव-
चने सति यदि हेत्वर्थनिदर्शनो दृष्टान्त उपादीयते नदं
व्यक्तमेकप्रकृति भवति प्रकृत्यन्तरोपादानात्, अथ नो-
पादीयते दृष्टान्ते हेत्वर्थस्यानिदर्शितस्य साधकभावानुप-
पत्तेरानर्थक्याद्धेतोरनिवृत्तं निगृहस्थानमिति ॥

सू० प्रकृतादर्थीदप्रतिसम्बद्धार्थमर्थान्तरम् ॥ ७ ॥

भा० यथोक्तलक्षणे पक्षप्रतिपक्षपरिग्रहे हेतुतः साध्यसि-
द्धौ प्रकृतायां ब्रूयात् नित्यः शब्दोऽस्यर्शत्वादिति हेतुः,
हेतुर्नाम हिनोतेर्धातोस्तुनिप्रत्यये कृदन्तपदम्, पदञ्च
नामाख्यातोपसर्गनिपाताः, अभिधेयस्य क्रियान्तरयोगादि-
श्रित्यमाणरूपः शब्दो नाम, क्रियाकारकसमुदायः, कारक-
सङ्ख्याविशिष्टक्रियाकालयोगाभिधाय्याख्यातम्, धात्वर्थमा-
चञ्च कालाभिधानविशिष्टम्, योगेस्वर्थादभिद्यमानरूपा-
निपाताः, उपसृज्यमानाः क्रियावद्योतका उपसर्गा इत्येव-
मादि, तदर्थान्तरं वेदितव्यमिति ॥

सू० वर्णक्रमनिर्देशवन्निरर्थकम् ॥ ८ ॥

भा० यथा नित्यः शब्दः कचटतपाः जवगडदशत्वात्

भा० स्रभञ्जघटधष्वदिति एवम्प्रकारं निरर्थकम्, अभिधा-
नाभिधेयभावानुपपत्तौ अर्थगतेरभावादर्णाएव क्रमेण
निर्दिश्यन्त इति ॥

सू० परिषत्प्रतिवादिभ्यां चिरभिहितमप्यविज्ञातम-
विज्ञातार्थम् ॥ ८ ॥

भा० यद्वाक्यं परिषदा प्रतिवादिना च चिरभिहितमपि
न विज्ञायते श्लिष्टशब्दमप्रतीतप्रयोगमतिद्रुतोच्चारितमि-
त्येवमादिना कारणेन तदविज्ञातमविज्ञातार्थमसामर्थ्य-
सम्बरणाय प्रयुक्तमिति नियहस्यानमिति ॥

सू० पौर्वापर्यायोगादप्रतिसम्बद्धार्थमपार्थकम् ॥ १० ॥

भा० यत्रानेकस्य पदस्य वाक्यस्य वा पौर्वापर्येणान्वययोगो-
नास्तीत्यमन्वयार्थत्वम् गृह्यते तत्समुदायोऽर्थस्यापायाद-
पार्थकम् । यथा दश दाडिमानि षड्पूपाः कुण्डमजा-
जिनम्ललपिण्डः । अथ रौरुकमेतत्कुमार्याः पाथ्यम्
तस्याः पिता अप्रतिशीन इति ॥

सू० अवयवविपर्ययासवचनमप्राप्तकालम् ॥ ११ ॥

भा० प्रतिज्ञादीनामवयवानां यथालक्षणमर्थवशात् क्रमः,

भा० तत्रावयवविपर्यासेन वचनमप्राप्तकालममन्वयार्थकालं
निगदहस्यानमिति ॥

सू० . हीनमन्यतमेनाप्यवयवेन न्यूनम् ॥ १२ ॥

भा० प्रतिज्ञादीनामवयवानामन्यतमेनाप्यवयवेन हीनं न्यूनं
निगदहस्यानम्, साधनाभावे साध्यामिद्विरिति ॥

सू० हेतूदाहरणाधिकमधिकम् ॥ १३ ॥

भा० एकेन कृतत्वादन्वतरस्यानर्थक्यमिति तदेतन्नियमाभ्यु-
पगमे वेदितव्यमिति ॥

सू० शब्दार्थयोः पुनर्वचनं पुनरुक्तमन्यत्रानुवादा-
त् ॥ १४ ॥

भा० अन्यत्रानुवादात् शब्दपुनरुक्तमर्थपुनरुक्तं वा, नित्यः
शब्दो नित्यः शब्द इति शब्दपुनरुक्तम्, अर्थपुनरुक्तमनित्यः
शब्दो निरोधधर्मकोध्वान इति ॥

सू० अनुवादे त्वपुनरुक्तं शब्दाभ्यासादर्थविशेषोपप-
त्तेः ॥ १५ ॥

भा० यथा हेत्वपदेशात् प्रतिज्ञायाः पुनर्वचनं निगमनमिति ॥

सू० अर्थादापन्नस्य स्वशब्देन पुनर्वचनम् ॥ १६ ॥

भा० पुनरुक्तमिति प्रकृतम्, निदर्शनम् उत्पत्तिधर्मक-
त्वादनित्यमित्युक्ता अर्थादापन्नस्य योऽभिधायकः शब्द-
स्तेन स्वशब्देन ब्रूयादनुत्पत्तिधर्मकं नित्यमिति । तच्च-
पुनरुक्तमेदित्यम्, अर्थमन्यथायाः शब्दप्रयोगे प्रतीतः
सोऽर्थोऽर्थोपत्येति ॥

सू० विज्ञातस्य परिषदा चिरभिहितस्याप्यनुच्चारण-
मननुभाषणम् ॥ १७ ॥

भा० विज्ञातस्य वाक्यार्थस्य परिषदा प्रतिवादिना चिर-
भिहितस्य यदप्रत्युच्चारणान्तदननुभाषणं नाम नियहस्या-
नमिति, अप्रत्युच्चारयन् किमाश्रयं परपक्षप्रतिषेधं ब्रूयात् ॥

सू० अविज्ञातञ्चाज्ञानम् ॥ १८ ॥

भा० विज्ञातार्थस्य परिषदा प्रतिवादिना चिरभिहितस्य
यदविज्ञानान्तदज्ञानं नियहस्यानमिति । अयं खल्व-
विज्ञाय कस्य प्रतिषेधं ब्रूयादिति ॥

सू० उत्तरस्याप्रतिपत्तिरप्रतिभा ॥ १९ ॥

भा० परपक्षप्रतिषेधः उत्तरम् तद्यदा न प्रतिपद्यते तदा निग्रहीतो भवति ॥

सू० कार्यव्यासङ्गात् कथाविच्छेदो विक्षेपः ॥ २० ॥

भा० यत्र कर्तव्यं व्यासज्य कथां व्यवच्छिनत्ति इदं मे करणीयं विद्यते तस्मिन्नवसिते कथयिष्यामीति विक्षेपो नाम निग्रहस्थानम् । एकनिग्रहावमानायां कथायां स्वयमेव कथान्तरं प्रतिपद्यत इति ॥

सू० *स्वपक्षदोषाभ्युपगमात् परपक्षदोषप्रसङ्गो म० तानुज्ञा ॥ २१ ॥

भा० यः परेण चादितं दोषं स्वपक्षेऽभ्युपगम्वानुद्धृत्य वदति भवत्येव समानोदोष इति स स्वपक्षे दोषाभ्युपगमात्परपक्षे दोषं प्रसञ्जयन् परमतमनुजानातीति मतानुज्ञा नाम निग्रहस्थानमापद्यत इति ॥

सू० निग्रहस्थानप्राप्तस्यानिग्रहः पर्यनुयोज्योपेक्ष-
णम् ॥ २२ ॥

भा० पर्यनुयोज्यो नाम निग्रहोपपत्त्या चादनीयस्तस्योपेक्ष-
णम् निग्रहस्थानं प्राप्तोऽमीत्यननुयोगः, एतच्च कस्य पराजय-

* स्वपक्षे दोषाभ्युपगमादिति क्वचित् पाठः ।

भा० इत्यनुयुक्त्या परिषदा वचनीयम्, न खलु निगृह्यं प्राप्तः
स्वकोपोनं विवृणुयादिति ॥

सू० अनिग्रहस्थाने निग्रहस्थानाभियोगो निरनु-
योज्यानुयोगः ॥ २३ ॥

भा० निग्रहस्थानलक्षणस्य मित्याध्यवभायादनिग्रहस्थाने
निगृहीतोऽसीति परं ब्रुवन् निरनुयोज्यानुयोगान्निगृ-
हीतो वेदितव्य इति ॥

सू० सिद्धान्तमभ्युपेत्यानियमात्कथाप्रसङ्गोऽपसिद्धान्तः ॥ २४ ॥

भा० कस्यचिदर्थस्य तथाभावं प्रतिज्ञाय प्रतिज्ञातार्थव
पर्ययादनियमात् कथां प्रमञ्जयतोऽपसिद्धान्ता वेदितव्यः
यथा न मदात्मानञ्जहाति न मता विनाशा नामदात्मानं
लभते नामदुत्पद्यत इति, सिद्धान्तमभ्युपेत्य स्वपक्षं व्यव-
स्थापयति एकप्रकृतौदं व्यक्तं विकाराणामन्वयदर्शनात्
मृदन्वितानां शरावादीनां दृष्टमकप्रकृतित्वम् तथा
चायं व्यक्तभेदः सुखदुःखमोहान्विता दृश्यत तेषां न
मनन्वयदर्शनात् सुखादिभिरेकप्रकृतौदं शरावामिति
एवमुक्तवाननुदुष्यते । अथ प्रकृतिविकार इति कथं
लक्षितव्यमिति । यस्यावस्थितस्य धर्मान्तरनिवृत्तौ धर्मा

भा० न्तरं प्रवर्त्तते सा प्रकृतिः । यच्च धर्मान्तरं प्रव-
 र्त्तते स विकार इति, सोऽयं प्रतिज्ञातार्थविपर्ययासाद-
 नियमात् कथां प्रसञ्जयति प्रतिज्ञातं खल्वनेन नासदा-
 त्तिर्भवति न सत् तिरोभवतीति । सदसतोश्च तिरोभावा-
 विर्भावमन्तरेण न कस्यचित्प्रवृत्तिः प्रवृत्त्युपरमश्च भवति,
 यदि खल्ववस्थितायाम्भविष्यति शरावादिलक्षणं धर्मा-
 न्तरमिति प्रवृत्तिर्भवति, अभूदिति च प्रवृत्त्युपरमः, तदे-
 तन्मृदूधर्माणामपि न स्यात् एवं प्रत्यवस्थितो यदि सत-
 स्यात्माहानमसतस्यात्मलाभमभ्युपैति, तदस्यापसिद्धान्तो-
 निग्रहस्थानमभवति । अथ नाभ्युपैति पक्षोऽस्य न सिद्ध्यति ॥

सू० हेत्वाभासाश्च यथोक्ताः ॥ २५ ॥

भा० हेत्वाभासाश्च निग्रहस्थानानि किं पुनर्लक्षणान्तर-
 योगात् हेत्वाभासाः निग्रहस्थानत्वमापन्नाः यथा प्र-
 माणानि प्रमेयत्वमित्यत आह । यथोक्ता इति । हेत्वा-
 भासलक्षणेनैव निग्रहस्थानभाव इति । त इमे प्रमाणाद-
 यः पदार्था उद्दिष्टा लक्षिताः परीक्षिताश्चेति ॥

इति वात्स्यायनीये न्यायभाष्ये पञ्चमाध्यायस्य द्वितीयमा-
 श्रिकं समाप्तश्चायं पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

॥*॥ समाप्तच्चेदं शास्त्रम् ॥*॥

शुभमस्तु । सम्बत् १८९१ । शकाब्दाः १७८६ । २५ फाल्गुनः ॥

